प्रकाशक :—

बैजनाथ केडिया

प्रोप्राइटर :—

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी

१२६, हरिसन रोड,

कलकत्ता।

मुद्रक :—

जगदीशनारायण तिवारी,

वणिक् प्रेस,

१, सरकार लेन कलकत्ता।

भूमिका

चीन देशसे अनेक श्रमण समय समयपर बौद्ध-तीर्थोंके दर्शनके निमित्त भारत आते रहे हैं और अनेकोंने यहांसे लौटकर अपने देशकी भाषामें अपनी यात्राके विवरणोंको भी लिखा है। इन विवरण लिखनेवालोंमें फाहियान, सुंगयुन, सुयेनच्वांग और ईसिंग सब यात्रियोंमें प्रधान माने जाते हैं। कारण यह है कि इन यात्रियोंने अपने विवरणोंमें भारतके भिन्न २ जनपदों और नगरोंके, वहांकी प्रकृति और प्रजाके तथा भारतवर्षके आचार व्यवहारके अच्छे वर्णन किये हैं। इन चारोंमें सुयेनच्वांगका यात्रा-विवरण सबसे बड़ा और विशद है। उसने अपने यात्रा-विवरणका नाम सी-यू-की रखा है जिसका अर्थ होता है 'पश्चिम देशोंकी पुस्तक'। यह पुस्तक बारह खण्डोंमें विभक्त है और सैकड़ों जनपदों और नगरोंके विस्तृत वर्णनोंसे भरा हुआ है। उसके अतिरिक्त सुयेनच्वांगके एक शिष्य हुइलीका लिखा उसका जीवनचरित्र है। वह भी एक विशद ग्रन्थ है। उनमें भारतवर्षके एक एक जनपदका इस प्रकार वर्णन है कि प्रत्येकका आयतन, वहाँकी धार्मिक स्थिति, वहांके संघारामों और मंदिरों और उनमें रहनेवाले भिक्षुओं और साधुओंकी दशा, वहांकी उपज, सामाजिक, नैतिक और आर्थिक अवस्था, इत्यादिका विशद

विवरण दिया गया है। यों तो इन चारों यात्रियोंके यात्रा-विवरण भारतवर्षके भौगोलिक, ऐतिहासिक और पुरातत्त्वान्वेषी विद्वानोंके बड़े कामके हैं पर फिर भी वृहद् और विशद होनेके कारण सुयेनच्वांगका यात्रा-विवरण सबसे अच्छा माना जाता है। इनके अनुवाद संसारकी अनेक भाषाओंमें हो चुके हैं और किसी किसी भाषामें तो कई अनुवाद हो चुके हैं।

हिन्दी भाषामें इनके अनुवादोंकी बहुत कालसे आवश्यकता थी। निदान नागरीप्रचारिणी सभाको इनके अनुवाद कराने और प्रकाशन करनेके कामको अपने हाथमें लेना पड़ा। उसने इनके अनुवादका भार मुझपर रखा और अबतक फाहियान और सुंग-युनके यात्रा-विवरणोंके अनुवाद सभा प्रकाशित कर चुकी है और सुयेनच्वांगका अनुवाद प्रकाशनार्थ तैयार है। उसमें प्रत्येक स्थानोंका निर्देश, आयतन सम्बन्धी पुष्कल टिप्पणियां दी गई हैं पर वह पुस्तक इतनी बड़ी है कि कई वर्षोंमें प्रकाशित होगी। इसके अतिरिक्त सबकी रुचि समान नहीं होती, सबको इतिहास, भूगोल और पुरातत्त्वसे प्रेम नहीं होता। कितने तो नाटकोंके प्रेमी होते हैं, कितने उपन्यासों और जीवनचरित्रोंके प्रेमी होते हैं। ऐसे लोगोंका मन बड़ी पुस्तकोंसे घबराता है। वह सबका सब एक हो दो दिनमें जाननेके उत्सुक रहते हैं। ऐसे ही लोगोंके लिये मेरा यह प्रयास है।

इस पुस्तकमें मैंने सुयेनच्वांगका जीवनचरित उसके जन्मसे मरणतक इस प्रकार लिखा है कि वह कहां कहां रहा, क्या

क्या किया, क्या क्या कहा, देखा और सुना। इसमें किसी देशके स्थानका निर्देश नहीं किया गया है न इसमें यही दिखलाया गया है कि वहाँ कितने संघाराम और भिक्षु थे, वहांकी प्रकृति शीत थी वा उष्ण, वहाँकी उपज क्या थी, वहां वालोंके आचार—व्यवहार कैसे थे। इन सब बातोंको उल्लेख करना बिलकुल छोड़ दिया गया है। केवल ऐसी ही बातोंको चुन चुनकर स्थान दिया गया है कि वहां उसने क्या अनुभव किया, क्या देखा और क्या सुना। मैंने इस पुस्तकको साधारण विद्या-बुद्धि रखनेवालोंके लिये लिखा है कि इसे देखकर उनको यह बोध हो कि सातवीं शताब्दीमें एक चीनी यात्रीने भारतमें आकर यहां क्या क्या देखा और सुना। इससे उनका मनबह-लाव होगा और साथ ही साथ यदि उनके हृदयमें इतिहास वा पुरातत्वादिके बीज वा संस्कार दबेदबाये पड़े होंगे तो वह अंकुरित हो जायगे।

जगन्मोहन वर्मा

निवेदन

भारतवर्षके इतिहासकी सामग्रियोंमेंसे एक प्रामाणिक सामग्री विदेशी यात्रियोंके प्राचीन लेखोंसे मिलती है। ऐतिहासिक दृष्टिसे यह जितनी आवश्यक है उतनी ही प्रामाणिक भी है। प्रामाणिक इसलिये कि उन निर्पेक्ष विदेशी यात्रियों-द्वारा लिखी गई है जिन्होंने सत्यकी खोजमें ही अपने जीवनको अनेकों संकटोंमें डाला था। मरुभूमिकी लू, तीक्ष्ण हवाके झोंके, डाकुओंकी चोटें, जंगलके तीक्ष्ण काँटे आदि नाना व्याधियोंको सहते, ऊँची ऊँची बर्फीली पहाड़ी श्रेणियोंको लांघते उन्होंने अपने देशकी गौरव-वृद्धि करनेके लिये भारतकी यात्रा की थी। उन्हीं यात्रियोंमेंसे एक प्रसिद्ध यात्री 'युयेनच्वांग' भी था जिसकी जीवनी आज हम **हिन्दी पुस्तक एजेन्सी मालाकी २७ वीं संख्याके** रूपमें आपके सामने रखते हैं। जिस उत्कट विद्या-प्रेमसे प्रेरित होकर यह भिक्षु भारतमें आया था उसी प्रेमकी प्रबल धारा भारतीय विद्यार्थियोंके हृदयमें भी आज बहनेकी आवश्यकता है। उन्हें चाहिये कि वे भी इसी उद्देश्यसे विदेश यात्रा करके भारतके गौरवकी वृद्धि करें। इस भिक्षुकने भारतके विषयमें जो कुछ लिखा है वह भारतके इतिहासकी एक सामग्री, भारतीयोंके लिये पथ-प्रदर्शक दीपक तथा गौरवका विषय है। उसके पढ़नेसे प्राचीन भारतकी सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक अवस्थाओंका पूरा पूरा पता लग जाता है। इस पुस्तकके लेखक श्रीयुक्त जगन्मोहन वर्माके लिखे 'फाहियान' और 'सुगयुन' के यात्रा-विवरणोंके अनुवाद छप चुके हैं। * वर्माजी इस विषयके विशेषज्ञ हैं इसलिये यह पुस्तक भी उपयोगी सिद्ध होगी। आशा है हमारे प्रेमी पाठक इसे अपनाकर अपना प्रेम-परिचय देंगे।

विनीत—

प्रकाशक

---

* यह दोनों पुस्तकें १।) और १) में हमारे यहांसे मिल सकती हैं

विषय-सूची

सुयेनच्वांग



बाल्यावस्था

चीनके प्रसिद्ध यात्री सुयेनच्वांगका जन्म चीन देशके काउशी प्रांतके चिनलू नामक ग्राममें सन् ६०० ईस्वीमें हुआ था। वह चिन वंशका था और उसका वंश-परम्परा प्रसिद्ध 'चंगकांग'से मिलता है जो चीन देशके हानवंशके शासनकालमें 'ताइकिउ' प्रदेशका अधिपति था। सुयेनच्वांगके पितामहका नाम 'कौंग' था। वह चीन देशके प्रसिद्ध विद्वानोंमें था जिसकी विद्वत्ता देख 'इसी' वंशके महाराजने उसे 'पेकिंग' के विश्वविद्यालयके प्रधानके पदपर नियुक्त किया था और 'चाउनान' की जागीर उसके भरण-पोषणके लिये प्रदान की थी। उसका पिता 'हुई' यद्यपि बड़ा पंडित था तथापि इतना सीधा सादा और साधु पुरुष था कि उसने कभी राजकीय प्रतिष्ठा और पदकी कामना न की और सदा नगरसे अलग रहकर धार्मिक ग्रंथोंके स्वाध्यायमें मग्न रहा करता था। वह गृही होते हुए-त्यागी था और आजन्म उसने सांसारिक झगड़ोंसे अपनेको अलग रखा। कितनी बार प्रान्तों और जिलोंमें नौकरियां राजकी ओरसे मिलीं पर उसने

यह कहकर उनका तिरस्कार कर दिया कि मेरा स्वास्थ्य इस योग्य नहीं है कि मैं सरकारी कामके बोझको उठा सकूं।

हुईके चार पुत्र थे जिनमें सबसे छोटा सुयेनच्वांग था। सुयेनच्वांग बचपनहीसे बड़ा गंभीर, शांत, नम्र और पितृभक्त था। वह सदा पढ़ने लिखनेमें लगा रहता था। एकांतवास उसे बहुत पसंद था। वह कभी न खेलता था न बिना काम अपने घरसे बाहर निकलता था। यहांतक कि वह अपने जोड़ी पाटीके लड़कोंके साथ भी कभी न खेलता था। चिनलू ग्राम एक छोटासा नगर था। वहां नित्य सड़कोंपर मेले तमाशेकी भीड़ लगी रहती थी। अनेकों यात्रायें निकलती थीं, बाजे बजते थे, गांवके लड़के झुंडके झुंड उनके पीछे दौड़ते थे पर सुयेनच्वांग कभी उनको देखनेके लिये घरके बाहर पैर नहीं रखता था। वह चीन देशके आचारके ग्रंथोंके अध्ययनमें निरंतर लगा रहता था। वह आचारके ग्रंथोंका बड़ा ही प्रेमी था और सदाचारमें उसकी बड़ी श्रद्धा थी और बड़ी सावधानीसे आचारका पालन करता था। वह इतना विनीत और नम्र था कि प्रत्येकके साथ बड़ी नम्रतासे आचारशास्त्रकी पद्धतिके अनुसार बर्ताव करता था। एक बारकी बात है कि उसका पिता बैठा हुआ 'दियाव' नामक ग्रंथका पाठ कर रहा था। उस समय सुयेनच्वांगकी अवस्था ८ वर्षकी थी। ग्रंथ बड़ा ही रोचक और पितृभक्ति-संबंधी था। पढ़ते-पढ़ते वह कथाके उस अंशपर पहुंचा जहांपर 'चांगच्यू'के अपने पिताकी आज्ञा पाते ही विनीत भावसे

उनके आगे उठकर खड़े होनेका वर्णन था। सुयेनच्वांगके कानोंमें पिताके मुंहसे इस शब्दका पड़ना था कि वह अपने कपड़े संभाल-कर जाकर अपने पिताके आगे हाथ बांध विनीत भावसे खड़ा हो गया। पिताने सुयेनच्वांगकी यह चेष्टा देख चकित हो उससे बड़े प्यारसे पूछा कि बात क्या है। सुयेनच्वांगने उत्तर दिया कि जब 'चांगच्यू' अपने पिताको बात सुनकर अपने स्थानसे उठ खड़ा हुआ तो सुयेनच्वांग कैसे वही बात अपने पिताके मुंहसे सुन कर बैठा रहे। पिताको बालककी यह बात सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने अपने सारे कुटुंबसे इस अद्भुत समाचारको कहा और सब लोग उसे सुनकर उसकी प्रशंसा करने लगे और कहने लगे कि यह बालक बड़ा ही होनहार है और एक दिन वह बहुत बड़ा आदमी होगा।

सुयेनच्वांगका सबसे बड़ा भाई घरपर ही रहता था। उसका विवाह हो गया था। दूसरा भाई जिसका नाम 'चांगची' था बौद्ध संन्यासी हो गया था। वह लोयांग नगरके 'चिंग-तू' नामक विहारमें रहा करता था और बौद्ध धर्मग्रंथोंका अध्ययन करता था। तीसरा भाई सुयेनच्वांगसे कुछ बड़ा था और घरपर ही रहता था। एक बार चांगची घरपर अपने पितामातासे मिलने आया और सुयेनच्वांगके विद्यानुरागको देख उसे अपने साथ पढ़ानेके लिये लोयांग नगरमें जहां वह रहा करता था ले गया। वहां अपने भाईके साथ सुयेनच्वांग गया और उसके पास रहकर बौद्ध धर्मके विनयका अध्ययन करने लगा।

इसी बीचमें सम्राट्का एक आज्ञापत्र लोयांग नगरके अध्यक्षके पास आया कि लोयांग नगरमें चौदह ऐसे भिक्षु चुने जायँ जिनको सबसे योग्य समझा जाय और उनके भरण-पोषणका व्यय राजकोशसे दिया जाय। यहां इस कामके लिये एक समिति बनाई गई और चिन-शेनक्रोको उसका प्रधान नियत किया गया। समितिने यह निश्चय किया कि समस्त लोयांगके भिक्षुओंकी परीक्षा ली जावे और जो परीक्षोत्तीर्ण हों उनमेंसे चौदह ऐसे भिक्षु चुन लिये जायँ जो सबमें श्रेष्ठ पाये जायँ। निदान परीक्षाके लिये तिथि नियत की गई और भिक्षुओंको सूचना दी गई कि जो परीक्षामें सम्मिलित होना चाहे वह अमुक स्थानपर नियत तिथिको उपस्थित हो। स्वयं सभापति चिंग-शेनक्रोने भिक्षुओंकी योग्यताकी परीक्षा करनेका काम अपने हाथमें लिया। नियत तिथिपर परीक्षाके स्थानपर सहस्रों भिक्षुओंकी भीड़ लग गई। बड़े बड़े वयोवृद्ध और विद्वान श्रमण परीक्षा देनेके लिये आये थे। परीक्षाके मंडपके द्वारपर भिक्षुओंको भीड़ लगी हुई थी। भला भिक्षुओंके सामने श्रमणें किस गिनतीमें थे। फिर भी बालक सुयेनच्वांगके साहसको तो देखिये! वह बारह तेरह वर्षकी अवस्थामें परीक्षा-मंडपके द्वारपर जा डटा। द्वारके रक्षकने उसे भीतर जानेसे रोका पर बालक सुयेनच्वांग निराश होकर लौट न आया। वह वहीं द्वारपर डटा खड़ा रह गया। थोड़ी देरमें चिंगसेनक्वो परीक्षार्थियोंकी परीक्षा लेनेके उद्देश्यसे परीक्षा-मंडपपर आया। उसने द्वारपर

एक अल्पवयस्क बालकको खड़ा देख अत्यंत विस्मित होकर पूछा कि भाई तुम कौन हो? कहाँ आये हो? सुयेनच्वांगने अपना नाम-ग्राम बतलाया और आगे कहना ही चाहता था कि सभापतिने हंसकर कहा कि क्या तुम यह चाहते हो कि मैं भी चुना जाऊँ। सुयेनच्वांगने कहा कि इच्छा तो यही थी पर यहां तो अल्पवयस्क जान जब मंडपमें प्रवेश ही नहीं मिलता तब चुने जानेकी बात तो दूर है। उसने उससे पूछा कि पहले यह तो बतलाओ कि तुम भिक्षु होके करोगे क्या? सुयेनच्वांगने उत्तर दिया कि मेरी तो एक मात्र हार्दिक आकांक्षा यही है कि कषाय वस्त्र धारण कर मैं चारों ओर तथागतके उपदिष्ट धर्म यथा-विद्या-बुद्धि प्रचार करूं। चिंगशेनको बालककी आशाभरी बातोंको सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुआ और उसे होनहार समझ अपने साथ समितिके सामने ले जाकर कहा कि यों तो रटे हुएको सुना देना सहज काम है पर आत्मसंयम और साहस विरले ही पुरुष-रत्नोंमें होता है। यदि आप लोग इस नवयुवकको चुननेकी कृपा करें तो मुझे आशा है कि किसी समय यह शाक्य-सिंहके धर्मका एक प्रधान रत्न निकलेगा। पर दुःख है तो एक बातका है कि जब इस उठनेवाले श्याम मेघसे अमृतकी धारा बरसेगी तब न मैं रह जाऊंगा न आप ही लोग रह जावेंगे। मेरा तो इतना मात्र अनुरोध है कि आप लोग इस होनहार बालकके उभरते हुए साहस और भावी योग्यताको दबने न दें। उनका दबाना अच्छा नहीं है। सभापतिकी इस बातको सभाके

सभी सदस्योंने मान ली और सुयेनच्वांगका नाम बिना परीक्षा दिये ही चौदह चुने हुए भिक्षुओंकी सूचीमें लिख लिया गया। चुनाव हो जानेपर सुयेनच्वांगको उसके भरण पोषणका व्यय राजकोशसे मिलने लगा और वह अपने भाई चांगचीके पास लोयांगमें रहकर शास्त्रोंका अध्ययन करने लगा।

चिंगत् संघाराममें किंग नामक एक प्रसिद्ध विद्वान भिक्षु रहता था। उससे सुयेनच्वांग निर्वाणसूत्र और महायानके अनेक ग्रंथोंका अध्ययन करता रहा। अध्ययन-कालमें वह इस प्रकार विद्याके अध्ययनमें दत्तचित्त था कि उसे न तो अपने खानेकी सुध थी न सोनेकी। दिनरात अपनी पुस्तकको लिये पढ़ा करता था। उसकी प्रतिभा और धारणा शक्ति ऐसी थी कि जिस पुस्तकके पाठको वह एक बार सुनता था उसे भूलता न था और दुहरानेपर तो उसे वह कंठाग्र ही हो जाता था। उसे अध्ययन करते थोड़े ही दिन बीते थे और केवल तेरह चौदह वर्षकी अवस्था थी कि एक बार संघमें अनेक भिक्षुओंने किसी सूत्रकी व्याख्या करनेके लिये आग्रह किया। बालक सुयेनच्वांग उनकी बातको न टाल सका और उपदेशके आसनपर जा बैठा और उस सूत्रकी ऐसी मनोहर व्याख्या की और सूक्ष्म भावोंका उद्घाटन किया कि श्रोतागण उसे सुनकर दंग रह गये और सबके मुंहसे साधु साधु निकलने लगा। सारे लोयांग प्रदेशमें घर घर उसकी प्रशंसा होने लगी और दूर दूरसे लोग उस होनहार बालकको देखनेके लिये दौड़ दौड़कर आने लगे।

सुयेनच्वांग



बाल्यावस्था

चीनके प्रसिद्ध यात्री सुयेनच्वांगका जन्म चीन देशके कांउशी प्रांतके चिनल्‌ नामक ग्राममें सन्‌ ६०० ईस्वीमें हुआ था। वह चिन वंशका था और उसका वंश-परम्परा प्रसिद्ध 'चंगकांग'से मिलता है जो चीन देशके हानवंशके शासनकालमें 'ताइकिउ' प्रदेशका अधिपति था। सुयेनच्वांगके पितामहका नाम 'कौंग' था। वह चीन देशके प्रसिद्ध विद्वानोंमें था जिसकी विद्वत्ता देख 'हसी' वंशके महाराजने उसे 'पेकिंग' के विश्वविद्यालयके प्रधानके पदपर नियुक्त किया था और 'चाऽनान' की जागीर उसके भरण-पोषणके लिये प्रदान की थी। उसका पिता 'हुई' यद्यपि बड़ा पंडित था तथापि इतना सीधा सादा और साधु पुरुष था कि उसने कभी राजकीय प्रतिष्ठा और पदकी कामना न की और सदा नगरसे अलग रहकर धार्मिक ग्रंथोंके स्वाध्यायमें मग्न रहा करता था। वह गृही होते हुए त्यागी था और आजन्म उसने सांसारिक झगड़ोंसे अपनेको अलग रखा। कितनी बार प्रान्तों और जिलोंमें नौकरियां राजकी ओरसे मिलीं पर उसने

यह कहकर उनका तिरस्कार कर दिया कि मेरा स्वास्थ्य इस योग्य नहीं है कि मैं सरकारी कामके बोझको उठा सकूं।

हुईके चार पुत्र थे जिनमें सबसे छोटा सुयेनच्वांग था। सुयेनच्वांग बचपनहीसे बड़ा गंभीर, शांत, नम्र और पितृभक्त था। वह सदा पढ़ने लिखनेमें लगा रहता था। एकांतवास उसे बहुत पसंद था। वह कभी न खेलता था न बिना काम अपने घरसे बाहर निकलता था। यहांतक कि वह अपने जोड़ी पाटीके लड़कोंके साथ भी कभी न खेलता था। चिनलू ग्राम एक छोटासा नगर था। वहां नित्य सड़कोंपर मेले तमाशेकी भीड़ लगी रहती थी। अनेकों यात्रायें निकलती थीं, बाजे बजते थे, गांवके लड़के झुंडके झुंड उनके पीछे दौड़ते थे पर सुयेनच्वांग कभी उनको देखनेके लिये घरके बाहर पैर नहीं रखता था। वह चीन देशके आचारके ग्रंथोंके अध्ययनमें निरंतर लगा रहता था। वह आचारके ग्रंथोंका बड़ा ही प्रेमी था और सदाचारमें उसकी बड़ी श्रद्धा थी और बड़ी सावधानीसे आचारका पालन करता था। वह इतना विनीत और नम्र था कि प्रत्येकके साथ बड़ी नम्रतासे आचारशास्त्रकी पद्धतिके अनुसार बर्ताव करता था। एक बारकी बात है कि उसका पिता बैठा हुआ 'हियाव' नामक ग्रंथका पाठ कर रहा था। उस समय सुयेनच्वांगकी अवस्था ८ वर्षकी थी। ग्रंथ बड़ा ही रोचक और पितृभक्ति-संबंधी था। पढ़ते-पढ़ते वह कथाके उस अंशपर पहुंचा जहांपर 'चांगच्यू'के अपने पिताकी आज्ञा पाते ही विनीत भावसे

उनके आगे बढ़कर खड़े होनेका वर्णन था। सुयेनच्वांगके कानोंमें पिताके मुंहसे इस शब्दका पड़ना था कि वह अपने कपड़े संभालकर जाकर अपने पिताके आगे हाथ बांध विनीत भावसे खड़ा हो गया। पिताने सुयेनच्वांगको यह चेष्टा देख चकित हो उससे बड़े प्यारसे पूछा कि बात क्या है। सुयेनच्वांगने उत्तर दिया कि जब 'ज़ांगच्यू' अपने पिताको बात सुनकर अपने स्थानसे उठ खड़ा हुआ तो सुयेनच्वांग कैसे वही बात अपने पिताके मुंहसे सुन कर बैठा रहे। पिताको बालककी यह बात सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने अपने सारे कुटुंबसे इस अद्भुत समाचारको कहा और सब लोग उसे सुनकर उसकी प्रशंसा करने लगे और कहने लगे कि यह बालक बड़ा ही होनहार है और एक दिन वह बहुत बड़ा आदमी होगा।

सुयेनच्वांगका सबसे बड़ा भाई घरपर ही रहता था। उसका विवाह हो गया था। दूसरा भाई जिसका नाम 'चांगची' था बौद्ध संन्यासी हो गया था। वह लोयांग नगरके 'चिंग-तू' नामक विहारमें रहा करता था और बौद्ध धर्मग्रंथोंका अध्ययन करता था। तीसरा भाई सुयेनच्वांगसे कुछ बड़ा था और घरपर ही रहता था। एक बार चांगची घरपर अपने पितामातासे मिलने आया और सुयेनच्वांगके विद्यानुरागको देख उसे अपने साथ पढ़ानेके लिये लोयांग नगरमें जहां वह रहा करता था, ले गया। वहां अपने भाईके साथ सुयेनच्वांग गया और उसके पास रहकर बौद्ध धर्मके विनयका अध्ययन करने लगा।

इसी बीचमें सम्राट्का एक आज्ञापत्र लोयांग नगरके अध्यक्षके पास आया कि लोयांग नगरमें चौदह ऐसे भिक्षु चुने जायँ जिनको सबसे योग्य समझा जाय और उनके भरण-पोषणका व्यय राजकोशसे दिया जाय। वहां इस कामके लिये एक समिति बनाई गई और चिन-शेनक्वोको उसका प्रधान नियत किया गया। समितिने यह निश्चय किया कि समस्त लोयांगके भिक्षुओंकी परीक्षा ली जावे और जो परीक्षोत्तीर्ण हों उनमेंसे चौदह ऐसे भिक्षु चुन लिये जायँ जो सबमें श्रेष्ठ पाये जायँ। निदान परीक्षाके लिये तिथि नियत की गई और भिक्षुओंको सूचना दी गई कि जो परीक्षामें सम्मिलित होना चाहे वह अमुक स्थानपर नियत तिथिको उपस्थित हो। स्वयं सभापति चिंग-शेनक्वोने भिक्षुओंकी योग्यताकी परीक्षा करनेका काम अपने हाथमें लिया। नियत तिथिपर परीक्षाके स्थानपर सहस्रों भिक्षुओंकी भीड़ लग गई। बड़े बड़े वयोवृद्ध और विद्वान श्रमण परीक्षा देनेके लिये आये थे। परीक्षाके मंडपके द्वारपर भिक्षुओंकी भीड़ लगी हुई थी। भला भिक्षुओंके सामने श्रमणों किस गिनतीमें थे। फिर भी बालक सुयेनच्वांगके साहसको तो देखिये! वह बारह तेरह वर्षकी अवस्थामें परीक्षा-मंडपके द्वारपर जा डटा। द्वारके रक्षकने उसे भीतर जानेसे रोका पर बालक सुयेनच्वांग निराश होकर लौट न आया। वह वहीं द्वारपर डटा खड़ा रह गया। थोड़ी देरमें चिंगसेनक्वो परीक्षार्थियोंकी परीक्षा लेनेके उद्देश्यसे परीक्षा-मंडपपर आया। उसने द्वारपर

एक अल्पवयस्क बालकको खड़ा देख अत्यंत विस्मित होकर पूछा कि भाई तुम कौन हो? कहाँ आये हो? सुयेनच्वांगने अपना नाम-ग्राम बतलाया और आगे कहना ही चाहता था कि सभापतिने हँसकर कहा कि क्या तुम यह चाहते हो कि मैं भी चुना जाऊँ। सुयेनच्वांगने कहा कि इच्छा-तो यही थी पर यहाँ तो अल्पवयस्क जान जब मंडपमें प्रवेश ही नहीं मिलता तब चुने जानेकी बात तो दूर है। उसने उससे पूछा कि पहले यह तो बतलाओ कि तुम भिक्षु होके करोगे क्या? सुयेनच्वांगने उत्तर दिया कि मेरी तो एक मात्र हार्दिक आकांक्षा यही है कि कषाय वस्त्र धारण कर मैं चारों ओर तथागतके उपदिष्ट धर्म यथा-विद्या-बुद्धि प्रचार करूँ। चिंगशेनको बालककी आशाभरी बातोंको सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुआ और उसे होनहार समझ अपने साथ समितिके सामने ले जाकर कहा कि यों तो रटे हुएको सुना देना सहज काम है पर आत्मसंयम और साहस विरले ही पुरुष-रत्नोंमें होता है। यदि आप लोग उस नवयुवकको चुननेकी कृपा करें तो मुझे आशा है कि किसी समय यह शाक्य-सिंहके धर्मका एक प्रधान रत्न निकलेगा। पर दुःख है तो एक बातका है कि जब इस उठनेवाले श्याम मेघसे अमृतकी धारा बरसेगी तब न मैं रह जाऊँगा न आप ही लोग रह जायेंगे। मेरा तो इतना मात्र अनुरोध है कि आप लोग इस होनहार बालकके उभरते हुए साहस और भावी योग्यताको दबने न दें। उनका दबाना अच्छा नहीं है। सभापतिको इस बातको समाके

सभी सदस्योंने मान ली और सुयेनच्वांगका नाम बिना परीक्षा दिये ही चौदह चुने हुए भिक्षुओंकी सूचीमें लिख लिया गया। चुनाव हो जानेपर सुयेनच्वांगको उसके भरण पोषणका व्यय राजकोशसे मिलने लगा और वह अपने भाई चांगचीके पास लोयांगमें रहकर शास्त्रोंका अध्ययन करने लगा।

चिंगतू संघाराममें किंग नामक एक प्रसिद्ध विद्वान भिक्षु रहता था। उससे सुयेनच्वांग निर्वाणसूत्र और महायानके अनेक ग्रंथोंका अध्ययन करता रहा। अध्ययन-कालमें वह इस प्रकार विद्याके अध्ययनमें दत्तचित्त था कि उसे न तो अपने खानेकी सुध थी न सोनेकी। दिनरात अपनी पुस्तकको लिये पढ़ा करता था। उसकी प्रतिभा और धारणा शक्ति ऐसी थी कि जिस पुस्तकके पाठको वह एक बार सुनता था उसे भूलता न था और दुहरानेपर तो उसे वह कंठाग्र ही हो जाता था। उसे अध्ययन करते थोड़े ही दिन बीते थे और केवल तेरह चौदह वर्षकी अवस्था थी कि एक बार संघमें अनेक भिक्षुओंने किसी सूत्रकी व्याख्या करनेके लिये आग्रह किया। बालक सुयेनच्वांग उनकी बातको न टाल सका और उपदेशके आसनपर आ बैठा और उस सूत्रकी ऐसी मनोहर व्याख्या की और सूक्ष्म भावोंका उद्घाटन किया कि श्रोतागण उसे सुनकर दंग रह गये और सबके मुंहसे साधु साधु निकलने लगा। सारे लोयांग प्रदेशमें घर घर उसकी प्रशंसा होने लगी और दूर दूरसे लोग उस होनहार बालकको देखनेके लिये दौड़ दौड़कर आने लगे।

राजविप्लव

इसी बीचमें चीन देशमें घोर राजविप्लव मचा। सुई राजवंशका अधिकार जाता रहा। चारों ओर उपद्रव मच गया और मारकाट आरंभ हो गया। 'हो' और 'लो' नदीके मध्यके प्रदेशमें तो लुटेरे और डाकुओंने अपना अपना डेरा जमाया। वे चारों ओर लूटमार करते और प्रजाके घरोंको फूंकते थे। सारा प्रदेश उनके अत्याचारसे व्याकुल हो उठा। दिनरात डाके पड़ते, अधिवासी मारे काटे जाते, उनके धन लूटे जाते और उनके गांव जलाकर भस्मीभूत कर दिये जाते थे। देशका देश उजाड़ हो गया। जान पड़ता था कि कोई शासक ही नहीं है। जो लोग वहांके शासक और राजकर्मचारी थे उनमेंसे कितने हो मारे गये और जो बच गये वे अपने प्राण लेकर इधर उधर भागकर अपने जीवनकी रक्षाके लिये जा छिपे। अन्यायियोंने संघारामों और विहारपर भी हाथ साफ करना आरंभ किया और अहिंसक भिक्षुओंपर भी हाथ उठानेमें संकोच न किया। कितने भिक्षुओंके रक्त बहाये, संघारामोंको लूटा और फूंककर खाकमें मिला दिया। भूमिपर शव पड़े सड़ते थे कोई जंतु उनको पूछता न था। भिक्षु लोग उनके उपद्रवोंसे तंग आकर इधर उधर भागने लगे और जिसको जहाँ सुभीता मिलती भाग भागकर अपने प्राण बचाने लगे।

इसी समय तांगवंशके एक वीर पुरुष काउतांगके भाग्यके

सूर्य्यका उदय हुआ। उसके पुत्र कुमारतांगने थोड़ेसे वीर पुरुषोंकी सहायतासे 'चांगान'में अपना अधिकार जमा लिया और वहां सुव्यवस्था स्थापित की। पर उस समय अन्य प्रांतोंपर उसके अधिकार नहीं हो पाये थे और वहां ऊधम मचा ही रहा।" जब लोयांग प्रदेशमें अधिक लूटमारका बाजार गरम हुआ, पढ़ने-पढ़ानेकी व्यवस्था जाती रही और सबको अपने प्राणोंके लाले पड़ने लगे तो बालक सुयेनच्वांगने अपने भाई चांगचीसे कहा कि भाई, अब तो यहाँ एक क्षण ठहरना उचित नहीं। जब प्राणों-हीके बचनेकी आशा नहीं तो पढ़ना-पढ़ाना कहाँ! चलो अब चांगान भाग चलें। सुनते हैं कि वहां कुमारतांगने अपना अधिकार जमा लिया है और उपद्रवी चिनचांगवालोंको वहांसे मारकर बाहर भगा दिया है। अब वहांकी अधिवासी प्रजा उसके शासनसे बहुत सुखी है, वह प्रजावत्सल है, अपनी प्रजाको पुत्रवत् जानता है। सिवा चांगानके और कहीं जानेमें हम लोगोंका कल्याण नहीं है। चांगचीको भी बालक सुयेनच्वांगकी सम्मति पसंद आई और दोनों भाई लोयांगसे भागकर किसी न किसी प्रकार चांगान पहुंचे।

चांगानमें यद्यपि शांति स्थापित हो चुकी थी और बाहरी चोर डाकुओंका वहां किसी प्रकारका भय नहीं था पर यह तांगवंशके शासनका पहला वर्ष था और पठन-पाठनकी वहां सुव्यवस्था न थी; यद्यपि चांगानमें चार विहार थे और पूर्व राजवंशोंके समयमें दूर दूरसे विद्वान भिक्षु वहां बुलाकर रखे

जाते थे। स्वयं सुई सम्राट् 'यांगती' के कालमें भिक्षुओंके भरण-पोषणका बहुत अच्छा प्रबन्ध था। वहां किंगतू और साइचिन प्रभृति परम विद्वान भिक्षु रहते थे जिनसे शिक्षा ग्रहण करनेके लिये दूर दूरसे भिक्षु चांगानमें आते थे। पर सुईवंशकी शक्तिके ह्रासके साथ ही साथ जब राजविप्लव मचा तो लोगोंको अपने प्राण बचाने कठिन हो गये। सब जिधर-तिधर पश्चिमके देशोंको भाग गये। वहां न कोई भिक्षु रह गया था और न वहां पठन-पाठनकी कोई व्यवस्था ही रह गई थी। जान पड़ता था कि सब लोग कान-फूशी और तथागतके उपदेशोंको भूल गये थे और 'मृते वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्'के मंत्रको पढ़कर तलवारोंकी मूर्चा साफ करनेमें प्रवृत्त थे जिसे देखो वही हथियार बांधे 'युद्धाय कृत' निश्चय था। न किसीको धर्मकी चिंता थी न कहीं धर्मकथा और धर्मोपदेशके शब्द सुनाई पड़ते थे। विद्वान बेचारे सुयेनच्वांगको जिसका उद्देश्य विद्याध्ययन करना था चांगानमें भी शांति न मिली। वह चुपचाप बैठकर रोटी तोड़नेके लिये नहीं उत्पन्न हुआ था और न उसका जन्म शस्त्र ग्रहण कर देशके हित संग्राम करनेहीके लिये हुआ था। उसका जन्म हुआ था विद्याध्ययन करने, देश देशकी यात्रा करने और विदेशसे धर्म-ग्रंथोंको खोजकर उनके अनुवाद कर अपने देशके साहित्यके भांडारको भरने और धर्मका संशोधन करनेके लिये। वह चुपचाप अपने पेटको पालनेवाला और विपत्तिके दिनको काटनेवाला नहीं था। वह अपना मन उदास कर अपने भाईसे बोला कि

भाई, इतनी दूर आनेपर भी हमारा काम चलता नहीं दिख
देता। कबतक यहां निठल्ले बैठकर दिन काटें। यहां न तो पढ़
लिखनेका कोई प्रबन्ध है और न शीघ्र कोई प्रबन्ध होनेका ही
ही दिखाई पड़ रहा है। न कहीं धर्म-चर्चा होती है न क
भिक्षुसंघ है। जहां देखिये वहां 'युद्धस्वविगतज्वरः' का ना
सुनाई पड़ता है। चलो 'शुः' प्रदेशमें चलें। सम्भव है कि व
कुछ अध्ययनाध्यापनका कोई ढंग निकल आवे।

निदान दोनों भाई चांगानसे शुःप्रदेशकी ओर चले। 'चेउ
को पारकर जब वे हामचुयेनमें पहुंचे तो वहां उनको
परम विद्वान भिक्षु मिले जिनके नाम 'कांग' और 'किंग' थे
उनके साथ सुयेनच्वांग लोयांगमें रह चुका था। इतने दिनोंप
जब उन लोगोंने सुयेनच्वांगको देखा तो उनकी आंखोंसे प्रेम
आँसू निकल आये। वहां दोनों भाई उन दोनों श्रमणोंके पास
रह गये और कुछ पठन-पाठन करते रहे। फिर चारों साथ
वहांसे शिंगलू नामक नगरमें गये। वहां पहुंचकर उन लोगोंने
उस नगरको धर्मचर्चाका केंद्र बनाया और वहां उन
'साईचिंग' मिला। उसने वहां महायानके सम्परिग्रह और
अभिधर्मकी व्याख्या आरंभ की। वहां दोनों भाई भिक्षुओंके
संघमें दो तीन वर्षतक रह गये और अविश्रांत परिश्रम करके
अनेक शास्त्रोंका अध्ययन किया।

एक ओर तो देशमें विप्लवकी बाढ़ आई थी और इधर देशमें
पानी न बरसनेसे घोर अकाल पड़ा। उस वर्ष समस्त चीन देशमें

वृष्टिकी कमी थी और कहीं पुष्कल अन्न नहीं हुआ। केवल शुः-देशमें वृष्टि हुई थी और यहीं अन्न उत्पन्न हुआ था। वहां शांति-का साम्राज्य था। चारों ओरसे लोग भागकर शुःप्रदेशमें जाने लगे और भिक्षु जिनको केवल दाताओंके दानका आसरा था चारों ओरसे आ आकर सहस्रोंकी संख्यामें वहां टूट पड़े। सुयेनच्वांगको सत्संगका अच्छा अवकाश मिला। उन सबोंके संगमें नित्य धर्मचर्चा होने लगी और उपदेश-मंडपमें शास्त्रार्थ भी होता रहा। एक बार सब लोगोंने सुयेनच्वांगसे शास्त्रार्थ करनेका अनुरोध किया। उपदेश-मंडपमें सारे भिक्षु एकत्रित हुए और किसी गूढ़ धार्मिक विषयपर शास्त्रार्थ आरंभ किया। सुयेनच्वांगने उसका उत्तर ऐसा युक्तिपूर्ण दिया कि सबके मुंह बन्द हो गये। इस शास्त्रार्थमें सुयेनच्वांगका विजय पाना था कि सारे 'शुः', 'वू', 'लिंग' और 'चू' प्रदेशमें घर घर उस की विद्वत्ताकी चर्चा फैल गई। झुंडके झुंड लोग दूर दूरसे उसके देखनेके निमित्त दौड़े।

प्रव्रज्या

यहीं पर सुयेनच्वांगने २१ वर्षकी अवस्थामें प्रव्रज्या ग्रहण की और कषाय वस्त्र धारण किया। भिक्षुवेष धारण कर उसने यहीं अपना वर्षावास किया और विनयपिटकका अध्ययन समाप्त किया। विनयका अध्ययन समाप्तकर उसने सूत्रपिटक और अभिधर्मपिटकका अध्ययन किया। उनके अध्ययन करनेके

समय उसके मनमें अनेक प्रकारकी शंकायें उत्पन्न हुईं जिनके समाधानके लिये उसने वहांके उपस्थित भिक्षुओंसे बहुत कुछ वादविवाद किया पर उसको संतोष न हुआ। चांगानमें उस-समय कुछ अच्छे श्रमण रहते थे। वहांकी व्यवस्था बदल गई थी। पठन-पाठनकी सुव्यवस्था आरंभ हो गई थी। निदान. सुयेनच्वांगने अपने भाईसे कहा कि चलिये चांगान चलें, अब सुनते हैं कि चांगानमें कुछ पठनपाठनकी व्यवस्था हुई है और वहां अनेक विद्वान भिक्षु भी अब रहते हैं। वहां आनन्दसे विद्याध्ययन करेंगे और अनेक शंकाओंको जिन्हें यहांके भिक्षु. समाधान नहीं कर सकते उनसे समाधान करायेंगे। पर उसके भाईने वहां जानेसे इनकार किया और उसे भी वहां जाने न दिया। अन्तको उसने चुपकेसे भागनेकी सोची और एक दिन अवकाश पाकर जब सब अपने अपने कामोंमें लगे थे वह टहलनेके बहाने 'सिंगतू' से निकला और अनेक व्यापारियोंके पीछे जो हांगचाउ जा रहे थे हो लिया। उनके साथ साथ कई घाटियों-को पार करता कई दिनोंमें बड़ी कठिनाईसे वह 'हांगचाउ' पहुंचा। वहां जाकर तियनहांग नामक एक संघाराममें उतरा। वहांके श्रमण और श्रावक सब उसकी प्रशंसा बहुत दिनोंसे सुन रहे थे और उसके दर्शनोंके बड़े उत्सुक थे। जब उन लोगों-को उसके आगमनका समाचार मिला तो सब लोग उठ आये. और आकर उसे घेर लिये और उससे वहां ठहरकर धर्मकथा सुनानेका अनुरोध करने लगे।

सुयेनच्वांग उनकी प्रार्थनाको विफल न कर सका। वहां रहकर उसने अभिधर्मकी व्याख्या सुनानी आरंभ की और उनके अनुरोधसे एक वर्षतक वहां रह गया। वहां उसकी व्याख्याकी ख्याति इतनी हुई कि आसपासके सब देशोंमें उसके मनोहर रीतिसे व्याख्या करनेका समाचार गूंज उठा। उड़ते उड़ते यह समाचार हानचांगके राजाके कानोंतक पहुंचा। वह बड़ा धर्मभीरु और श्रद्धालु पुरुष था। सुयेनच्वांगके दर्शनोंका वह इतना उत्सुक हुआ कि अपने सहचरोंको लिये वह स्वयं 'हांगचाउ' उसके दर्शनोंके लिये पहुंचा और अपने साथियों सहित आकर बड़ी श्रद्धा और भक्तिसे उसके धर्मोपदेशोंको श्रवण किया। वह उसके मनोहर व्याख्यान सुनकर इतना मुग्ध हो गया कि सुयेनच्वांगसे कहने लगा कि यदि आप आज्ञा दें तो शास्त्रार्थ करानेका प्रबन्ध किया जाय। सुयेनच्वांगने राजाके बहुत अनुरोध करनेपर शास्त्रार्थ करना स्वीकार कर लिया और राजाने शास्त्रार्थके लिये सभा करनेके लिये बड़े बड़े विद्वान भिक्षुओंको आमंत्रित किया। नियत दिनपर सभामण्डपमें सैकड़ों विद्वान वयोवृद्ध भिक्षु आकर एकत्रित हुए और राजा स्वयं शास्त्रार्थ करानेके लिये सभामें अपने मन्त्रियों और राज-कर्मचारियों सहित आकर उपस्थित हुआ। राजाके आ जानेपर उसकी आज्ञा पाकर सब भिक्षु एक एक करके सुयेनच्वांगसे प्रश्न करने लगे और सुयेनच्वांग एक एकके उत्तर और प्रत्युत्तर देने लगा। इस प्रकार सुयेनच्वांगने सारे भिक्षुओंके प्रश्नोंके उत्तर युक्ति-

पूर्वक दिये और किसीको उसकी युक्तियोंको काटनेका साहस न पड़ा। सभामें सुयेनच्वांगकी विजय हुई और सभी भिक्षुओं-ने अपना पराजय स्वीकार किया। सभा विसर्जित हुई और और राजा इतना प्रसन्न हुआ कि उसने बहुत कुछ धन, रत्न सुयेनच्वांगके आगे लाकर रखा पर सुयेनच्वांगने उसके लेनेसे इनकार किया। सच है सच्चे त्यागीको संसारके बड़ेसे बड़े ऐश्वर्य्य भी बन्धनमें नहीं ला सकते।

सुयेनच्वांगने देखा कि अब यहां अधिक ठहरनेसे बंधनमें पड़नेकी आशंका है। वह सभाके समाप्त होते ही हांगचाउसे चल दिया और वहांसे उत्तर दिशामें जाकर विद्वान भिक्षुओंसे अपनी शंकाओंको समाधान करानेका निश्चय किया।

सुयेनच्वांग हाङचांगसे चलकर विद्वानोंकी खोज करता सियांगचाउमें गया। वहां उसे हिउ नामक एक परम विद्वान भिक्षु मिला। उसके पास रहकर उसने अपनी शंकाओंका समा-धान कराना चाहा और जब वहां भी उसको शांति न मिली तो वहांसे 'चिउचाउ' नगरमें पहुंचा। वहां शिन नामक एक विद्वान भिक्षु रहता था। उसके पास रहकर उसने सत्यसिद्ध व्याकरण अध्ययन किया और अध्ययन समाप्त कर चांगानकी ओर चला॥

चांगानमें पहुंचकर वह महाबोधि नामक विहारमें ठहरा। वहां उस समय पो: नामक एक विद्वान भिक्षु रहता था। उससे उसने कोशशास्त्रका अध्ययन किया और केवल एक पाठमें समस्त ग्रंथको कंठाग्र कर गया। वहींपर उसको शांग और

पिङ्ग नामक दो और बड़े स्थविर मिले। वह दोनों बड़े प्रसिद्ध विद्वान और शास्त्रज्ञ भिक्षु थे। सारे देशमें उनका मान था और उनकी विद्वत्ताकी ख्याति थी। उसने उन दोनों विद्वानोंके पास थोड़े दिनोंतक रहकर अनेक ग्रंथोंका अध्ययन किया और अपनी शंकाओंका समाधान कराता रहा। उसकी अलौकिक प्रतिभा देखकर दोनों विद्वान दंग रह गये और उन विद्वानोंने कहा—सुयेनच्वांग, समय आयगा जब तुम्हारे उद्योगसे चीन देशमें धर्मके सूर्य्यका उदय होगा। पर खेद इतना ही है कि हम उस समयमें न रह जायंगे।

इस प्रकार श्रमण सुयेनच्वांग सारे देशमें बड़े बड़े विद्वान और वयोवृद्ध भिक्षुओंको ढूंढ़ता फिरा और जहां जहां जो जो विद्वान भिक्षु मिले और वे जिस जिस विषयके ज्ञाता थे उनसे उस उस विषयका अध्ययन किया और अपनी शंकाओंका समाधान कराता फिरा। पर फल उसके विपरीत हुआ ज्यों ज्यों वह अधिक अधिक शास्त्रोंका अध्ययन करता गया उसकी शंकायें भी बढ़ती गईं।

भारतयात्राका संकल्प

अंतको जब सुयेनच्वांगकी शंकायें बढ़ती गईं और समाधान नहीं हो सका तब बड़े धर्म-संकटमें पड़ा। उसने देखा कि जितने निकाय हैं सबके मत अलग अलग हैं। सब अपनेको अच्छा और दूसरेको बुरा बताते हैं। कोई किसी कर्मका विधान

करता है तो दूसरा निषेध करता है। बड़े झगड़ेकी बात है। तथागतका मुख्य उपदेश क्या था इसका ठीक पता नहीं चलता। सब उसके वाक्योंका अर्थ तोड़ मरोड़कर अपने अनुकूल करते हैं। इसका निपटारा तबतक होना उसे दुःसाध्य जान पड़ा जबतक कि तथागतके उपदेश ज्योंके त्यों उन्हींकी भाषामें न देखें जायँ और उनके वास्तविक अर्थका निश्चय न किया जाय। बिना मूल वचनको देखे यह निर्णय करना नितांत कठिन है कि किस निकायका कौन अंश तथागतके वचनोंके मुख्य आशयके अनुकूल है और कौन विरुद्ध है। पर इसमें संदेह नहीं कि तथागतके वाक्योंका एक ही अर्थ होगा। अतएव उसे यह जान पड़ा कि प्रायः सबके सब निकाय किसी न किसी अंशमें भगवानके वचनके विरुद्ध हैं। अब इसका निश्चय कैसे हो कि भगवानके वचन क्या थे। कारण यह था कि चीन देशमें जो कुछ था वह अनुवाद रूपमें और प्रायः निकायोंके अंशोंके अनुवाद थे। मूल संस्कृत या पाली आदि भाषाके सूत्रग्रंथ तो वहां थे नहीं और न कोई उनको जानता था। निदान उसने अपने मनमें यह ठान लिया कि कुछ भी क्यों न हो मैं भारतवर्ष जाऊंगा और वहां जाकर मूलग्रंथोंका अध्ययन करूंगा और उनके वास्तविक अर्थोंका बोध प्राप्तकर अपने भ्रमको मिटाकर अपने देशके भिक्षुओंके मोहका नाश करूंगा।

यह विचार उसके मनमें दृढ़ होता गया और उसने अपने दो तीन साथी श्रमणोंपर अपने इस विचारको प्रकट किया। वे

राजविप्लव

इसी बीचमें चीन देशमें घोर राजविप्लव मचा। सुई राजवंशका अधिकार जाता रहा। चारों ओर उपद्रव मच गया और मारकाट आरंभ हो गया। 'हो' और 'लो' नदीके मध्यके प्रदेशमें तो लुटेरे और डाकुओंने अपना अपना डेरा जमाया। वे चारों ओर लूटमार करते और प्रजाके घरोंको फूंकते थे। सारा प्रदेश उनके अत्याचारसे व्याकुल हो उठा। दिनरात डाके पड़ते, अधिवासी मारे काटे जाते, उनके धन लूटे जाते और उनके गांव जलाकर भस्मीभूत कर दिये जाते थे। देशका देश उजाड़ हो गया। जान पड़ता था कि कोई शासक ही नहीं है। जो लोग वहांके शासक और राजकर्मचारी थे उनमेंसे कितने तो मारे गये और जो बच गये वे अपने प्राण लेकर इधर उधर भागकर अपने जीवनकी रक्षाके लिये जा छिपे। अन्यायियोंने संघारामों और विहारपर भी हाथ साफ करना आरंभ किया और अहिंसक भिक्षुओंपर भी हाथ उठानेमें संकोच न किया। कितने भिक्षुओंके रक्त बहाये, संघारामोंको लूटा और फूंककर खाकमें मिला दिया। भूमिपर शव पड़े सड़ते थे कोई जंतु उनको पूछता न था। भिक्षु लोग उनके उपद्रवोंसे तंग आकर इधर उधर भागने लगे और जिसको जहाँ सुभीता मिलती भाग भागकर अपने प्राण बचाने लगे।

उसी समय तांगवंशके एक वीर पुरुष काउतांगके

सूर्य्यका उदय हुआ। उसके पुत्र कुमारतांगने थोड़ेसे वीर पुरुषोंकी सहायतासे 'चांगान'में अपना अधिकार जमा लिया और वहां सुव्यवस्था स्थापित की। पर उस समय अन्य प्रांतोंपर उसके अधिकार नहीं हो पाये थे और वहां ऊधम मचा ही रहा। जब लोयांग प्रदेशमें अधिक लूटमारका बाजार गरम हुआ, पढ़ने-पढ़ानेकी व्यवस्था जाती रही और सबको अपने प्राणोंके लाले पड़ने लगे तो बालक सुयेनच्वांगने अपने भाई चांगचीसे कहा कि भाई, अब तो यहाँ एक क्षण ठहरना उचित नहीं। जब प्राणोंहीके बचनेकी आशा नहीं तो पढ़ना-पढ़ाना कहां! चलो अब चांगान भाग चलें। सुनते हैं कि वहां कुमारतांगने अपना अधिकार जमा लिया है और उपद्रवी चिनचांगवालोंको वहांसे मारकर बाहर भगा दिया है। अब वहांकी अधिवासी प्रजा उसके शासनसे बहुत सुखी है, वह प्रजावत्सल है, अपनी प्रजाको पुत्रवत् जानता है। सिवा चांगानके और कहीं जानेमें हम लोगोंका कल्याण नहीं है। चांगचीको भी बालक सुयेनच्वांगकी सम्मति पसंद आई और दोनों भाई लोयांगसे भागकर किसी न किसी प्रकार चांगान पहुंचे।

चांगानमें यद्यपि शांति स्थापित हो चुकी थी और बाहरी चोर डाकुओंका वहां किसी प्रकारका भय नहीं था पर वह तांगवंशके शासनका पहला वर्ष था और पठन-पाठनकी वहां सुव्यवस्था न थी; यद्यपि चांगानमें चार विहार थे और पूर्व राजवंशोंके समयमें दूर दूरसे विद्वान भिक्षु वहां बुलाकर रखे

जाते थे। स्वयं सुई सम्राट् 'यांगती' के कालमें भिक्षुओंके भरण-पोषणका बहुत अच्छा प्रबन्ध था। यहां किंगत् और साइचिन प्रभृति परम विद्वान भिक्षु रहते थे जिनसे शिक्षा ग्रहण करनेके लिये दूर दूरसे भिक्षु चांगानमें आते थे। पर सुईवंशकी शक्तिके ह्रासके साथ ही साथ जब राजविप्लव मचा तो लोगोंको अपने प्राण बचाने कठिन हो गये। सब जिधर-तिधर पश्चिमके देशोंको भाग गये। वहां न कोई भिक्षु रह गया था और न वहां पठन-पाठनकी कोई व्यवस्था ही रह गई थी। जान पड़ता था कि सब लोग कान-फूची और तथागतके उपदेशोंको भूल गये थे और 'मृते वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्'के मंत्रको पढ़कर तलवारोंकी मूठ साफ करनेमें प्रवृत्त थे जिसे देखो वही हथियार बांधे 'युद्धाय कृत' निश्चय था। न किसीको धर्मकी चिंता थी न कहीं धर्मकथा और धर्मोपदेशके शब्द सुनाई पड़ते थे। निदान बेचारे सुयेनचवांगको जिसका उद्देश्य विद्याध्ययन करना था चांगानमें भी शांति न मिली। वह चुपचाप बैठकर रोटी तोड़नेके लिये नहीं उत्पन्न हुआ था और न उसका जन्म शस्त्र ग्रहण कर देशके हित संग्राम करनेहीके लिये हुआ था। उसका जन्म हुआ था विद्याध्ययन करने, देश देशकी यात्रा करने और विदेशसे धर्म-ग्रंथोंको खोजकर उनके अनुवाद कर अपने देशके साहित्यके भांडारको भरने और धर्मका संशोधन करनेके लिये। वह चुपचाप अपने पेटको पालनेवाला और विपत्तिके दिनको काटनेवाला नहीं था। वह अपना मन उदास कर अपने भाईसे बोला कि

भाई, इतनी दूर आनेपर भी हमारा काम चलता नहीं दिखाई देता। कथतक यहां निठल्ले बैठकर दिन काटें। यहां न तो पढ़ने लिखनेका कोई प्रबन्ध है और न शीघ्र कोई प्रबन्ध होनेका डौल ही दिखाई पड़ रहा है। न कहीं धर्म-चर्चा होती है न कहीं भिक्षुसंघ है। जहां देखिये वहां 'युद्धस्वविगतज्वरः' का नाद सुनाई पड़ता है। चलो 'शुः' प्रदेशमें चलें। सम्भव है कि वहां कुछ अध्ययनाध्यापनका कोई ढंग निकल आये।

निदान दोनों भाई चांगानसे शुःप्रदेशकी ओर चले। 'चेउकु' को पारकर जब वे हानचुयेनमें पहुंचे तो वहां उनको दो परम विद्वान भिक्षु मिले जिनके नाम 'कांग' और 'किंग' थे। उनके साथ सुयेनच्वांग लोयांगमें रह चुका था। इतने दिनोंपर जब उन लोगोंने सुयेनच्वांगको देखा तो उनकी आंखोंसे प्रेमके आंसू निकल आये। वहां दोनों भाई उन दोनों श्रमणोंके पास रह गये और कुछ पठन-पाठन करते रहे। फिर चारों साथ ही वहांसे शिंगलू नामक नगरमें गये। वहां पहुंचकर उन लोगोंने उस नगरको धर्मचर्चाका केंद्र बनाया और यहां एक 'साईचिंग' मिला। उसने वहां महायानके सम्परिग्रह और अभिधर्मकी व्याख्या आरंभ की। वहां दोनों भाई भिक्षुओंके संघमें दो तीन वर्षतक रह गये और अविश्रांत परिश्रम करके अनेक शास्त्रोंका अध्ययन किया।

एक ओर तो देशमें विप्लवकी बाढ़ आई थी और इधर देशमें पानी न बरसनेसे घोर अकाल पड़ा। उस वर्ष समस्त चीन देशमें

वृष्टिकी कमी थी और कहीं पुष्कल अन्न नहीं हुआ। केवल शुः-देशमें वृष्टि हुई थी और वहीं अन्न उत्पन्न हुआ था। वहां शांतिका साम्राज्य था। चारों ओरसे लोग भागकर शुःप्रदेशमें आने लगे और भिक्षु जिनको केवल दाताओंके दानका आसरा था चारों ओरसे आ आकर सहस्रोंकी संख्यामें वहां टूट पड़े। सुयेनच्वांगको सत्संगका अच्छा अवकाश मिला। उन सबोंके संगमें नित्य धर्मचर्चा होने लगी और उपदेश-मंडपमें शास्त्रार्थ भी होता रहा। एक बार सब लोगोंने सुयेनच्वांगसे शास्त्रार्थ करनेका अनुरोध किया। उपदेश-मंडपमें सारे भिक्षु एकत्रित हुए और किसी गूढ़ धार्मिक विषयपर शास्त्रार्थ आरंभ किया। सुयेनच्वांगने उसका उत्तर ऐसा युक्तिपूर्ण दिया कि सबके मुँह बन्द हो गये। इस शास्त्रार्थमें सुयेनच्वांगका विजय पाना था कि सारे 'शुः', 'वू', 'सिंग' और 'च्रू' प्रदेशमें घर घर उस की विद्वत्ताकी चर्चा फैल गई। झुंडके झुंड लोग दूर दूरसे उसके देखनेके निमित्त दौड़े।

प्रव्रज्या

यहीं पर सुयेनच्वांगने २१ वर्षकी अवस्थामें प्रव्रज्या ग्रहण की और कषाय वस्त्र धारण किया। भिक्षुवेष धारण कर उसने यहीं अपना वर्षावास किया और विनयपिटकका अध्ययन समाप्त किया। विनयका अध्ययन समाप्तकर उसने सूत्रपिटक और अभिधर्मपिटकका अध्ययन किया। उनके अध्ययन करनेके

समय उसके मनमें अनेक प्रकारकी शंकायें उत्पन्न हुईं जिनके समाधानके लिये उसने वहांके उपस्थित भिक्षुओंसे बहुत कुछ वादविवाद किया पर उसको संतोष न हुआ। चांगानमें उस समय कुछ अच्छे श्रमण रहते थे। वहांकी व्यवस्था बदल गई थी। पठन-पाठनकी सुव्यवस्था आरंभ हो गई थी। निदान सुयेनच्वांगने अपने भाईसे कहा कि चलिये चांगान चलें, अब सुनते हैं कि चांगानमें कुछ पठनपाठनकी व्यवस्था हुई है और वहां अनेक विद्वान भिक्षु भी अब रहते हैं। वहां आनन्दसे विद्याध्ययन करेंगे और अनेक शंकाओंको जिन्हें यहांके भिक्षु समाधान नहीं कर सकते उनसे समाधान करायेंगे। पर उसके भाईने वहां जानेसे इनकार किया और उसे भी वहां जाने न दिया। अन्तको उसने चुपकेसे भागनेकी सोची और एक दिन अवकाश पाकर जब सब अपने अपने कामोंमें लगे थे वह टहलनेके बहाने 'सिंगतू' से निकला और अनेक व्यापारियोंके पीछे जो हांगचाउ जा रहे थे हो लिया। उनके साथ साथ कई घाटियों-को पार करता कई दिनोंमें बड़ी कठिनाईसे वह 'हांगचाउ' पहुंचा। वहां जाकर तियनहांग नामक एक संघाराममें उतरा। वहांके श्रमण और श्रावक सब उसकी प्रशंसा बहुत दिनोंसे सुन रहे थे और उसके दर्शनोंके बड़े उत्सुक थे। जब उन लोगों-को उसके आगमनका समाचार मिला तो सब लोग उठ आये और आकर उसे घेर लिये और उससे वहां ठहरकर धर्मकथा सुनानेका अनुरोध करने लगे।

सुयेनच्वांग उनकी प्रार्थनाको विफल न कर सका। वहां रहकर उसने अभिधर्मकी व्याख्या सुनानी आरंभ की और उनके अनुरोधसे एक वर्षतक वहां रह गया। वहां उसकी व्याख्याकी ख्याति इतनी हुई कि आसपासके सब देशोंमें उसके मनोहर रीतिसे व्याख्या करनेका समाचार गूंज उठा। उड़ते उड़ते यह समाचार हानचांगके राजाके कानोंतक पहुंचा। यह बड़ा धर्मभीरु और श्रद्धालु पुरुष था। सुयेनच्वांगके दर्शनोंका यह इतना उत्सुक हुआ कि अपने सहचरोंको लिये वह स्वयं 'हांगचाउ' उसके दर्शनोंके लिये पहुंचा और अपने साथियों सहित आकर बड़ी श्रद्धा और भक्तिसे उसके धर्मोपदेशोंको श्रवण किया। वह उसके मनोहर व्याख्यान सुनकर इतना मुग्ध हो गया कि सुयेनच्वांगसे कहने लगा कि यदि आप आज्ञा दें तो शास्त्रार्थ करानेका प्रबन्ध किया जाय। सुयेनच्वांगने राजाके बहुत अनुरोध करनेपर शास्त्रार्थ करना स्वीकार कर लिया और राजाने शास्त्रार्थके लिये सभा करनेके लिये बड़े बड़े विद्वान भिक्षुओंको आमंत्रित किया। नियत दिनपर सभामण्डपमें सैकड़ों विद्वान वयोवृद्ध भिक्षु आकर एकत्रित हुए और राजा स्वयं शास्त्रार्थ करानेके लिये सभामें अपने मन्त्रियों और राज-कर्मचारियों सहित आकर उपस्थित हुआ। राजाके आ जानेपर उसकी आज्ञा पाकर सब भिक्षु एक एक करके सुयेनच्वांगसे प्रश्न करने लगे और सुयेनच्वांग एक एकके उत्तर और प्रत्युत्तर देने लगा। इस प्रकार सुयेनच्वांगने सारे भिक्षुओंके प्रश्नोंके उत्तर युक्ति-

पूर्वक दिये और किसीको उसकी युक्तियोंको काटनेका साहस न पड़ा। सभामें सुयेनच्वांगकी विजय हुई और सभी भिक्षुओं-ने अपना पराजय स्वीकार किया। सभा विसर्जित हुई और और राजा इतना प्रसन्न हुआ कि उसने बहुत कुछ धन, रत्न सुयेनच्वांगके आगे लाकर रखा पर सुयेनच्वांगने उसके लेनेसे इनकार किया। सच है सच्चे त्यागीको संसारके बड़ेसे बड़े ऐश्वर्य भी बन्धनमें नहीं ला सकते।

सुयेनच्वांगने देखा कि अब यहां अधिक ठहरनेसे बंधनमें पड़नेकी आशंका है। वह सभाके समाप्त होते ही हांगचाउसे चल दिया और वहांसे उत्तर दिशामें जाकर विद्वान भिक्षुओंसे अपनी शंकाओंको समाधान करानेका निश्चय किया।

सुयेनच्वांग हाऊचांगसे चलकर विद्वानोंकी खोज करता सियांगचाउमें गया। वहां उसे हिव नामक एक परम विद्वान भिक्षु मिला। उसके पास रहकर उसने अपनी शंकाओंका समा-धान कराना चाहा और जब वहां भी उसको शांति न मिली तो वहांसे 'चिउचाउ' नगरमें पहुंचा। वहां हिन नामक एक विद्वान भिक्षु रहता था। उसके पास रहकर उसने सत्यसिद्ध व्याकरण अध्ययन किया और अध्ययन समाप्त कर चांगानकी ओर चला।

चांगानमें पहुंचकर वह महाबोधि नामक विहारमें ठहरा। वहां उस समय पोः नामक एक विद्वान भिक्षु रहता था। उससे उसने कोशशास्त्रका अध्ययन किया और केवल एक पाठमें समस्त ग्रंथको कंठाग्र कर गया। वहींपर उसको शांग और

पिङ्ग नामक दो और बड़े स्थविर मिले। यह दोनों बड़े प्रसिद्ध विद्वान और शास्त्रज्ञ भिक्षु थे। सारे देशमें उनका मान था और उनकी विद्वत्ताकी ख्याति थी। उसने उन दोनों विद्वानोंके पास थोड़े दिनोंतक रहकर अनेक ग्रंथोंका अध्ययन किया और अपनी शंकाओंका समाधान कराता रहा। उसकी अलौकिक प्रतिभा देखकर दोनों विद्वान दंग रह गये और उन विद्वानोंने कहा—सुयेनच्वांग, समय आयगा जब तुम्हारे उद्योगसे चीन देशमें धर्मके सूर्य्यका उदय होगा। पर खेद इतना ही है कि हम उस समयमें न रह जायंगे।

इस प्रकार श्रमण सुयेनच्वांग सारे देशमें बड़े बड़े विद्वान और वयोवृद्ध भिक्षुओंको ढूंढ़ता फिरा और जहां जहां जो जो विद्वान भिक्षु मिले और वे जिस जिस विषयके ज्ञाता थे उनसे उस उस विषयका अध्ययन किया और अपनी शंकाओंका समाधान कराता फिरा। पर फल उसके विपरीत हुआ ज्यों ज्यों वह अधिक अधिक शास्त्रोंका अध्ययन करता गया उसकी शंकायें भी बढ़ती गईं।

भारतयात्राका संकल्प

अंतको जब सुयेनच्वांगकी शंकायें बढ़ती गईं और समाधान नहीं हो सका तब बड़े धर्म-संकटमें पड़ा। उसने देखा कि जितने निकाय हैं सबके मत अलग अलग हैं। सब अपनेको अच्छा और दूसरेको बुरा बताते हैं। कोई किसी कर्मका विधान

करता है तो दूसरा निषेध करता है। बड़े झगड़ेकी बात है। तथागतका मुख्य उपदेश क्या था इसका ठीक पता नहीं चलता। सब उसके वाक्योंका अर्थ तोड़ मरोड़कर अपने अनुकूल करते हैं। इसका निपटारा तबतक होना उसे दुःसाध्य जान पड़ा जबतक कि तथागतके उपदेश ज्योंके त्यों उन्हींकी भाषामें न देखे जायँ और उनके वास्तविक अर्थका निश्चय न किया जाय। बिना मूल वचनको देखे यह निर्णय करना नितांत कठिन है कि किस निकायका कौन अंश तथागतके वचनोंके मुख्य आशयके अनुकूल है और कौन विरुद्ध है। पर इसमें संदेह नहीं कि तथागतके वाक्योंका एक ही अर्थ होगा। अतएव उसे यह जान पड़ा कि प्रायः सबके सब निकाय किसी न किसी अंशमें भगवानके वचनके विरुद्ध हैं। अब इसका निश्चय कैसे हो कि भगवानके वचन क्या थे। कारण यह था कि चीन देशमें जो कुछ था वह अनुवाद रूपमें और प्रायः निकायोंके अंशोंके अनुवाद थे। मूल संस्कृत या पाली आदि भाषाके सूत्रग्रंथ तो वहां थे नहीं और न कोई उनको जानता था। निदान उसने अपने मनमें यह ठान लिया कि कुछ भी क्यों न हो मैं भारतवर्ष जाऊंगा और वहां जाकर मूलग्रंथोंका अध्ययन करूंगा और उनके वास्तविक अर्थोंका बोध प्राप्तकर अपने भ्रमको मिटाकर अपने देशके भिक्षुओंके मोहका नाश करूंगा।

यह विचार उसके मनमें दृढ़ होता गया और उसने अपने दो तीन साथी श्रमणोंपर अपने इस विचारको प्रकट किया। वे

लोग भी उसके विचारसे सहमत हो गये और सबोंने मिलकर यह निश्चय किया कि भारतवर्षमें चलकर बुद्धवचनों और उनकी व्याख्याओंके मूलग्रंथोंका संग्रह किया जाय। पर उस समय लोगोंका सहसा चीन देशको छोड़कर बाहर जाना कठिन काम था। चीन देशकी राजनैतिक परिस्थिति इतने दिनोंतकके विप्लवके बाद ऐसी हो गई थी कि सम्राट् तांगने कठिन आज्ञा दे रखी थी कि कोई मनुष्य बिना मेरी आज्ञाके सीमाके बाहर न जाने पाये। सीमाप्रान्तोंपर कठिन पहरा था और बाहर जानेवालेकी परीक्षा होती थी। कोई भी मनुष्य चीन देशका अधिवासी होकर बिना राजकीय मुद्रा लिये बाहर नहीं निकलने पाता था।

भिक्षु हुयेनच्वांगने सम्राट्के पास भारत जानेके लिये आज्ञा प्राप्त करनेके लिये प्रार्थनापत्र भेजा। पर उसका कोई उत्तर न मिला। उसके साथी तो हताश होकर बैठ रहे पर हुयेनच्वांगने दूसरा निवेदनपत्र भेजा। पर उसके भी कुछ उत्तर न मिले। तब उसने अपने साथियोंसे कहा कि यदि आप लोग मेरा साथ दें तो मैं स्वयं चलकर लोयांगमें सम्राट्के पास आवेदनपत्र दूं और उसकी आज्ञा प्राप्त करूं। पर उसके साथियोंने उसके साथ वहां जानेसे इनकार किया। पर इससे उसके साहस कम न हुए। इसी बीचमें सम्राट्की एक और आज्ञा आई और शासकोंने घोषित कराई कि किसी प्रजाको चाहे वह भिक्षु हो या गृही देशके बाहर जानेकी आज्ञा नहीं दी जा

सकती। इस आज्ञाने सुयेनच्वांगको सम्राट्के पास जानेके संकल्पको परित्याग करनेके लिये विवश कर दिया। पर वह अपने भारतयात्रा करनेके सङ्कल्पको परित्याग नहीं कर सका। उसने अपने साथियोंकी उदासीनता और राजाकी ऐसी कठिन आज्ञा होते हुए भी भारतकी यात्रा करनेके लिये उपायोंके सोचने-में लगा रहा। वह लोगोंसे वहांके मार्गके सम्बन्धमें पूछताछ करता रहा और सब लोगोंने कहा कि मार्ग बड़ा भीषण है, नाना भांतिके उपद्रवोंसे भरा है। अनेक मरुभूमियों और दारुण पर्वतोंको पार करना पड़ेगा जिसका ध्यान करनेसे चित्त व्याकुल होता है। पर इन सबको सुनकर भी उसका साहस घटा नहीं अपितु, बढ़ता ही गया। वह आग के लिये घी हो गया। वह विहारमें गया और वहां भगवानकी मूर्तिके सामने पूजा करके भारत-यात्राके लिये सङ्कल्प किया और प्रार्थना की कि यदि भगवान मेरी यात्रा सुफल करना चाहे तो मुझे स्वप्न दे कि मैं अपने मनो-रथको सफल कर सकूंगा या नहीं। उसने उसी दिन रातको स्वप्न देखा कि मैं एक महासमुद्रके तटपर खड़ा हूं और समुद्रके बीचमें सुमेरु पर्वत है जिसके शिखर देदीप्यमान दिखाई पड़ रहे हैं। उसने सुमेरु पर्वतपर जाकर चढ़नेकी कामना की पर वहां न नाव था न बेड़ा। सुमेरुके पास उसका पहुंचना ही कठिन था चढ़ना तो दूर रहा। अचानक समुद्रमें देखा तो पत्थरके दो कमलाकार पादपीठ सामने दिखाई दिये। सुयेनच्वांग उनपर पैर रखके खड़ा हो गया और ज्यों ज्यों वह पैर बढ़ाता था त्यों

त्यों आगे पादपीठ निकलते आते थे। इस प्रकार चलकर वह सुमेरु पर्वतके किनारे पहुंचा। पर उसके शिखरपर पहुंचना कठिन था। वह इतना तुङ्ग था कि उसपर चढ़ना असाध्य था। पर इसी बीच बवंडर उठा और उसको उठाकर उसने मेरु पर्वतके शिखर-पर ले जाकर रख दिया। वहांपर पहुंचकर वह चारों ओर देखने लगा पर सिवा आकाश और जलके उसे कहीं कुछ देख न पड़ा। जिधर आंख जाती थी पानी ही पानी और आकाश ही आकाश दिखाई देता था। वहांपर पहुंचकर उसका मन इतना प्रसन्न हुआ जितना कभी न हुआ था। यह बात सितम्बर सन् ६२९ की है।

चांगानमें उस समय चिनचाउका एक भिक्षु रहकर विद्या-ध्ययन करता था। उसका नाम 'हियावत्ता' था। वह निर्वाण विहारमें रहता था और अपना अध्ययन समाप्त कर अपने नगर-को जानेवाला था। सुयेनच्वांग उससे मिला और उसके साथ वहांसे चल खड़ा हुआ।

यात्रारंभ

सुयेनच्वांग चिनचाउके भिक्षु 'हियावत्ता' के साथ चांगानसे चला और चिनचाउ आया। वहां वह एक रात पड़ा रहा। दूसरे दिन उसे लानचाउका एक साथी मिला जो चिनचाउमें किसी कामसे आया था और अपने घर जा रहा था। वह उसके साथ चिनचाउसे लानचाउ आया और वहां भी एक

रात बिताई। यहां उसे कुछ सरकारी सवार मिले जो किसी राजकर्मचारीको लानचाउ पहुंचाकर लियांगचाउ लौटे जा रहे थे। सुयेनच्वांग चुपकेसे उनके पीछे अपने घोड़ेको डाल दिया और लियांगचाउ पहुंच गया।

लियांगचाउ एक ऐसा स्थान था जहां तिब्बत आदिके लोग बिना रोकटोकके आते जाते रहते थे और पश्चिमवालों-का एक प्रधान अड्डा सा था। यहां आकर सुयेनच्वांग साथीकी खोजमें था कि उसी बीचमें यहांके भिक्षुओं और गांवोंको उसके आनेका समाचार मिला। फिर उसको आकर सब लोगोंने उसे घेरा और उससे सूत्रादिकी व्याख्या आरम्भ करनेके लिये अनुरोध करने लगे। सुयेनच्वांगने उनको निराश करना उचित न समझा और उनकी बातोंको मानकर कथा आरम्भ की। कथामें उसने बड़ी योग्यतासे सूत्रोंके गुप्त रहस्यों और अर्थोंकी व्याख्या करना आरम्भ किया। उसके सुननेके लिये दूर दूरसे लोग आते थे और तृप्त होकर अपने घर लौट जाते थे। थोड़े ही दिनोंमें उसकी ख्याति इतनी फैल गई कि पश्चिमके दूर दूर देशोंके यात्री और वणिक जो लियांगचाउमें आये थे उसकी कथाको सुनकर उसकी ख्याति, उसकी विद्वत्ता और सदाचारशीलताका समाचार लेकर अपने अपने देशमें गये उसके गुणोंकी चर्चा राजदरबारोंतकमें पहुंचा दी और सब लो उसके दर्शनोंके लिये उत्सुक हो गये और दूर दूरसे लोग उस दर्शनके लिये उठ आये।

इसी बीचमें चीनके सम्राट्का एक और आज्ञापत्र निकला और उसमें पूर्व आज्ञाके पालनके लिये राजकर्मचारियोंको लिखा गया कि बाहर जानेवालोंपर कठिन दृष्टि रखी जाय और किसी दशामें किसीको बाहर न जाने दिया जाय। जांचके लिये लियांग-चाउमें एक नया शासक नियुक्त करके भेजा गया और उसे इस बातकी ताकीद की गई कि वह इसपर कठिन नियन्त्रण रखे कि कोई सीमाके बाहर न जाने पाये। सीमाप्रान्तपर इसकी जांचके लिये कठिन आंख रखी जाय। अनेक गुप्तचर नियुक्त करके भेजे गये कि वे सीमाप्रान्तके नाकोंपर घूम घूमकर इसका टोह लें कि कौन मनुष्य चीनको सीमाके बाहर जानेका विचार रखता है और बराबर अनुसंधानमें लगे रहें और पता मिलनेपर शासकोंको गुप्त रीतिसे उसकी सूचना देते रहें कि कौन मनुष्य कहांका रहनेवाला है, वह क्यों और कहां जाना चाहता है और कहांतक पहुंच चुका है। चारों ओर घोर नियन्त्रण की गई और किसीका सीमाके बाहर पैर रखना कठिन हो गया।

इधर सुयेनच्वांगके भारतयात्राके लिये चल पड़नेका समाचार पहलेसे ही लियांगचाउ और पश्चिमके देशोंमें फैल गया था। उसकी विद्वत्ताका समाचार पाकर सब लोग उसकी राह देख रहे थे। यह ऐसी [illegible] थी जिसका छिपाना तिलमें कठिन था। [illegible] लियांगचाउके नवीन शासक [illegible] प्रान्त-शिक्षाका चेला [illegible] कथा करने आता

रात बिताई। वहां उसे कुछ सरकारी सवार मिले जो किसी राजकर्मचारीको लानचाउ पहुंचाकर लियांगचाउ लौटे जा रहे थे। सुयेनच्वांग चुपकेसे उनके पीछे अपने घोड़ेको डाल दिया और लियांगचाउ पहुंच गया।

लियांगचाउ एक ऐसा स्थान था जहां तिब्बत आदिके लोग बिना रोकटोकके आते जाते रहते थे और पश्चिमवालों-का एक प्रधान अड्डा सा था। यहां आकर सुयेनच्वांग साथीकी खोजमें था कि इसी बीचमें वहांके भिक्षुओं और गांवोंको उसके आनेका समाचार मिला। फिर उसको आकर सब लोगोंने उसे घेरा और उससे सूत्रादिकी व्याख्या आरम्भ करनेके लिये अनुरोध करने लगे। सुयेनच्वांगने उनको निराश करना उचित न समझा और उनकी बातोंको मानकर कथा आरम्भ की। कथामें उसने बड़ी योग्यतासे सूत्रोंके गुप्त रहस्यों और अर्थोंकी व्याख्या करना आरम्भ किया। उसके सुननेके लिये दूर दूरसे लोग आते थे और तृप्त होकर अपने घर लौट जाते थे। थोड़े ही दिनोंमें उसकी ख्याति इतनी फैल गई कि पश्चिमके दूर दूर देशोंके यात्री और वणिक जो लियांगचाउमें आये थे उसकी कथाको सुनकर उसकी ख्याति, उसकी विद्वत्ता और सदाचारशीलताका समाचार लेकर अपने अपने देशमें गये। उसके गुणोंको चर्चा राजदर्बारोंतकमें पहुंचा दी और सब लोग उसके दर्शनोंके लिये उत्सुक हो गये और दूर दूरसे लोग उसके दर्शनके लिये उठ आये।

इसी बीचमें चीनके सम्राट्का एक और आज्ञापत्र निकला और उसी पूर्व आज्ञाके पालनके लिये राजकर्मचारियोंको लिखा गया कि बाहर जानेवालोंपर कठिन दृष्टि रखी जाय और किसी दशामें किसीको बाहर न जाने दिया जाय। जांचके लिये लियांगचाउमें एक नया शासक नियुक्त करके भेजा गया और उसे इस बातकी ताकीद की गई कि वह इसपर कठिन नियन्त्रण रखे कि कोई सीमाके बाहर न जाने पावे। सीमाप्रान्तपर इसकी जांचके लिये कठिन आंख रखी जाय। अनेक गुप्तचर नियुक्त करके भेजे गये कि वे सीमाप्रान्तके नाकोंपर घूम घूमकर इसका टोह लें कि कौन मनुष्य चीनकी सीमाके बाहर जानेका विचार रखता है और बराबर अनुसंधानमें लगे रहें और पता मिलनेपर शासकोंको गुप्त रीतिसे उसकी सूचना देते रहें कि कौन मनुष्य कहांका रहनेवाला है, वह क्यों और कहां जाना चाहता है और कहांतक पहुंच चुका है। चारों ओर घोर नियन्त्रण की गई और किसीका सीमाके बाहर पैर रखना कठिन हो गया।

इधर ह्युयेनच्वांगके भारतयात्राके लिये चल पड़नेका समाचार पहलेसे ही लियांगचाउ और पश्चिमके देशोंमें फैल गया था। उसकी विद्वत्ताका समाचार पाकर सब लोग उसकी राह देख रहे थे। यह ऐसी [illegible] थी जिसका छिपाना नितान्त कठिन था। [illegible] लियांगचाउके नवीन शासक [illegible] पता-ठिकाना पालो

है और साथी की खोजमें है और शीघ्र ही भारतको जानेवाला है। शासकने यह समाचार पाते ही सुयेनच्वांगको अपने पास बुलवाया और जब वह उसके पास पहुंचा तो कहा कि सुना जाता है कि आप पश्चिमको जानेवाले हैं। सुयेनच्वांगने उत्तर दिया कि हां, विचार तो है पर देखें कब जा पाता हूं। शासकने फिर पूछा कि वहां काम क्या है? सुयेनच्वांगने कहा कि मेरा पश्चिम जानेका विचार इसलिये है कि हमारे देशमें धर्मके ग्रन्थोंमें बड़ी गड़बड़ी है। मैं भारतमें जाकर भगवानके वचनोंका अध्ययन करना और उन ग्रन्थोंको अपने देशमें लाकर यहांके ग्रन्थोंके भ्रमों और दूषणोंको संशोधन करके ठीक करना और उनके अनुवाद करके अपने देशके साहित्यके भाण्डारको भरना चाहता हूं। यही कारण है कि मैं चाङ्गानसे चलकर यहां तक आया हूं और साथी मिलनेपर आगे बढ़ूंगा। उसकी बात सुनकर शासकने उसे बहुत समझाया और कहा कि देखिये सम्राट्की यह आज्ञा है कि कोई इस समय सीमा पार जाने न पावे। ऐसी दशामें आपको अपने देशके बाहर जाना कदापि उचित नहीं है। आप अपने इस विचारको छोड़ दें और चाङ्गान लौट जायें। यदि आप न मानेंगे तो स्मरण रखिये कि आप हजार प्रयत्न करें पर आप किसी प्रकारसे निकलने नहीं पा सकते। बड़ी कड़ी जांच है, चारों ओर सीमापर कड़ा पहरा है। आप कहीं न कहीं अवश्य पकड़ जायेंगे। उस समय बड़ी दुर्दशा होगी और बनी बनाई बात बिगड़ जायगी।

सुयेनच्वांग उस समय तो चुप रह गया और वहांसे उठकर अपने वासस्थानपर चला आया। वहां आकर वह बड़ी उलझनमें पड़ा, क्या करे कहां जाये। पीछे पैर हटा नहीं सकता, आगे बढ़ता है तो रोका जाता है। कोई साथी मिलता नहीं था। मार्ग देखा नहीं किसके साथ जाये! वह सारी आपत्तियोंको झेलनेके लिये तैयार था पर अपने संकल्पको विकल्प नहीं कर सकता था। निदान उसने अपने मनके इन विचारोंको लियांगचाउके एक प्रसिद्ध स्थविर 'दुद्वोई' से जाकर कहा 'दुद्वोई' उसकी बातें सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसकी बड़ी प्रशंसा करने लगा। उसने कहा—घबराइये मत, कोई न कोई उपाय हो जायगा। 'दुद्वोई' बड़ा ही विद्वान और प्रभावशाली श्रमण था। उसके पास अनेक श्रमण और श्रमणेर विद्याध्ययनके लिये रहा करते थे। उसने अपने दो शिष्योंको आज्ञा दी कि तुम सुयेनच्वांगको ले जाकर सीमा पार पहुंचा आओ। सुयेनच्वांग अपने मनमें बड़ा प्रसन्न हुआ और अपने सामान बांधकर चुपकेसे उन दोनों श्रमणेरोंके साथ वहांसे चुपकेसे निकलकर पश्चिमकी राह ली।

लोहेका चना

सुयेनच्वांग 'दुद्वोई' के दो शिष्योंके साथ लियांगचाउसे रातके समय चुपकेसे निकल कर भागा और बड़ी सावधानीसे लोगोंकी दृष्टि बचाता आगे बढ़ा। वह रातको चलता और

६० ९

दिनको किसी झाड़में छिप रहता। इस प्रकार कई दिनोंमें अनेक कठिनाइयोंको झेलता हुआ 'काचाउ' नगरमें पहुंचा। वहां जाकर एक विहारमें ठहरा। उसके दो साथियोंमेंसे एक तो उसे पहुंचाकर तुरन्त ही 'तुनहांग' चला गया दूसरा उसके साथ ही एक दिनके लिये ठहर गया। कारण यह था कि मार्गकी कठिनाइयों और आपत्तियोंको स्मरण कर उसका कलेजा मुंहको आता था और वह आगे जानेको उद्यत नहीं था। निदान वहां उसने सुयेनच्वांगके अनुरोधसे जबतक उसे कोई और साथी न मिल जाय ठहरना स्वीकार किया था।

सच है विद्या और आग छिपाये नहीं छिपती। उसके पहुंचते नगरमें चारों ओर यह बात फैल गई कि विहारमें एक महा विद्वान भिक्षु आया है। लोग उसके दर्शनोंके लिये दौड़े। यह समाचार वहांके शासकके कानोंमें पहुंचा। शासक बड़ा धर्मभीरु पुरुष था, वह स्वयं दौड़ा हुआ विहारमें आया और नाना प्रकारके भोजन पदार्थ उपहारमें उसे समर्पण किया। सुयेनच्वांगसे धर्मोपदेश सुनकर वह बहुत प्रसन्न हुआ। बात बातमें सुयेनच्वांगने उससे पूछा कि भला पश्चिमका मार्ग कैसा है। शासकने कहा कि इस स्थानसे उत्तर दिशामें चलकर ५० मीलपर 'हूलू' नामकी एक नदी पड़ती है। नदी पहाड़ी है। चढ़ावकी ओर तो उसका पाट उतना नहीं है पर ज्यों ज्यों आगे बढ़ती गई है उतारकी ओर उसके पाट और गहराई दोनों बढ़ती गई है। प्रवाह और वेगकी तो यह दशा है कि कुछ

कहना नहीं। थोड़ी देरमें तो उसकी यह दशा हो जाती है कि बालक भी उसे हलकर पार कर सकता है। पर घड़ी ही दो घड़ीके भीतर जब ऊपरसे पानीका प्रवाह आ जाता है तो तिनका टूटने लगता है और बड़ी नावोंको भी उसकी प्रखर धारको पार करना दुस्तर हो जाता है। नदीके ऊपरी भागमें 'यू:मेन' नामकी चौकी पड़ती है। उसीके पास नदीका घाट है। उसी घाटसे उतरकर लोग उस पार जाते हैं। यू:मेनकी चौकी को पश्चिमोत्तर दिशामें पांच गढ़ हैं। यह गढ़ सौ सौ मीलपर पड़ते हैं। वहां रक्षकगण नियुक्त हैं। उनके बीचमें न तो कहीं पानी मिलता है और न कहीं हरियाली देखनेमें आती है। गढ़ोंके आगे 'वोकियेन'की मरुभूमि पड़ती है और मरुभूमि पार करनेपर तब कहीं 'ईगो' का० जनपद मिलता है। सुयेनच्वांग यह बातें सुनकर अपने मनमें बड़ा चिन्तित हुआ कि मार्गकी यह दशा और न कोई संगी न साथी! अस्तु, शासक को प्रणाम कर अपने स्थानपर आया। सुयेनच्वांग अपनी उधेड़-बुनमें लगा।

सुयेनच्वांगका दूसरा साथी भी दो एक दिन ठहरकर घबड़ा गया और जब इतने दिन खोजनेपर भी कोई साथी 'ईगो' जानेवाला न मिला तो उसने सुयेनच्वांगसे 'लियांगचाउ' वापस जानेकी आज्ञा मांगी। सुयेनच्वांग भी उसे अधिक रोक न सका क्योंकि वह समझ गया था कि वह आगे उसके साथ जानेसे सकपकाता था और न जा सकेगा। निदान उसने उसे विदा कर दिया और आप साथी ढूंढ़नेके उद्योगमें लगा।

यहां उसे इस उद्योगमें अकेले विवश होकर एक महीनेसे अधिक ठहर जाना पड़ा।

इसी बीच जब 'लियांगचाउ' में उसकी खोज हुई और वह न मिला तो वहांके शासकने चारों ओर शासकोंके नाम पत्र भेजा कि 'सुयेनच्वांग नामक एक भिक्षु चांगानसे पश्चिमको भागकर जा रहा है। उसकी कठिन जांच की जाय और जहां मिले उसे पकड़कर रोक लिया जावे और कभी तिब्बतकी ओर या आगे न जाने दिया जाय। यह पत्र 'क्वाचाउ' के शासकके पास भी आया। वह पत्र देखते ही ताड़ गया कि हो न हो यह वही भिक्षु है जो यहां आकर विहारमें ठहरा है। वह पत्र हाथमें लिये स्वयं सुयेनच्वांगके पास पहुंचा और उसके हाथमें दे दिया। सुयेनच्वांग पत्र पढ़कर बड़े धर्मसंकटमें पड़ा कि क्या उत्तर दे। यदि इनकार करता है तो मिथ्या बोलना पड़ता है यदि सत्य कहता है तो वह रोका जाता है। बड़ी उलझनमें फंसा था। शासकने उसकी यह दशा देख विनीत भावसे कहा कि भगवन्, आप घबरायें नहीं। मैं आपके निकलनेका कोई न कोई ढंग निकाल दूंगा। बतलाइये तो सुयेनच्वांग आपहीका नाम है। फिर तो सुयेनच्वांगने सारा कच्चा चिट्ठा उससे कह सुनाया। शासक सुनकर विस्मित हो गया और उसके साहस और दृढ़ प्रतिज्ञताकी प्रशंसा करके कहा—भगवन्, आपके लिये यह आज्ञापत्र कुछ नहीं है। आपको मैं रोक नहीं सकता। लीजिये मैं इसे फाड़े डालता हूं पर आप अब जहांतक

शीघ्र हो सके यहांसे चल दीजिये नहीं तो संभावना है कि कोई और आपत्ति उठ खड़ी हो और बात मेरे अधिकारसे बाहर हो जाये।

सुयेनच्वांग बड़ी उलझनमें पड़ा था। साथी कोई मिलता न था, महीनेसे ऊपर ठहरे बीत चुका था, जांचकी यह दशा थी, मार्गकी यह कठिनाई। बड़े प्रयत्नसे उसने किसी न किसी प्रकार एक घोड़ा तो खरीदा पर अब साथी कहांसे लाता कोई ढूंढनेसे नहीं मिलता था। रुपये पैसे देनेपर भी कोई साथ जानेका नाम नहीं लेता था। निदान उसने मंदिरमें बैठकर भगवान मैत्रेयका अनुष्ठान करना आरंभ किया। हुइलीका कथन है कि जिस दिन उसने अनुष्ठान आरंभ किया उसी रातको उस विहारके एक भिक्षुको जिसका नाम धर्म था स्वप्न हुआ। उसने देखा कि सुयेनच्वांग कमलपुष्पपर विराजमान पश्चिम दिशाको जा रहा है। वह चौंककर जागा और प्रातःकाल होते ही सुयेनच्वांगके पास पहुंचा और उसे अपना स्वप्न सुनाकर उससे स्वप्नका फल बतलानेकी प्रार्थना की। सुयेनच्वांग स्वप्न सुनकर मन ही मन प्रसन्न हुआ और समझ गया कि लक्षण अच्छा है, काम सिद्ध होनेमें विलम्ब न लाना चाहिये। पर यह कहकर बात टाल दी कि भाई धर्म, स्वप्नका प्रमाण क्या। स्वप्नकी बातें झूठी होती हैं। फिर उनके फलाफलसे क्या लाभ?

दूसरे दिन जब वह फिर यथा-नियम मन्दिरमें बैठकर जप करने लगा तो वह बैठा जप ही कर रहा था कि इसी बीचमें एक

विदेशी पुरुष भगवानका दर्शन और पूजा करने आया। भगवानकी पूजा जब वह कर चुका तो उसने सुयेनच्वांगकी तीन परिक्रमायें कीं और विनीत भावसे हाथ जोड़कर सामने खड़ा हो गया। सुयेनच्वांगने उसकी यह दशा देख पूछा कि तुम कौन हो और क्या चाहते हो। उस विदेशीने कहा—भगवन्, मेरा नाम 'पाधतो' और मेरा गोत्र 'शो' है। मेरी कामना है कि आप मुझे अपना सेवक या उपासक बना लीजिये और कृपाकर पञ्चशील व्रत ग्रहण करनेकी दीक्षा प्रदान कीजिये। सुयेनच्वांग उसकी यह भक्ति देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ और उसको पञ्चशील व्रतकी दीक्षा दी। विदेशी प्रणामकर मन्दिरसे चला गया और थोड़ी देरमें कुछ फल और पुष्प लिये आया और सुयेनच्वांगके आगे रख दिया। सुयेनच्वांगको उसका यह आचार देख आशा हुई कि इससे कुछ मेरे काममें सहायता मिलेगी। उसने उससे कहा कि भाई मैं एक बड़े धर्म-संकटमें पड़ा हूं। यदि तुम इसमें मेरी सहायता करोगे तो तुम्हें भी इसमें धर्म होगा। मेरा विचार है कि मैं भारत देशकी यात्रा करूं। वहां जाकर भगवानके उपदेशोंका अध्ययन और संग्रह करूं पर मुझे यहां ठहरे महीनों बीत गये अभीतक मुझे कोई ऐसा साथी और सहायक नहीं मिल रहा है जो मुझे अधिक नहीं तो 'ईगो' तक पहुंचा दे। विदेशीने सुयेनच्वांगकी बात सुनकर कहा कि आप इसके लिये चिन्ता न करें, मैं आपको पाँचों गढ़ी पार पहुंचा दूंगा। सुयेनच्वांग उसकी यह बातें सुन

अपने मनमें बड़ा प्रसन्न हुआ और उससे चलनेका दिन और समय निश्चयकर कहा कि तो भाई मेरे पास रुपये तो नहीं हैं कुछ धन और माल है इसे ले जाकर बेचकर अपने लिये एक चलाक टट्टू मोल ले लो। मैं तो अपने लिये घोड़ा ले चुका हूं। बस, तुम सब सामान ठीककर नियत समयपर नगरके बाहर भाड़की आड़में आ जाना और मैं भी उसी समय अपने घोड़े पर लाद फांदकर पहुंच जाऊंगा। स्मरण रखना।

बात पक्की हो गई। सुयेनच्वांग अपने जपको पूरा करके उठा और अपनी कोठरीमें आया और अपने कपड़े लत्ते सहेजने लगा। वह बड़ी उत्कंठासे उस नियत समयकी प्रतीक्षा करने लगा और नियत समय आनेपर उसने अपना सारा सामान ठीककर घोड़ेपर लाद आप उसपर सवार सायंकालके समय अंधेरा होते नगरसे निकल उसके पासकी एक भाड़के नीचे जाकर खड़ा हुआ। पर वहां कोई न था, चारों ओर सुनसान था। किसीके पांवकी आहटतक नहीं मिलती थी। वह बड़े उधेड़-बुनमें पड़ा था कि क्या बात है, कहीं विदेशीने बात तो समझनेमें भूल नहीं की अथवा उसे याद ही न रही। कहीं धोखा तो नहीं हो गया? नाना प्रकारकी भावनायें चित्तमें आती थीं। थोड़ी देरमें घोड़ेके टापके शब्द सुनाई पड़ने लगे और बातकी बातमें दो मनुष्य घोड़ेपर सवार उसी ओर आते देख पड़े। दोनों आकर उसी स्थानपर उतर पड़े जहां सुयेनच्वांग खड़ा था और उसे प्रणामकर खड़े हो गये। सुयेनच्वांगने देखा तो एक तो

वही पुरुष था जो उसे मंदिरमें मिला था और जिसने उसे पांचों गढ़ो पार पहुंचानेका वादा किया था। पर दूसरा एक अधेड़ अपरिचित पुरुष था जिसकी दाढ़ीके बाल खिचड़ी हो चले थे। वह एक दुबले पतले लाल रङ्गके घोड़ेपर सवार होकर आया था जिसके ऊपर रोगन की हुई काठी कसी थी। सुयेनच्यांग उस अपरिचित पुरुषको देखकर घबड़ाया और सकपका सा गया। उसकी यह दशा देखकर उस परिचित विदेशी पुरुषने कहा कि आप घबरायें नहीं, यह कोई ऐसा वैसा पुरुष नहीं है। यह कई बार ईगो हो आये हैं और वहांका मार्ग इनका जाना सुना है। मैं इन्हें आपके पास इसलिये लाया हूं कि इनका घोड़ा बीसों बार 'ईगो' गया आया है, उस राहमें मंजा हुआ है। यदि आप इस घोड़ेपर चलेंगे तो आपको मार्गकी कठिनाई उतनी न जान पड़ेगी और इसके भटककर इधर उधर बहकनेका भी डर नहीं है। उसकी बात समाप्त नहीं होने पाई थी कि उस अधेड़ पुरुषने बात काटकर कहा—महाशय पश्चिमका जाना हंसी खेलका काम नहीं है। मार्ग बहुत दुर्गम और दुरूह है। मरुभूमिसे होकर जाना पड़ेगा। चारों ओर जहांतक दृष्टि काम करेगी बालू ही बालू देख पड़ेगा। प्रचण्ड वायु और तूफानोंका सामना होगा। गरम जलानेवाली वायु चलती है। उसके प्रचण्ड झोंकों का सहना सहज नहीं है। भूत प्रेत पिशाच नाना भांतिकी भावनायें दिखलाते हैं जिनका स्मरण करके बड़े २ साहसियोंका पित्ता पानी हो जाता है। बड़े बड़े कारवान जो एक साथ मिल

जुलकर उसे पार करते हैं वे भी भूल जाते हैं तो इक्के, दुक्केको कौन चलाता है। भला यह तो सोचिये कि आप उसे अकेले क्या खाकर पार करेंगे? अपने मनमें इसे भले तौल लीजिये तब पैर बढ़ाइये। इसमें बड़ा जान जोखम है। सुयेनच्वांगने कहा कि जो कुछ हो अब तो संकल्प कर चुका। पूर्वको मुंह करना कठिन है। चाहे प्राण जायें पर मैं भारतकी यात्रासे पांव पीछे न हटाऊंगा। मुझे मार्गमें मर जाना स्वीकार है पर पीछे पांव डालना स्वीकार नहीं है। उसकी यह बातें सुनकर उस अधेड़ पुरुषने कहा कि अच्छा जब आप समझानेसे मानते ही नहीं और हठ ही कर रहे हैं तो लीजिये यह घोड़ा। यह मेरी सवारीमें बीसों बार ईगो गया आया है। अधिक नहीं, यदि आप इसपर बैठे रहेंगे तो मार्गकी कठिनाई और कष्टको तो यह दूर नहीं कर देगा पर आप भटकेंगे नहीं। घोड़ा इस मार्गमें मँजा हुआ है। आपको सीधी राहसे ले जायगा। आपका घोड़ा छोटा और अल्हड़ है। मार्गसे परिचित नहीं। कहीं भड़क कर राहमें किसी और ओर लेकर चलता बने तो लेने देने पड़ें।

उस समय सुयेनच्वांगको चांगानकी एक बात याद आई। जब वह चांगानमें ही था और भारतवर्षकी यात्राका विचार कर रहा था, उसने वहांके एक प्रसिद्ध ज्योतिषीसे प्रश्न किया था कि आप मेरे प्रश्नपर विचार कर बतलाइये कि मेरा मनोरथ पूरा होगा या नहीं। उसने बहुत देरतक गणना करके कहा था कि

तुम्हारा मनोरथ अवश्य सिद्ध होगा। तुम एक घोड़ेपर चढ़के पश्चिमके देशकी यात्रा करोगे। उस घोड़ेका रंग लाल होगा। घोड़ा इकहरे शरीरका होगा। उसपरकी काठीपर रोगन किया होगा। काठीके चारों ओर लोहेकी पटरी जड़ी होगी। सुयेनच्वांगने जो ध्यानपूर्वक देखा तो घोड़ेमें वह सब लक्षण जो ज्योतिषीने उससे कहे थे विद्यमान थे। सुयेनच्वांगने इसे शुभसूचक समझा और चट अपने घोड़ेकी बाग उस अधेड़ पुरुषके हाथमें थमा दी और उसे धन्यवाद देकर उसके घोड़ेकी बाग अपने हाथमें ले ली। वह अधेड़ पुरुष प्रणाम कर सुयेनच्वांगके घोड़ेपर चढ़कर नगरको लौट गया।

सुयेनच्वांग अपने युवक विदेशी साथी समेत घोड़ेपर सवार हो उत्तर दिशाकी ओर चला। तीसरे मंजिलमें चलकर वह नदीके किनारे पहुंचा। वहांसे 'यूमेन' की चोटी दिखलाई पड़ने लगी। चौकीसे दस ली ऊपर चढ़ावपर नदीका पाट दस फुटसे अधिक नहीं था। वहां पहुंचकर दोनों घोड़ेपरसे उतर पड़े। नदीके किनारे अनेक झाड़ियां थीं। विदेशी उनमेंसे पुल बनानेके लिये लकड़ियां काटने लगा और बातकी बातमें लकड़ी काटकर नदीके ऊपर वह पाटकर पुल बना दिया। जब पुलके ऊपर मिट्टी पड़ गई और देख लिया कि घोड़ोंके जानेसे उनके पैर न धसेंगे तब दोनों अपने घोड़ोंको लेकर नदीके पुलपरसे उतरकर पार हो गये।

दूसरे पार पहुंचकर दोनोंने अपने अपने घोड़ोंको घासके

पेड़ोंमें बांध दिया और अपनी अपनी दरी भूमिपर बिछाकर विश्राम करने लगे, कारण यह था कि पुलके बनानेमें विदेशी लतपथ हो गया। विदेशी सुयेनच्वांगसे ५० पगपर लेटा। दोनों कुछ देरतक तो जागते थे पर अन्तको सुयेनच्वांगकी आंखें लग गई। रातको विदेशीके मनमें न जाने क्या आया और वह नंगी छुरी हाथमें लेकर सुयेनच्वांगकी ओर चला। उसके पैरकी आहट पाकर सुयेनच्वांगकी आंखें खुलीं तो उसने देखा कि वह छुरी ताने उसकी ओर आ रहा है। सुयेनच्वांग निर्द्वन्द्व अपने स्थानपर जप करता लेटा रहा। पर जब १० पग रह गया तो उसके मनमें न जाने कि क्या परिवर्त्तन हुआ कि वह उलटे पांव फिरा और अपने स्थानपर जाकर लेट रहा।

प्रातःकाल होते ही सुयेनच्वांगने उसे पुकारा और कहा कि थोड़ा जल भर ला। वह जल भर लाया और सुयेनच्वांगने अपने हाथ मुंह धोकर कुछ जलपान कर अपने असबाब सँभाल कर घोड़ेपर लादा और आगे बढ़नेको तैयार हुआ। विदेशीने उससे कहा कि महाराज मार्ग भयावह है और दूरकी यात्रा करनी है। चारों ओर चौकी पहरा है। न कहीं पानी मिलेगा न पेड़ पलुय देखनेमें आयेंगे। पानी केवल पांचों अड्डोंके पास ही मिलेगा। ऐसा चलिये कि वहां रातके समय पहुंचा जाय और चुपकेसे आंख बचाकर पानी भरकर अपनी राह ली जाय। बड़ी साव-धानीसे रहियेगा। किसीको आंख पड़ी कि हम दोनोंके प्राण गये। अच्छा तो यही है कि लौट चलिये और अपने प्राण संकट-

में न डालिये। सुयेनच्वांगने कहा कि मेरा तो पैर पीछे हटाना बहुत कठिन काम है। इसपर विदेशीने अपनी छुरी दिखलाई और धनुष परज्या चढ़ाकर बाण तानकर खड़ा हो गया और कहा, जाइये तो देखें आप कैसे आगे जाते हैं। सुयेनच्वांग भला कब अपने संकल्पसे हटनेवाला था? उसपर इस डरानेका कोई प्रभाव न पड़ा। जब विदेशीने देख लिया कि वह किसी प्रकारसे न लौटेगा तब उसने कहा, महाराज आप जायें, मैं बाल बच्चेवाला हूं। भेद खुल जानेपर मेरे बाल-बच्चोंके सिर आपत्ति आयेगी। मैं तो अब आगे पैर नहीं बढ़ा सकता हूं। मेरी क्या सत्ता है कि राजाकी आज्ञाका उल्लंघन करूं। इतनी दूरतक आपके अनुरोधसे आपका साथ दे दिया। अब मुझे क्षमा कीजिये। सुयेनच्वांग समझ गया कि वह आगे न जायगा। निदान उसने उसे आज्ञा दे दी और कहा कि जब तुम इतना डरते हो तो तुम लौट जाओ पर मैं तो कुछ भी क्यों न हो पीछे पैर न डालूंगा। उसने कहा कि महाराज मेरी प्रार्थना मान जाइये और लौट चलिये। मार्गमें बड़ी कठिन जांच होती है, चारों ओर राजाकी चौकी पहरा है आप निकल नहीं पा सकते। कहीं न कहीं पकड़ जायेंगे और बांधकर लौटाये जायेंगे। सारा परिश्रम व्यर्थ हो जायगा। उलटे आपत्तिमें पड़कर कष्ट उठाना पड़ेगा। सुयेनच्वांगने उत्तर दिया कि भाई मैं तो अपनी बात तुमसे कह चुका, कुछ भी पड़े मैं आगेसे पैर पीछे नहीं हटाऊंगा। मैं तुमसे शपथ करके कहे देता हूं कि यह लोग मुझे भले मार

डाले। मेरे शरीरको रत्ती रत्ती काटकर उड़ा दें पर सुयेनच्वांग तो बिना भारतवर्ष पहुंचे जीता चीनको लौटनेवाला नहीं है। विदेशी यह सुनकर चुप हो रहा। सुयेनच्वांगने कहा कि भाई तुमने मेरा बड़ा उपकार किया है, इसका मैं तुम्हारा ऋणी हूं। खाली न जाओ जिस घोड़ेपर तुम चढ़कर इतनी दूर मेरे साथ मुझे पहुंचाने आये हो उसे लेते जाओ। मैं तुम्हे उसे पुरस्कारमें देता हूँ।

विदेशी तो उसका साथ छोड़कर पुलको पारकर पूर्वकी ओर लौट गया। सुयेनच्वांग अकेला अपने घोड़ेपर सवार हो उस मरुभूमिमें चल पड़ा। वहां न राह थी न पेड़, जिधर आंख जाती थी चमकती बालूकी फर्श बिछी दिखायी देती थी। हरियालीका तो कहीं नामनिशान भी न था। राहका पता उस मरुस्थलसे उन यात्रियोंकी हड्डियोंसे मिलता था जो उसमें भूख-प्यासके कष्टसे मरे थे अथवा घोड़ोंकी लीदसे जो उस मार्गसे कभी गये थे। धूप इतनी कड़ी थी कि आकाशमें कोई पक्षी भी उड़ता नहीं दिखाई पड़ता था। सुयेनच्वांग बड़ी साव-धानीसे उस भयावन मरुस्थलमें मार्गका पता चलाता आगे बढ़ा जा रहा था कि अचानक उसे जान पड़ा कि कई सौ सवार घोड़े उड़ाये जा रहे हैं। घोड़ोंके टाप उसे सुनाई पड़ने लगे। उनके टापोंसे उड़ती हुई बालू देख पड़ी। जान पड़ता था कि वे बढ़े हुये उसकी ओर चले आ रहे हैं। यह लोग ठहर गये। कुछ देर ठहर फिर सबोंने अपने घोड़े दौड़ाये। यह लोग पास

पहुंच गये। उनकी टोपियोंको कलंगी झलकने लगी, उनके कंवलों-के परिधान स्पष्ट देख पड़ने लगे। उसने फिर जो ध्यानसे देखा तो कहीं कुछ भी नहीं सब लुप्त! अबकी बार उसे दूसरा दृश्य दिखाई दिया। जान पड़ता था कि सैकड़ों ऊँट और घोड़े कारवानके लदे हुए जा रहे हैं। थोड़ी देरमें यह भी लुप्त! अबकी बार उसे घोड़सवारोंकी सेना देख पड़ी। उनके भालोंका चमकना और झंडियोंका फहराना उसने देखा। पर पास आते वे भी अदृष्ट हो गये! इस प्रकार वह उस मरुभूमिमें सहस्रों प्रकारके भयावने दृश्य देखता था पर सबके सब उसके पास आते ही अदृष्ट हो जाते थे।

पहले तो उसने इनको देखकर यह समझा था कि ये सचमुच डाकू वा कारवान हैं पर जब उसने देखा कि दूरसे तो आते देख पड़ते हैं पर पास आनेपर लोप हो जाते हैं तो उसने समझ लिया कि यह भूतों और पिशाचोंकी भावनायें हैं जिनके विषयमें उसने सुन रखा था। वह निडर मार्गमें घोड़ा बढ़ाता मंत्र जपता आगे बढ़ा जा रहा था कि अचानक उसे जान पड़ा कि कोई यह कह रहा है कि डरो मत! घबराओ नहीं। इससे उसके मनमें ढाढ़स बंधी और साहस उत्पन्न हुआ। वह निधड़के आगे बढ़ा और अस्सी लीसे ऊपर चलकर उसे पहली चौकीकी गढ़ी दिखाई पड़ने लगी। गढ़ी देखकर उसको विदेशीकी बात याद आयी। वह डरा कि अभी दिन है ऐसा न हो कि कोई जाते हुए मुझे देख ले और प्राण संकटमें पड़ जायें। निदान वह मरुभूमिके

एक खत्तेमें अपने घोड़े समेत उतर कर जा छिपा और वहां सूर्य्यास्ततक पड़ा रहा। जब रात हुई तो वह उसमेंसे निकला और घोड़ेपर चढ़ गढ़ीकी ओर चला। गढ़ीके पश्चिम उसे एक जलाशय मिला। वहां वह अपने घोड़ेपरसे उतर पड़ा और जलाशयमें जाकर अपने मुँह हाथ धोकर पानी पिया। पानी पीकर उसने अपने घोड़ेपरसे 'मशक' उतारी और आगेकी यात्राके लिये भरकर उसे भरने लगा कि अचानक उसके कानमें तीरकी सनसनाहट सुनाई पड़ी और एक तीर आकर उसकी जांघ छीलती निकल गयी। थोड़ी देरमें दूसरी तीर आकर गिरी.पर वह बालबाल बचा। अब तो उसने समझा कि अब प्राण बचने कठिन हैं चौकीवालोंकी दृष्टि पड़ गयी। निदान उसने चिल्लाकर कहा कि भाई, मैं भिक्षु हूं। चांगानसे आया हूं। मुझे मारो मत। यह कह वह अपने घोड़ेपर सवार हो गढ़ीकी ओर बढ़ा और चौकीवालोंने उसे अपनी ओर आते देख तीर चलाना बन्द कर दिया और फाटक खोलकर बाहर निकल आये। सुयेनच्वांग फाटकपर पहुंचकर घोड़ेपरसे उतर पड़ा और पहरेवाले उसे ध्यानसे देखने लगे। जब उन्होंने देखा कि यह सचमुच भिक्षु है कोई चोर उचक्का नहीं है तो वे गढ़ीमें गये और अपने नायकको इस बातकी सूचना दी। नायकने उसके लिये मशाल जलवाया और सुयेनच्वांगको बुलवाकर देखा। उसने उसे देखकर कहा कि यह हमारे तंगुत प्रांतका भिक्षु नहीं जान पड़ता है। यह निःसन्देह चांगानका श्रमण है।

सुयेनच्वांगने कहा कि महाशय आपने लियांगचाउके लोगोंके मुंहसे सुयेनच्वांगका नाम सुना होगा जो भारतवर्षकी यात्राके लिये चांगानसे चला है। मैं वही सुयेनच्वांग हूं। उसके मुंहसे यह बात सुन नायक चकित हो गया। उसने कहा कि सुयेनच्वांगका नाम तो मैंने अवश्य सुना है पर मुझे तो यह समाचार मिला है कि वह मार्गसे आकर लौट गया। यह तुम कौन सुयेनच्वांग हो जो यहाँ पहुंचे हो? इसपर सुयेनच्वांग नायकको अपने घोड़ेके पास ले गया और वहां उसने अपने अनेक पदार्थ दिखाये जिनपर उसके नाम अंकित थे। उनको देखकर नायकको यह प्रतीत हो गया कि वह मिथ्या नहीं कह रहा है। नायक बड़ा सज्जन पुरुष था। उसने सुयेनच्वांगसे कहा कि महाराज मार्ग बड़ा कठिन है। उसमें आपको नाना भांतिकी विपत्तियोंका सामना करना पड़ेगा। आपका वहांतक पहुंचना बड़ी टेढ़ी खीर है। आप महात्मा हैं, मेरी आपसे इतनी ही प्रार्थना है कि आप वहां आनेके विचारको छोड़ दीजिये। मैं भी तुनह्वांग प्रदेशका रहनेवाला हूं। वहाँ 'चांगकिओ' बड़ा विद्वान और धर्मनिष्ठ पुरुष है। वह विद्वानोंका बड़ा आदर और प्रतिष्ठा करता है। वह आपसे मिलकर बहुत प्रसन्न होगा। यदि आप वहाँ चलना स्वीकार करें तो आप मेरे साथ चलिये, मैं आपको स्वयं ले जाकर उनसे परिचय करा दूंगा।

सुयेनच्वांगने उसको धन्यवाद देकर कहा, महाशय मेरा जन्मस्थान लोयांग है। मैंने बालपन हीसे धर्मग्रंथोंका अध्ययन स्वाध्याय

करनेमें निरत रहा हूँ और यथासाध्य विद्वानोंकी सेवा करके विद्योपार्जन किया है। अधिक तो नहीं पर लोयांग और चांगानके सब भिक्षु और वू और शूः प्रदेशोंके दो एकको छोड़ प्रायः सभी भिक्षु मेरे पास अपनी शंकाके समाधानके निमित्त आचुके हैं और मैंने भी अपनी विद्या और बुद्धिके अनुसार उनको उपदेश देकर संतुष्ट किया है। इस संबंधमें तो यह गर्वकी बात होगी यदि मैं यह कहूँ कि मुझसे बढ़कर कोई है ही नहीं पर हाँ इतना मुझे कहनेमें संकोच नहीं है कि मेरे इतना शायद ही किसीने धर्मग्रंथोंका अध्ययन किया होगा। यदि मुझे विशेष यश और ख्यातिकी कामना होती तो इसके लिये मुझे तुनहांग जानेकी आवश्यकता नहीं थी। पर मैं तो मान-मर्य्यादाको लात मार चुका हूं तभी सब त्यागकर भारतवर्षकी यात्रा करनेपर आरूढ़ हुआ हूँ। कारण यह है, मुझे दुःखके साथ कहना पड़ता है कि बौद्धधर्मग्रंथोंमें मुझे परस्पर विरोध दिखायी पड़ता है। मैंने अनेक विद्वानोंसे इस विषयपर परामर्श किया पर कोई इसका संतोषजनक उत्तर नहीं दे सका। ऐसा क्यों है इसका पता तबतक नहीं चल सकता जबतक कि भगवानके मूल वाक्यों तथा चीनी भाषाके अनूदित ग्रंथोंका मिलान न किया जावे। अधिक संभव है कि अनुवादकोंने मूल वाक्योंके तात्पर्य्यको यथार्थ न समझा हो और अनुवादमें भ्रम किया हो। ऐसी अवस्थामें सिवा इसके दूसरा और कोई उपाय नहीं है कि मैं स्वयं भारतवर्ष जाऊँ और वहाँ रहकर संस्कृत विद्याका श्रमपूर्वक अध्ययनकर उन

ग्रंथोंको अपनी आंखोंसे देखूं और अपने हृदयको संतुष्ट करूं। इसी हेतु मैं मार्गके इतने कष्ट उठानेपर तैयार होकर इतनी दूर आया हूं और जो कुछ पड़े अपना मनोरथ पूरा करनेका दृढ़ संकल्प कर चुका हूं। मैं कदापि अपने विचारोंको परिवर्तन करना उचित नहीं समझता। ऐसी दशामें आप सरीखे सज्जन पुरुषोंको मेरा उत्साह बढ़ाना चाहिये न कि मुझे साहसहीन होकर लौट जानेकी सम्मति प्रदान करना। यह तो विचारिये कि बौद्धधर्मकी प्रधान शिक्षा है आत्माको नित्य और संसार और मानवजीवनको अनित्य और क्षणिक समझना। यह शिक्षा गृहस्थ और भिक्षु सबके लिये समान है। इसीके साक्षात्कारका फल निर्वाण है। भला आप ही विचारिये कि यह क्षणिक जीवन कितने दिन रहेगा। इसका लोभ ही क्या ? आपका अधिकार केवल इस क्षणभंगुर शरीरपर ही न है? लीजिये, रोकना बांधना क्या आप इसे नाश ही न कर डालिये पर क्या मेरे संकल्पमें परिवर्तन हो जायगा ? सुयेनच्वांग तो अपनी प्रतिज्ञापर दृढ़ है। वह जीते जी अपने संकल्पको विकल्प नहीं कर सकता।

सुयेनच्वांगकी यह बात सुन नायकका हृदय भर आया। वह उसके पैरोंपर गिर पड़ा और कहने लगा कि यह मेरे पूर्वजन्मके पुण्योंका फल है कि मुझे आपके दर्शन मिले। मैं अपने भाग्यकी जहांतक प्रशंसा करूं थोड़ी है। मेरी एक प्रार्थना है यदि आप उसे स्वीकार करें तो बड़ी कृपा होगी। आप इतनी दूर

आये हैं और रातभर जागते रहे हैं, कृपाकर प्रातःकालतक विश्राम कर लीजिये। सबेरे मैं आपको स्वयं अपने साथ ले चलकर ठीक राह धरा दूंगा। यह कहकर उसने सुयेनच्वांगके लिये दरी मंगाकर बिछवा दी और नौकरोंसे कहा कि घोड़ेको ले जाकर घोड़शालामें बाँध दो और उसे दाना घास दो। यह कह नायक अपने स्थानपर गया और सुयेनच्वांग पड़कर सो गया।

दूसरे दिन वह सुयेनच्वांगके उठनेके पहले उसके पास आ गया। सुयेनच्वांग उठा और अपने मुंह हाथ धोये। नायकने उसको जलपान कराया और अपने नौकरसे कहा कि श्रमणके लिये एक बड़ीसी मशक पानी भरकर लाओ और कुछ आटेकी रोटियाँ पकवा लाओ। नौकर गया और थोड़ी देरमें सब सामान लेकर लौट आया। उसने उसे सुयेनच्वांगको देकर कहा कि लीजिये इसे संभालकर बाँधिये और तैयार हो जाइये। सुयेनच्वांग उन्हे बांधने लगा कि इसी बीचमें साईस सुयेनच्वांगका घोड़ा और नायकका घोड़ा लेकर आया। नायक सुयेनच्वांगके साथ घोड़ेपर सवार हुआ और दस ली तक उसके साथ आया। वहाँ पहुंच उसने सुयेनच्वांगसे कहा कि यहाँसे मार्ग सीधा चौथी चौकीकी गढ़ी तक जाता है। वहाँ मेरा एक सगोत्र रहता है, वह बड़ा भला आदमी है, आप निधड़के उसके पास चले जाइयेगा और कह दीजियेगा कि 'वांगसियांग'ने मुझे आपके पास पहली चौकीसे भेजा है। स्मरण रखियेगा कि उसका नाम 'पीलुंग' है और वह 'वंग' गोत्रका है। यह कहते कहते उसकी

आँखोंमें आँसू डबडबा आये और बड़ी भक्ति और नम्रतासे सुयेनच्वांगको प्रणामकर अपनी गढ़ीकी ओर लौटा।

सुयेनच्वांग वहांसे चला और कई दिनमें चौथी चौकीकी गढ़ीके पास पहुँचा। गढ़ी देखकर उसके हृदयमें आशंका हुई कि ऐसा न हो कि वहाँका नायक मुझे रोक ले। उसने जानबूझकर दिन बिता दिया और रातको वहाँ पहुंचा। उसने अपने मनमें ठान ली थी कि जलाशयसे पानी भरकर चलता बनूँगा। निदान वह जब जलाशयपर पहुंचा तो अपने घोड़ेपरसे उतर पड़ा और पूर्वकी भांति लगा जलाशयमें हाथ मुंह धोकर अपनी मशक भरने। इसी बीचमें उसके कानमें तीरकी सनसनाहट आई। वह समझ गया कि चौकीवालोंने मुझे देख लिया है और यह उन्हींकी तीर है। उसने चौकीकी ओर मुंहकर पुकारकर कहा—'भाई क्यों इस भिक्षुको मारते हो? मैं चांगानका भिक्षु हूं और वहींसे आ रहा हूं।' यह कहकर वह अपने घोड़ेको लेकर गढ़ीकी ओर चला। फाटकपर पहुँचनेपर पहरेवालोंने फाटक खोल दी और उसे गढ़ीमें ले गये। वहाँ पहुंचकर गढ़ीके नायकको सूचना दी और वह उसके पास आया। नायकने उसका नाम-ग्राम पूछा। सुयेनच्वांगने कहा, मैं भारतवर्षको जा रहा हूं। पहली चौकीके नायक 'वांसियांग'से भेंट हुई थी। उसीका भेजा हुआ मैं आपके पास आता हूं। नायक उसकी बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसे रातभर ठहरा रक्खा। प्रातःकाल होते ही उसने एक मशकभर पानी और उसके घोड़ेके लिये दाना दिल-

वाया। चलते समय उसने उसे अलग ले जाकर कहा कि अच्छा होगा कि आप पांचवीं चौकीसे होकर न जायँ। वहाँके लोग दुष्ट और नीच हैं। संभव है कि उनके हाथसे आपको कष्ट पहुँचे। आप यहाँसे सीधे चले जाइये, यहां यन्म नदी है उसमें। आप अपनी मशक भर लीजियेगा। आगे चलकर आपको मो-किय-येनकी मरुभूमि मिलेगी। उसके उस पार ईगो है।

सुयेनच्वांग वहाँसे अपने घोड़ेपर सवार हुआ और नायकसे विदा होकर उसके बतलाये हुए मार्गसे चला। न जाने उसका घोड़ा ही किसी दूसरे मार्गसे गया वा वह राह ही भूल गया, १०० मीलतक चला गया पर न तो उसे पांचवीं चौकी ही मिली न यन्मकी नदी ही मिली। आगे चलकर एक और विपत्ति आ पड़ी। उसकी मशकमें इतना पानी था, जिसे वह संयमसे पीता तो एक सहस्र लीके लिये काफ़ी था। पर दैवयोग, जब वह मशकसे पीनेके लिये पानी ढाल रहा था कि अचानक मशकका मुंह हाथसे छूट गया और सारा पानी मरुभूमिपर गिर पड़ा। आगे चलकर इतना पेचीदा मार्ग मिला कि उसकी बुद्धि चकरा गई कि किधरसे जावें। निदान उसके मनमें यह आया कि चलो चौथी चौकीपर लौट चलें और वहाँसे ठीक मार्ग पूछकर चलें। वह उल्टे मुंह फिरा। कोई दस लीके लगभग लौटा होगा कि अचानक उसे अपनी प्रतिज्ञाका स्मरण आया। उसने कहा—सुयेनच्वांग, यह क्या कर रहा है? व्यर्थ थोड़ेसे कष्टके लिये अपनी प्रतिज्ञा भंग कर रहा है? धैर्य्य धर, अपनी पूर्व

प्रतिज्ञाका स्मरण कर। तेरी तो यह प्रतिज्ञा न थी कि मैं भारतके मार्गमें पैर बढ़ाना छोड़कर पीछे न हटाऊँगा ? फिर यह क्या कर रहा है ? चेत, पश्चिम ओर पैर बढ़ाते बढ़ाते मर जाना भला है, पर पूर्वको एक पग भी लौटकर रखना पाप है। जीवन क्षण-भंगुर है। उसके लिये अपनी प्रतिज्ञाका भंग करना तेरे लिये उचित नहीं है।

निदान साहस बाँधकर वह आगे बढ़ा और एक निर्जन मरुभूमिमें पहुंचा। यह मो-किम-येनकी मरुभूमि थी। आजकल इसे मैदान 'तकला' कहते हैं। यह मरुभूमि ८०० ली लंबी चौड़ी है। न कहीं इसमें वृक्ष है न वनस्पति। न नीचे पानी है न ऊपर बादल। इसमें कोई पक्षी भी आकाशमें उड़ता नहीं दिखलाई पड़ता। मार्गमें कहीं कोई पशु, कीटपतंग भी दृष्टिगोचर नहीं होते। दिनको जिधर दृष्टि डालिये साफ सुथरी चमकती बालू ही बालू दिखाई पड़ती थी। आंधी इतनी तीक्ष्ण और वेगसे चलती थी कि बालू उड़ उड़कर इस प्रकार बरसती थी मानों वर्षाऋतुकी झड़ी लगी है। रातको चारों ओर सहस्रों लुक जलते हुए दिखाई देते थे, जिनको देखकर भय मालूम पड़ता था। इसके अतिरिक्त नाना प्रकारके भूतों और प्रेतोंकी भावनायें दिखाई पड़ती थीं जिन्हें देखकर धीरसे धीर पुरुष सहमे बिना नहीं रह सकता था। इस घोर भयावह मरुभूमिसे होकर यात्री सुयेनच्वांग अपने संकल्पका स्मरण करता और अवलोकितेश्वर बोधिसत्वका ध्यान और मंत्र जप करता आगे बढ़ा।

पानी बिना प्याससे मुंह सूखा जाता था पर उसका मन हरा और उत्साहपूर्ण था। इस प्रकार चार रात और पांच दिन वह अविश्रांत उस मरुभूमिमें घोड़ा बढ़ाये चला गया पर अंतको उसका मुंह सूख गया, तालूमें कांटे लग गये। पेटमें दारुण जलन होने लगी और इतना श्रांत क्लांत हो गया कि एक एक पग दूभर हो गया। अब उसमें आगे बढ़नेकी शक्ति न रह गई और घोड़ेसे उतरकर भूमिपर लेट गया। पर इस अवस्थामें भी उसके मुंहमें अवलोकितेश्वरका ही नाम था और चित्तमें उन्हींका ध्यान। रातको आधी रात बीतनेपर ठंढी वायु चली। वायुके लगनेसे चित्तको कुछ शांति मिली। जान पड़ा कि मानों किसीने उसे अत्यंत शीतल जलसे स्नान करा दिया। उसका मन हरा हो गया, आंखोंमें ज्योति आ गई। ठंढक पाकर उसकी आंखें लग गई। सोते सोते उसने स्वप्न देखा कि कोई विशाल रूपधारी देवता उसे पुकार कर कह रहा है कि सुयेनच्वांग पड़ा सोता क्यों है? उठ आगे बढ़, थोड़ा और साहस कर। यह सुन वह स्वप्नसे चौंककर उठा और अपने घोड़ेपर सवार हो आगे बढ़ा। कोई दस ली गया होगा कि उसका घोड़ा अचानक भड़का और दूसरी राहसे उसे लेकर वेगसे भागा। सुयेनच्वांग उसको रोकनेकी अनेक चेष्टायें करता था पर वह उसके रोके रुकता न था। निदान कई ली चलनेपर उसे हरियाली देख पड़ी। कई बीघेतक भूमिपर हरी हरी घास लहलहा रही थी। हरियाली देखकर सुयेनच्वांग अपने घोड़ेपरसे उतर पड़ा और घोड़ेको चरनेके

लिये छोड़ दिया। उस स्थानसे कोई दस पगपर एक स्रोत दिखाई पड़ा। उसका जल स्वच्छ और निर्मल था। सुयेनच्वांग उस स्रोतके पास गया और हाथ मुंह धोकर थोड़ा पानी पिया। अब तो उसके निर्जीव शरीरमें जीवनका संचार हो आया। पर राहकी थकावट बड़ी थी। वह वहीं स्रोतके पास दरी डालकर दिनभर पड़ा आराम करता रहा।

दिन रात पड़े रहनेसे उसकी और उसके घोड़े दोनोंकी थकावट जाती रही और उनमें फिर पूर्वकीसी स्फूर्ति आ गई। वह प्रातःकाल होते ही अपने स्थानसे उठा और अपने घोड़ेके लिये घास काटी और उसे घोड़ेपर लादकर उसकी पीठपर बैठकर आगे बढ़ा। उसके आगे फिर मरुभूमि थी पर घोड़ा बिना हांके अपने मनसे चला जा रहा था। दो दिन चलकर बड़ी कठिनाईसे सहस्रों आपत्तियाँ झेलकर मरुभूमिको पार किया और सजल प्रदेश दिखाई पड़ा। यह ईगोका जनपद था।

प्रेम-पाश-विमोचन

ईगो जनपदमें पहुंच सुयेनच्वांग एक विहारमें उतरा। वहां उसे चीनका एक वृद्ध भिक्षु मिला। वह सुयेनच्वांगको देखते ही उसके पास दौड़ा हुआ आया और आकर सुयेनच्वांगसे लिपट गया। आँखोंमें आँसु भरकर रोने लगा और कहने लगा कि मुझे तो आशा न थी कि अब इस जीवनमें मुझे अपने देशका फिर कोई पुरुष दिखाई पड़ेगा। पर धन्य भाग्य कि

आज मुझे तुम्हारे दर्शन मिले। उसका यह अगाध प्रेम देखकर सुयेनच्वांगकी आँखोंसे आँसू टपक पड़े और दोनों गले मिलकर खूब फूट फूटकर रोये।

विहारके अन्य भिक्षु भी उसके देखनेको दौड़े। दो एक दिनमें धीरे धीरे उसके आनेकी चर्चा नगरमें फैली और राजाको उसके यहां पहुंचनेका समाचार मिला। राजाने सुयेनच्वांगको अपने प्रासादमें भिक्षा करनेके लिये आमंत्रित किया और बड़ी श्रद्धा और भक्तिसे अन्न-पानसे उसकी पूजा की।

दैवयोगसे उन दिनों काउचांगके राजाके कुछ दूत भी ईंगोके राजाके यहां आये थे और जिस दिन सुयेनच्वांगका राजप्रासादमें निमन्त्रण था वे भी राजाके दरबारमें उपस्थित थे और उसी दिन राजासे विदा हुए थे। चलते समय उनको भी सुयेनच्वांगके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हो गया था। जब वे काउच्वांगमें पहुंचे तो उन लोगोंने वहांके राजासे कहा कि चीन देशका सुयेनच्वांग नामक एक परम विद्वान भिक्षु ईंगोमें आया है। हमलोगोंने उसे अपनी आंखों देखा है। वह बड़ा बुद्धिमान, धीर और साहसी पुरुष है। हमलोग जिस दिन आते थे उस दिन महराज ईंगोके प्रासादमें उसका निमन्त्रण था। बड़ा दर्शनीय व्यक्ति है। ऐसे महात्मा विरले ही कहीं भाग्यवश दर्शनको मिला करते हैं।

काउचांगका राजा सुयेनच्वांगकी प्रशंसा सुन उसके दर्शनोंके लिये लालायित हो उठा और तुरन्त अपने दूतोंको ईंगोके

राजाके नाम पत्र लिखकर दिया और आज्ञा दी कि अभी ईगोको जाओ और वहांके राजासे अनुरोध करो कि कृपाकर सुयेन-च्वांगको अवश्य काउचांग भेजनेकी कृपा करें। दूत पत्र लेकर ईगोकी ओर रवाना हुए। दो तीन दिन बीतनेपर राजाने अपने मन्त्रीको बुलाकर आज्ञा दी कि आप स्वयं थोड़ेसे चुने हुए राज-कर्मचारियोंको साथ लेकर ईगो जाइये और वहांसे श्रमण सुयेनच्वांगको आग्रहपूर्वक अपने साथ ले आइये। दूतोंने ईगो पहुंचकर वहांके राजाको पत्र दिया और उससे सविनय अनु-रोध किया कि आप जिस प्रकारसे हो सके भिक्षु सुयेन-च्वांगको काउचांग भेज दीजिये। महाराज उनके दर्शनोंके लिये बड़े उत्कण्ठित हैं। ईगोका राज्य काउचांगके अधीन था। राजा सब प्रकारसे काउचांगके महाराजके दबावमें किसी प्रका-रसे इनकार नहीं कर सकता था। उसने सुयेनच्वांगके पास जाकर कहा कि महाराज काउचांगके दूत आपको बुलानेके लिये आये हैं। महाराज आपके दर्शनके लिये बड़े ही उत्सुक हैं। वह बड़े ही धर्म-प्राण नृपति हैं, आप कृपाकर वहां पधारना स्वीकार कीजिये।

सुयेनच्वांगका यद्यपि यह विचार था कि मैं सीधे मार्गसे खानके चैत्यसे होते हुए पश्चिमको निकल जाऊं; इसी कारण उसने पहले तो इनकार किया और कहा कि काउचांग होकर जानेमें मुझे विलम्ब होगा और व्यर्थ उलझ जाना पड़ेगा, पर जब काउचांगके मन्त्री और अन्य कर्मचारीगण वहां पहुंच गये

और विशेष आग्रह करने लगे तो उसने देखा कि अब बिना काउचांग गये छुटकारा नहीं है। एक ओरसे तो ईगोके राजाका अनुरोध दूसरी ओरसे काउचांगके महाराजकी वह भक्ति और उत्कंण्ठा कि उसने अपने अमात्य और राजकर्मचारियोंको यह आज्ञा देकर भेजा कि श्रमणको अपने साथ लाओ, विवश होकर उसे काउचांग जाना स्वीकार ही करना पड़ा। यात्राका दिन नियत हो गया। दूत समाचार लेकर काउचांग सिधारे। मन्त्री और कर्मचारीगण उसके लिये वहीं रह गये।

नियत तिथिपर सुयेनच्वांग काउचांगके अमात्य और कर्मचारियोंके साथ ईगोसे काउचांगको रवाना हुआ। दक्षिणकी मरुभूमि पार कर छ दिनमें वह काउचांगके जनपदकी सीमापर पहुंचा। सूर्यास्त हो गया था कि वह पि:-ली नामक एक छोटेसे नगरमें पहुंचा। नगरमें पहुंचकर उसने वहाँ ठहरनेका विचार किया पर अमात्य और राजकर्मचारियोंने उससे सानुरोध कहा कि अब राजधानी थोड़ी दूरपर रह गई है, महाराजने समाचार भेजा है कि मार्गमें घोड़ोंकी डाकका प्रबन्ध है किसी प्रकारका कष्ट न होगा। आप कृपाकर अपने घोड़ेको यहीं ही छोड़ दीजिये वह पीछेसे आता रहेगा और दूसरे घोड़ेपर सवार होकर चले ही चलिये। वहाँ महाराज आपके दर्शनोंके लिये व्याकुल हो रहे हैं। निदान सुयेनच्वांगको उनकी प्रार्थना स्वीकार करनी पड़ी। उसने अपने घोड़ेको वहीं छोड़ दिया और दूसरे घोड़ेपर सवार होकर आगे बढ़ा।

आधी रात बीतते बीतते सुयेनच्वांग अमात्य और राजकर्मचारीगणोंके साथ काउचांग नगरके पास पहुंचा। दूतने नगरके दुर्गपालको उसके आगमनकी सूचना दी। उसने नगरका द्वार खोल दिया और महाराज काउचांगको सूचित किया कि श्रमण सुयेनच्वांग आ रहा है। महाराज काउचांग अपने राजकर्मचारियोंके साथ बड़े भक्तिभावसे उसकी अगवानीके लिये राजप्रासादसे निकला। सुयेनच्वांगका नगरमें प्रवेश करते ही स्वागत किया और उसे राजप्रासादमें ले जाकर एक दुमंजिले भवनमें ठहराया और एक रत्नजटित सिंहासनपर आसन दिया। सुयेनच्वांगके बैठ जानेपर महाराजने उसके आगे प्रणिपात किया और फिर सब राजकर्मचारियोंने उसे दण्डवत किया। महाराजने सुयेनच्वांगसे कहा कि अबसे आपका नाम मेरे कानोंमें पड़ा है मारे हर्षके मुझे खाना सोना नहीं भाता, दिन गिन रहा था। मार्गके विचारसे मैंने यह निश्चय कर लिया था कि आप आज अवश्य पधारेंगे। इसीलिये न तो मुझे और न महारानीको और न किसी बालकको नींद आती थी। सब सूत्रोंका पाठ करते हुए बड़ी उत्कण्ठासे आपके आनेकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

महामात्य और राजकर्मचारी अपने अपने स्थानको पधारे पर महाराज श्रमणके पास बैठे ही रह गये। थोड़ी देरमें महारानी काउचांग अपनी अनेक परिचारिकाओंके साथ सुयेनच्वांगको प्रणिपात करनेके लिये आई और प्रणिपात कर अंतः

पुरको लौट गई। महाराज मारे भक्ति और श्रद्धाके विनीत भावसे सुयेनच्वांगके आगे बैठे के बैठे रह गये। पिछला पहर हो गया, सुयेनच्वांगने जब देखा कि वह भक्तिविह्वल हो रहे हैं तो उसने कहा—महाराज, मैं मार्गके चलनेसे थका हूं, मुझे नींद लग रही है। अब आप भी चलकर विश्राम करें। महाराज उठकर अपने राजभवनको सिधारे और श्रमण सुयेनच्वांग जो दिन-भरका थका और रातभरका जगा था पड़कर सो रहा।

प्रातःकाल होते ही सुयेनच्वांगकी आंख भी न खुली थी कि महाराज अपनी महारानी और परिचारिकाओंके साथ उस भवनके द्वारपर जहां वह सो रहा था आ विराजे। सुयेनच्वांग उठा और हाथ मुंह धोकर बैठा। महाराज और महारानी आदिने आकर उसे प्रणाम किया और पास बैठ गये। महाराजने कहा कि यह बात मेरी समझमें नहीं आती कि आपने कैसे अकेले यहांतकके मार्गको पार किया। मार्गमें अनेक कष्ट और विघ्न बाधायें हैं उनसे कैसे बचकर निकले। यह कहते कहते उसकी आंखोंमें आंसू भर आये। वह अचंभे और आश्चर्यमें पड़कर स्तब्धसा हो गया। थोड़ी देर बीतनेपर उसने आज्ञा दी कि भोजन ले आओ और भोजन आ जानेपर उसने यथाविधि सुयेनच्वांगको भोजन कराया। तदनंतर वह सुयेनच्वांगको राजप्रासादके पासहीके एक विहारमें लिवा ले गया और वहां उसे उपदेशशालामें निवासस्थान दिया। उसकी रक्षा और परिचर्य्याके लिये अनेक नपुंसक परिचारकोंको नियत कर दिया

और उन्हें आज्ञा दो कि देखना श्रमणको किसी प्रकारका [redacted] न होने पाये।

महाराज काउचांगके हृदयमें सुयेनच्वांगकी इतनी गाढ़ भक्ति उत्पन्न हुई कि उसने कल बल छलसे उसे अपने राज्यमें रोककर सदाके लिये रखनेकी इच्छा की और अपने इस कामनाकी सिद्धिके प्रयत्नमें लगा। पहले तो उसने काउचांगके संघारामसे 'तुन' नामक एक विद्वान भिक्षुको अपने पास बुलाया। यह भिक्षु बहुत कालतक चांगानमें रह आया था और वहां ही शिक्षा प्राप्त की थी। उसे बुलाकर कहा कि यह सुयेनच्वांग चांगानका रहनेवाला है और बड़ा ही विद्वान और बौद्धग्रंथोंका पण्डित है। इसका विचार है कि मैं भारतवर्षको जाऊं और वहां जाकर मूल बौद्धग्रंथोंका अध्ययन करूं। बड़ी कठिनाईसे मार्गके कष्टोंको सहनकर यह चांगानसे ईगो आया था और आगे जा रहा था। मैंने बड़े अनुरोधसे उसे यहां बुलाया है। ऐसा यत्न करो कि यह भारत जानेके विचारका परित्याग कर काउचांगमें रह जाय। इससे भिक्षुओं और श्रावकों दोनोंका उपकार होगा। देशमें धर्म और विद्याका प्रचार होगा। मेरी सम्मति है कि तुम उसके पास आओ और बातचीत कर उसे इस ढंगपर ले आओ।

यह बड़ी बड़ी आशायें मनमें लेकर सुयेनच्वांगके पास गया और उसे समझानेकी चेष्टा की पर उसने उसकी सब आशायें धूलमें मिला दीं और यह अपना सा मुंह लेकर लौट आया। उसने महाराजासे कहा कि सुयेनच्वांग अपने संकल्पपर अटल

है, वह मानप्रतिष्ठा और वैभवका भूखा नहीं, समझानेसे वह नहीं मानेगा। उसे यहां एक दिन एक एक वर्षके बराबर बीत रहा है। वह यहां आठ दस दिनसे अधिक ठहरनेका नहीं। महाराजने जब देखा कि उससे काम नहीं चला तो एक बड़े वृद्ध और विद्या-विनय-संपन्न भिक्षुको अपने पास बुलाया। उसका नाम था कोत्तांग-चांग। उसकी अवस्था अस्सी वर्षकी थी और सारा काउचांग उसकी प्रतिष्ठा करता था और उस देशमें वह सबसे वयोवृद्ध और ज्ञान-वृद्ध था। उससे कहा कि आप जाकर सुयेनच्वांगके साथ रहिये और उसे समझाइये कि वह भारतकी यात्राका विचार त्याग दे और काउचांगमें रहना स्वीकार करे। वह गया और कई दिन सुयेनच्वांगके साथ रहा और नाना भांतिकी आदर और प्रतिष्ठा आदिकी प्रलोभनायें दिखलायीं पर सुयेनच्वांग उन प्रलोभनाओंमें न आया और टससे मस न हुआ।

इस प्रकार जब काउचांगमें सुयेनच्वांगको दस दिन बीत गये तो उसने काउचांगके महाराजसे कहा कि मैं आपके अनुरोधसे ईगोसे यहां आया और आपने मेरी बड़ी सेवा की। दस दिन आपका अतिथि रहा। अब मेरा मार्ग खोटा हो रहा है अधिक ठहरनेका अवकाश नहीं है। आप कृपाकर आज्ञा दें तो मैं भारतयात्राके लिये अपने असबाब बांधूं। अधिक विलम्ब करनेसे समय व्यर्थ नष्ट हो रहा है। महाराजने कहा—मैंने महा स्थविर आचार्य्य कोत्तांगचांगको आपके पास भेजा था।

उसने कुछ आपसे यहां रहनेके लिये प्रार्थना की होगी। उसके ऊपर आपके क्या विचार हैं?

सुयेनच्वांगने उत्तर दिया कि यह महाराजाका अनुग्रह है कि श्रीमान् इस तुच्छ भिक्षुको यहां रहनेके लिये इतना आग्रह कर रहे हैं पर सच्ची बात तो यों है कि मैं ठहर नहीं सकता हूं और न मेरी रहनेकी इच्छा है।

राजाने कहा कि जब चीन देशमें सुई राजवंशका शासन था तब उस समय मैं अपने आचार्य्यके साथ वहां गया था। वहां पूर्व और पश्चिमकी दोनों राजधानियोंमें गया और येनताई और फेनचिन नदियोंके मध्यके देशमें अच्छी तरह भ्रमण किया था। वहां मुझे एकसे एक विद्वान भिक्षु मिला पर मुझे किसीसे राग न हुआ। पर जबसे मैंने आपका नाम सुना उसी क्षणसे मुझे जो हर्ष हो रहा है वह मेरा चित्त ही जानता है, मैं मारे आनन्दके फूला नहीं समा रहा हूं, आप मुझपर अनुग्रह कीजिये और मेरी बात मान जाइये। यहां ही रहिये और भारतकी यात्राका विचार परित्याग कर दीजिये। मेरी प्रजाको धर्मोपदेश दीजिये, उसको सन्मार्गपर लगाइये। विश्वास मानिये कि यदि आप इस देशके अधिवासियोंको उपदेश करेंगे और उनको धर्मशिक्षा देंगे तो सारा देशका देश आपका शिष्य हो जायगा। यद्यपि इस देशमें भिक्षुओं और उनके उपासकोंकी संख्या बहुत अधिक नहीं है फिर भी कई सहस्र हैं। मैं सबको हाथमें पुस्तकें लेकर आपके पास शिक्षा ग्रहण करनेके लिये भेजूंगा। मेरी प्रार्थनाको

आप मान जायं और भारतकी यात्राका ध्यान अपने मनसे निकाल दें।

सुयेनच्वांगने काउचांगके राजाकी प्रार्थनाको स्पष्ट शब्दोंमें अस्वीकार किया। उसने कहा, भला मैं तुच्छ भिक्षु श्रीमान्के इस अनुग्रहका कहांतक धन्यवाद दे सकता हूं। यह आपकी कृपा है जो आप इसकी इतनी प्रशंसा कर रहे हैं और इतना महत्व प्रदान करना चाहते हैं। पर मैंने यह यात्रा पूजा और उपहारके निमित्त नहीं की है। मुझे तो अपने देशमें यह देख-कर बड़ा दुःख हुआ कि वहांके लोगोंको धर्मका यथावत् बोध ही नहीं है। पुस्तकें भी जो हैं वह अधूरी और दोषपूर्ण हैं। मनमें परस्पर बड़ा विरोध है। कितने वाक्य ऐसे जटिल हैं जिनका ठीक अर्थ क्या है इसका अवधारण करना कठिन है। हरएक मनमानी जैसे जिसे समझमें आता है उनकी व्याख्या करता है, भगवानने क्या कहा इसका ठीक पता नहीं चलता है। मेरे मनमें इसके जाननेकी इच्छा उत्पन्न हुई कि वास्तवमें भग-वानका क्या उपदेश है। कितने स्थलोंमें परस्पर विरोध देख मेरा मन दुविधेमें पड़ा है कि किसे प्रमाण मानूं, कौन ठीक है, किसे अप्रामाणिक कहूं। इन्हीं सब कुतूहलोंके समाधानके हेतु मैंने भारतकी यात्राका संकल्प अपने मनमें किया। अपने प्राणको हथेलीपर रखकर इसी आशासे चांगानसे चला कि भारतमें पहुंचकर वहांके विद्वानोंसे उनके वास्तविक अर्थों और व्याख्याओंको सुनूंगा जिनका ज्ञान इधरके देशोंमें अभीतक है

ही नहीं, जा यहांवालोंके लिये अज्ञात और अश्रुत-पूर्व हैं। मेरा उद्देश यह है कि जिस अमोघ धर्मकी वृष्टि कपिलवस्तुमें हुई है वह यहींके लिये क्यों रह जाये। उस लोकोत्तर धर्मका प्रचार पूर्वके देशोंमें भी हो। इसी विचारसे मैंने पहाड़ों और मरुस्थलोंसे होकर जानेके कष्टको अंगीकार किया। भारतमें जाकर वहांके विद्वानोंसे शास्त्रोंका अध्ययन करूंगा और उनके संयार्थकी जिज्ञासा करूंगा इसी आशासे मेरे मनका उत्साह दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। बड़े दुःखकी बात है कि श्रीमान् मुझे बखेड़में रोकना चाहते हैं। मैं आपसे विनयपूर्वक प्रार्थना करता हूं कि श्रीमान् अपना यह विचार अपने मनसे निकाल डालें और अपने प्रेमपाशमें मुझे अधिक फांसनेका प्रयत्न न करें।

महाराजने कहा कि मुझे आपमें इतनी श्रद्धा और भक्ति उत्पन्न हो गई है कि मैं आपके प्रेममें विह्वल हो रहा हूं। मेरी आपसे विनीत प्रार्थना है कि आप यहां ठहर जायँ और मेरे पत्र-पुष्पको स्वीकार करते रहें। हिमालय पर्वत टले तो टले पर मेरी बात नहीं टल सकती। आपसे मैं यह निष्कपट भावसे कहता हूं, आप इसे ध्रुवकर समझ रखें।

सुयेनच्वांगने देखा कि राजा उसकी भक्तिसे कातर हो रहा है और अपने पाशमें उसे सामदाम दिखलाकर फांसना चाहता है। उसने कहा कि यह सिद्ध करनेके लिये कि महाराज मुझपर इतनी श्रद्धा-भक्ति रखते हैं इतना अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं। इसका कुछ फल नहीं हो सकता। सुयेनच्वांगने पश्चिम-

की कठिन यात्राको धर्मके हेतु आरंभ किया है। उसका मनोरथ बिना सिद्ध किये मार्गमें ठहरना असम्भव है। वह अपने संकल्पको अन्यथा नहीं करनेका। मेरी श्रीमान्‌से यही प्रार्थना है कि आप मुझे क्षमा करें और मेरे मार्गका कंटक न बनें। श्रीमान्‌ने पूर्वजन्मोंमें बड़े पुण्यका संचय किया था और उसी पुण्यका फल है कि आज श्रीमान् इतने बड़े जनपदके महाराज हुए हैं। आप न केवल प्रजाके ही रक्षक हैं अपितु बौद्धधर्मके भी रक्षक हैं। यह आपका कर्त्तव्य है कि आप धर्मका पालन करें और उसकी रक्षा करें। पर यह आश्चर्य है कि आप उसका विघात कर रहे हैं।

महाराजने कहा, मैं धर्मका विघात कदापि नहीं करता हूं। मेरे देशमें कोई उपदेशक और शिक्षक नहीं है इसी कारण मैं आपको यहां रखना चाहता हूं जिससे आप यहां रहकर मेरी मूर्ख प्रजाको धर्मकी शिक्षा दें और उसे सच्चे मार्गपर लावें।

राजाने बहुत कुछ कहा सुना पर सुयेनच्वांग न पिघला। वह उससे विदा होकर अपनी यात्रापर जानेके लिये हठ करता ही रहा और राजाने देखा कि वह समझानेसे नहीं मानता है। इसपर उसका मुंह लाल हो गया और अपने हाथकी आस्तीनका मुंहड़ो उपर चढ़ाकर राजाने डपट कर कहा कि अब आपको मनवानेके लिये मुझे और उपाय करना पड़ेगा। यदि आप इतने समझानेपर भी नहीं मानते हैं और हठ करके यथारुचि जानेपर ही तुले हैं तो स्मरण रखिये कि आप किसी प्रकार जाने

नहीं पा सकते। मैं आपको बलपूर्वक रोक रखूंगा और बांधकर तुम्हारे देशमें भेज दूंगा। मैं आपको एक बार और विचार करनेका अवसर देता हूं। अच्छा होगा कि आप मान जायँ नहीं तो अंतको पछताना पड़ेगा।

सुयेनच्वांगने इसपर निर्भय उत्तर दिया कि मैं तो इतनी दूर धर्मकी जिज्ञासामें आया। यहाँ आकर आपके बंधनमें पड़ गया। आप मुझे आगे जाने नहीं देते हैं पर आप स्मरण रखें कि आपका इतना ही न अधिकार है कि आप मेरे शरीरको बंधनमें डाल देंगे, इसे ले आगे जाने न देंगे। लीजिये इसे जो चाहिये कीजिये, काट काटकर खंड खंड कर डालिये। पर क्या इतनेसे आपका अधिकार मेरे चित्तपर भी हो जायगा? आप उसे न तो बांध सकते हैं, न काट सकते हैं, न उसको किसी प्रकारसे रोक सकते हैं। वह आपकी पहुंचसे, अधिकारसे, शासनसे बाहर है। आप उसे हाथ भी लगा नहीं सकते हैं।

इतना कहकर वह चुप हो गया और बैठकर सिसकने लगा। राजापर इसका कुछ प्रभाव न हुआ। वह वहाँसे उठकर अपने भवनमें चला आया और सुयेनच्वांग अपने स्थानपर बैठा सिसकता रह गया। राजाने तो पहले ही उसकी रक्षाके निमित्त जब उसे वहां ले आकर ठहराया था नपुंसकोंको नियत कर दिया था। वह उसकी यथावत् देखभाल रखते थे और वह एक प्रकारसे बंदीगृहमें ही था। पर अंतर इतना ही था कि वह प्रेमके बंदीगृहमें था और राजा उसके लिये नित्य अपने भांडारसे

उत्तमसे उत्तम भोजन भेजता था और उससे नित्य यह पूछता रहता था कि किसी बातकी कमी तो नहीं है। जिस पदार्थकी आपको आवश्यकता पड़े निःसंकोच आज्ञा कीजिये, आपके पास पहुंच जायगा।

सुयेनच्वांगने देखा कि मैं तो यहाँ आकर बंदीगृहमें पड़ गया और राजा मुझे जबरदस्ती रोकना चाहता है। वह बड़ा चिंतित हुआ और उसने संकल्प किया कि अब जबतक मुझे जानेकी आज्ञा न मिलेगी मैं अन्न जल न ग्रहण करूँगा। यह संकल्प कर वह राजाके ऊपर धरना देकर बैठा। वह तीन दिन तक अपने आसनपर एक ही करसे बिना अन्न जलके चुपचाप बैठा रह गया। इसका समाचार जब राजाको मिला तब वह स्वयं उसके पास दौड़ा हुआ पहुँचा। उसने देखा कि गंभीर भाव धारण किये वह प्रशांत चित्त अचल आसन मारे बैठा है। यद्यपि तीन दिन उपवास करनेसे उसका शरीर कुछ क्षीण हो गया है पर उसका मुखड़ा दमक रहा है और उसपर कुछ अलौकिक छवि है। राजाको अपने कियेपर बड़ी लज्जा और पश्चात्ताप हुआ। वह सुयेनच्वांगके पास सकुचता हुआ पहुंचा और प्रणामकर साष्टांग उसके आगे पड़ गया। सुयेनच्वांग मौन धारण किये मूर्तिकी भांति अपने आसनपर बैठा रह गया और तनिक भी न हिला। राजाने उसकी यह दशा देख हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि महाराज आपको सब प्रकारसे जानेकी आज्ञा है। कृपा कर उठिये, कुछ जलपान तो कर लीजिये।

सुयेनच्वांगको राजाके कहनेका विश्वास न पड़ा। उसने कहा कि मैं आपके वचनका विश्वास नहीं करता। यदि आप सच कहते हैं तो सूर्यदेवको साक्षी देकर उनकी ओर हाथ उठाकर शपथ करके कहिये कि आपको कभी नहीं रोकूंगा। राजाने कहा कि जब आपको विश्वास नहीं पड़ता है तो सूर्य-देवकी ओर हाथ उठानेकी कौनसी बात है, चलिये भगवानके मंदिरमें चलें और वहीं प्रतिज्ञा करें। सुयेनच्वांग यह सुनकर उठा और राजाके साथ भगवान बुद्धदेवके मंदिरमें गया। वहीं राजमाता और महारानी काउचांग भी पधारीं। वहां राजाने पहले भगवानकी पूजा की और कहा कि मैं भगवानकी शपथ करता हूं कि मैं भिक्षु सुयेनच्वांगको अपने भाईके सदृश समझूंगा और उसे धर्मकी खोजमें भारतवर्षकी यात्रा करनेकी आज्ञा दूंगा और कभी न रोकूंगा। राजाने कहा कि लीजिये भगवन्, अब आपको संतोष हुआ पर इतनेसे आपका पीछा नहीं छूटेगा। आप भी प्रतिज्ञा कीजिये कि जब आप भारतवर्षसे लौटेंगे तो आकर यहां तीन वर्ष इस जनपदमें ठहरेंगे और मेरे उपहारको ग्रहण कर यहांवालोंको धर्मका उपदेश करेंगे। और यदि आप कभी बुद्धत्वको प्राप्त हों तो आपसे मेरी यही प्रार्थना है कि आप मेरी रक्षा और पूजाको वैसे ही स्वीकार करें जैसे भगवान शाक्यसिंहने राजा प्रसेनजित वा बिम्बसारको पूजा और सेवाको स्वीकार किया था। सुयेन-च्वांगने कहा तथास्तु।

राजाने उससे कहा कि आपको मेरी एक और प्रार्थना स्वीकार करनी पड़ेगी और वह यह है कि आप यहां एक मास तक ठहरकर मेरे निमंत्रणको स्वीकार कर जिन-वांग-यान-जो सूत्रकी व्याख्या सुना दें और इतने समयमें मैं यथाशक्ति आपके लिये यात्राकी सामग्री तैयार करा दूंगा जिससे मार्गमें आपको कुछ भी तो उससे सुभीता होगा। सुयेनच्वांगने राजाकी यह बात भी मान ली और अपने स्थानपर आकर अन्न जल ग्रहण किया।

सुयेनच्वांगको राजाके अनुरोधसे काउचांगमें अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार एक मासतक ठहर जाना पड़ा। वहां वह रहकर नित्य उपदेश-मण्डपमें जाता और सिंहासनपर बैठकर सूत्रकी व्याख्या करता। राजा उसको उपदेश-मण्डपमें ले जानेके लिये स्वयं आता और उसे अपने साथ वहां ले जाता। सभामण्डपमें जब वह उपदेशके सिंहासनपर बैठता तो राजा स्वयं अपने हाथसे सिंहासनपर चढ़नेके लिये उसके आगे पादपीठ रखता था और बड़ी श्रद्धा-भक्तिसे अपनी रानी समेत बैठकर उसके व्याख्यानको श्रवण करता था। बड़े बड़े विद्वान भिक्षु और राजकर्मचारी कथा सुननेके लिये इकट्ठे होते थे। सुयेनच्वांग उस ग्रन्थकी ऐसी मनोहर व्याख्या करता था कि सब लोग उसे सुनकर उसकी विद्या और बुद्धिकी प्रशंसा करते थे।

महीनाभर हो गया इस बीचमें काउचांगाधिपतिने सुयेन-

च्वांगकी यात्राके लिये समुचित सामग्रियां एकत्रित करके उसको विदा करनेकी तैयारी की। उसने बीस वर्षके लिये उसके खान-पान, असन-वसन और वाहन-यानका सब सामान कर दिया। नाना भांतिके वस्त्र, आदि जो भिन्न भिन्न प्रकृति-वाले देशोंमें उपकारक हों प्रदान किये। सौ अशर्फियां और तीन लाख रुपये, पाँच सौ थान रेशमी ताफते और नाना भांतिके पदार्थ तीस घोड़ोंपर लदाकर उसके साथ कर दिये। उसने उसकी सेवाके लिये चौबीस दास दिये और उनको कहा कि वे सब प्रकारसे सुयेनच्वांगकी सेवा करें। इसके अतिरिक्त उसने येः-हूँ-खांके नाम एक पत्र लिखा और उसके लिये दो गाड़ियोंपर पांच सौ थान रेशमी ताफते और विविध भांतिके फल उपहार स्वरूप लदाकर अपने एक धर्मामात्यके साथ कर दिया। इतना ही नहीं उसने मार्गमें पड़नेवाले चौबीस जनपदोंके अधिपतियोंके नाम पत्र लिखकर दिये और सबसे प्रार्थना की कि यह श्रमण भारतवर्षको जा रहा है और मेरा अत्यन्त हितू है। आप लोग कृपाकर जहांतक हो सके ऐसा प्रयत्न कीजियेगा कि इसे यात्रामें किसी प्रकारका कष्ट न हो। इसका ऋण मेरे ऊपर होगा। चलते समय सुयेनच्वांगके पास इन सब पदार्थों-को चार श्रमणेरों सहित भेज दिया और स्वयं अपने मन्त्रियों और जनपदके प्रधान भिक्षुओंके साथ उसे विदा करनेके लिये उसके स्थानपर आया।

सुयेनच्वांगने महाराजकी यह उदारता और सौजन्य देखकर

कहा कि मैं महाराजके इस उपकारकी कहांतक प्रशंसा कर सकता हूं। मेरे पास इतने शब्द नहीं और इसके लिये उपयुक्त शब्द मुझे मिल भी नहीं सकते। आपकी इस सहायतासे मुझे आशा है कि मैं अपने उद्देश्यको पूरा कर सकूंगा। अब कृपाकर मुझे अधिक न ठहराइये और ऐसा प्रबन्ध कीजिये कि मैं कलह यहांसे प्रस्थान करूं। श्रीमान्‌ने मुझ तुच्छ भिक्षु पर जितना अनुग्रह किया है उसकी कृतज्ञताका भार मुझपर सदा रहेगा। मैं भिक्षु इतनी सामग्री लेकर क्या करूंगा? इसपर राजाने कहा कि जब मैं आपको अपना भाई कहा तो आप सब प्रकारसे मेरी संपत्ति और ऐश्वर्य्यके भागी हैं। यह आपका है, इसे स्वीकार कीजिये। इतने धन्यवाद देनेकी कोई आवश्यकता नहीं। आप अपनी तैयारी कीजिये। कल प्रातःकाल ही यहांसे चलना होगा।

दूसरे दिन सुयेनच्वांग प्रातःकाल उठा और अपने मुँह हाथ धोकर थोड़ा सा जलपान किया और चलनेको तैयार हो गया। महाराज और समस्त राजपरिवार तथा अमात्यवर्ग और राज्यके प्रधान कर्मचारी और भिक्षु-मण्डल उसके साथ पहुंचानेके लिये नगरके बाहरतक आये। सब लोग चलते समय सुयेनच्वांगसे मिले और सबकी आंखोंमें आंसू भर आये। कोई तो सिसकियां भरता था, कोई फूट फूटकर रोता था। रातको राजाने महारानी और राजपरिवारको नगर लौट जानेकी आज्ञा दी और आप अपने परिचारकों और प्रधान भिक्षुगण समेत कई मंजिलतक सुयेनच्वांगके साथ

गया। जब अपने जनपदकी सीमापर पहुंचे तो सुयेनच्वांगके बहुत आग्रह करनेपर वह अपने नगरको लौटा। चलते समय वह बालकोंकी भांति चिल्ला चिल्लाकर रोता था और बार बार सुयेनच्वांगसे मिलता था और कहता था कि कृपाकर भूल मत जाइयेगा और लौटते समय अपने दर्शन इस दासको अवश्य दीजियेगा।

मोचगुप्त

फाउचांगके महाराजको विदाकर सुयेनच्वांग अपने साथियोंसहित वूहान और तो-चिन नगरोंसे होता हुआ ओ-कि-नी (यंघी हिसार) के जनपदमें पहुंचा। वहां उसे दक्षिण दिशामें एक पहाड़ी पड़ी जहां अफूका झरना है। वहांपर यह झरना पर्वतके ऊपरसे गिरता है। उसका जल बहुत स्वच्छ और निर्मल है। यहांपर रात बिताकर दिन निकलनेपर वह पश्चिम दिशामें आगे बढ़ा और चन्द्रगिरि पर्वतको पार किया। यह पर्वत बड़ा विशाल है और बहुत दूरतक चला गया है। इसमें चांदीकी खान है और पश्चिमके देशोंमें यहींसे चांदी निकालकर जाती थी। पर्वतके पश्चिम चलकर उसे डाकुओंका एक झुंड मिला। डाकुओंने उसे घेर लिया और लूटनेका विचार करने लगे। सुयेनच्वांगने कहा—तुमको लूटनेसे क्या काम, जो तुमको चाहिये वह खुशीसे ले लो। फिर तो डाकुओंने जो जो मांगा उनको देकर वह आगे बढ़ा

और ओ-कि-नीकी राजधानीके पास पहुंचकर नदीके किनारे पड़ाव किया और वहीं रातको सब रह गये।

प्रातःकाल ओ-कि-नीके राजाको सूचना मिली कि भिक्षु सुयेनच्वांग चीन देशसे काउचांग होता हुआ आ रहा है और भारतवर्ष जायगा। उसने समाचार पाते ही अपने अमात्यों और राज्यके प्रधान कर्मचारियों और भिक्षुओंको बुलाया और सबको साथ लेकर उसके स्वागतके लिये नगरके बाहर निकला और उसे बड़े आदर सत्कारसे ले जाकर अपने राजप्रासादमें ठहराया और नाना भांतिके भक्ष्यभोज्यसे उसकी पूजा की। सुयेनच्वांग यहां एक रात ठहर गया। प्रातःकाल होते ही वह आगे बढ़ा और एक नदी पार करके एक समथल प्रदेशमें पहुंचा। इस मैदानको कई दिनोंमें पार कर 'किउचो' जनपदकी सीमापर पहुंचा। थोड़ी दूर आगे चलनेपर किउचीकी राजधानी मिली। उस समय वहां रथयात्राका महोत्सव था। कई सहस्र भिक्षुओंकी भीड़ लगी थी। नगरके पूर्व द्वारपर सब लोग उत्सवमें रथयात्राके साथ जा रहे थे। बीचमें रथ था जिसके ऊपर भगवानकी सुन्दर मूर्ति स्थापित थी। नाना भाँतिके बाजे बज रहे थे, सब लोग आनन्द मना रहे थे।

राजा सुयेनच्वांगके आगमनका समाचार पाकर अपने मंत्रियों और प्रसिद्ध श्रमण मोक्षगुप्तके साथ उसकी अगवानीको आया और उसे लेकर रथयात्राके उत्सवमें आकर सम्मिलित हुआ। वहां सब भिक्षु उठकर सुयेनच्वांगसे मिले। वहां

सुयेनच्वांगने एक भिक्षु से फूलकी डलिया ली और भगवानकी प्रतिमापर चढ़ाया और पूजा करने बैठ गया। फिर मोक्षगुप्तभी आकर उसके पास बैठा। फिर भिक्षुओंने हाथमें फूल लेकर परिक्रमा की और वहां सबको द्राक्षारस पान करनेको मिला। इस प्रकार सारा दिन सब रथयात्राके साथ मन्दिर मन्दिर फिरते रहे। जहाँ पहुंचते वहाँ उनको द्राक्षारस पान करनेको मिलता था।

सायंकालके समय सब अपने अपने स्थानपर सिधारे और सुयेनच्वांगको राजाने एक उत्तम स्थानपर ठहराया और उसका सब भांतिसे सेवा-सत्कार किया। वहां एक रात रहकर दूसरे दिन वह भोजनान्तर ओ-शेलिनी नामक विहारमें जो नगरके उत्तर-पश्चिम दिशामें नदी-पार था और जहां महा स्थविर मोक्षगुप्त रहता था गया। वहां मोक्षगुप्तने उसका बड़ा आदर किया और पास बैठाकर कहा कि इस देशमें संयुक्ताभिधर्म कोश और विभापाकी तथा अन्य सूत्रोंकी अच्छी शिक्षा दी जाती है। आप यहीं रह जाइये और ठहरकर उनको अध्ययन कीजिये। भारतवर्ष आकर क्या कीजियेगा? वहां जानेमें विविध भांतिके कष्ट उठाने पड़ेंगे। इसपर सुयेनच्वांगने पूछा कि क्या यहां योगशास्त्रकी भी शिक्षा दी जाती है। इसे सुन मोक्षगुप्तने कहा कि 'योगशास्त्र' क्या, वह तो ब्राह्मणोंका शास्त्र है। भला बौद्ध भी कहीं योगशास्त्र पढ़ते हैं! इसपर सुयेनच्वांगने कहा— महाराज, विभापा और कोशशास्त्रोंकी शिक्षा तो हमारे देशमें भी

होती है पर मुझे खेदके साथ कहना पड़ता है कि मुझे तो उनकी युक्तियां दोषयुक्त और हेतु निर्बल दिखाई पड़ते हैं। उनसे सार-वस्तु समाधिका लाभ नहीं हो सकता है। इसीकी खोजमें तो मैं इतनी दूर आया हूं कि महायानके योगशास्त्रका अध्ययन करूंगा। यह योगशास्त्र भगवान मैत्रेयका उपदिष्ट है और आप उसे ब्राह्मणोंका शास्त्र बतलाते हैं। मोक्षगुप्तने कहा कि आप विभाषाशास्त्र और अन्य सूत्रग्रंथोंका अध्ययन कर चुके हैं? आप यह कैसे कहते हैं कि उनमें सार नहीं है। सुयेनच्वांगने कहा—आप तो उसे भलीभांति जानते हैं? मोक्षगुप्तने कहा हां, मैं जानता हूं। फिर पहले तो सुयेनच्वांगने कुछ कोशके संबन्धमें प्रश्न किये पर मोक्षगुप्त कुछ कहकर अंतको बलकर चुप हो गया। फिर सुयेनच्वांगने उससे किसी शास्त्रके वाक्यांशका अर्थ पूछा। इसपर सुयेनच्वांगने कहा कि 'यह वाक्य' तो उसमें कहीं है ही नहीं। इसे सुन महा स्थविर वी युर जो यहांके राजाके चचा थे और वहीं बैठे थे बोल उठे कि आप क्या कह रहे हैं, यह वाक्य शास्त्रका है और उन्होंने यह कहकर पुस्तक खोली और उसमेंसे वह वाक्य निकालकर दिखा दिया। मोक्षगुप्त इसपर बड़ा लज्जित हुआ और कहने लगा कि मैं बूढ़ा हो गया। अब मेरी स्मृति अच्छी नहीं रह गई है। उस समय फिर मोक्षगुप्त सुयेनच्वांगके सामने अपना मुंह नहीं खोलता था और अपने शिष्योंसे कहा करता था कि यह चीनवाला श्रमण साधारण मनुष्य नहीं है। शास्त्रार्थमें उसका सामना

करना हंसीखेल न जानना। भारतमें भी साधारण भिक्षु उसके सामने बात नहीं कर सकते हैं। प्रश्नोंका उत्तर देना तो दूरकी बात है।

सुयेनच्वांगको यहां दो महीनेसे ऊपर आकर ठहर जाना पड़ा। कारण यह था कि लिंग पर्वतके दर्रोंमें बर्फ जमी थी और मार्ग आगे जानेके लिये साफ न था।

येः-हूँ-खाँ

यहांसे सुयेनच्वांग दो महीने ठहरकर जब मार्ग कुछ जानेयोग्य हुआ तो रवाना हुआ। यहांके राजाने उसके जाते समय अनेक ऊंट, घोड़े और दास मार्गमें सहायता करनेके लिये साथ कर दिये और स्वयं भिक्षु मंडल सहित बहुत दूरतक उसे पहुंचानेके लिये आया। राजाके लौट आनेपर सुयेनच्वांग आगे बढ़ा और दो दिन बीतनेपर उसे दो हजार तुर्की डाकू मिले। यह सब घोड़ेपर सवार थे और किसी कारवानको लूटकर आये थे और लूटका माल बांट रहे थे। बाँटनेहीमें बाँट न बैठनेके कारण परस्पर लड़ने लगे और मारकाट हो पड़ी। इसी बीचमें सुयेनच्वांग अपने साथियों समेत आता हुआ देख पड़ा और सबके सब लड़कर तितर बितर हो गये।

पश्चिम दिशामें ६०० ली जाकर और एक छोटीसी मरुभूमिको पारकर पोः-लो-का (बालुका) में जिसे तुर्क लोग, किमे कहते थे पहुंचे। यहाँ एक रात रहकर उत्तर-पश्चिम दिशामें ३००

लो चलकर एक मरुस्थल मिला और मरुस्थल पारकर लिंग पर्वतमालामें पहुंचे। इसे मुसरद बघान कहते हैं। यह पर्वत बड़ा ही दुरूह और विषम है। इसके शिखर आकाशसे बातें करते और सदा हिमाच्छन्न रहते हैं। उनपर सूर्य्यका प्रकाश पड़कर इतनी चमक होती है कि आँखें चौंधिया जाती हैं और लोग अंधे हो जाते हैं। यहांकी वायु भी इतनी ठंढी और प्रखर चलती है कि समूर और पशमीनेसे सारा शरीर ढका रहे तो भी जाड़ेके मारे लोग कांपने लगते हैं। यहां न तो कहीं सूखी भूमि मिलती है और न कहीं ऐसा स्थान है जहां यात्री अपना भोजन रका सकें या बिस्तर बिछाकर लेट सकें। नीचे ऊपर चारों ओर बर्फ ही बर्फ है। उसीपरसे लोग चलते हैं और उसीपर नींद लगनेपर अपने बिछावन डालकर सोते हैं। इस दारुण पहाड़ी मार्ग से होकर सुयेनच्वांग और उसके साथी सात दिनतक बड़ी आपत्तियोंको झेलकर बाहर निकले। शीतके मारे तेरह चौदह मनुष्य मार्ग में ही ठंढे हो गये और बैलों और घोड़ोंका तो कुछ कहना ही नहीं।

पर्वतसे निकलकर उसे सिंगकी झील मिली जिसे तुर्क लोग इसककुल कहते हैं। यह झील घेरेमें चौदह पंद्रह सौ ली थी। झील पूर्व-पश्चिम लंबी थी और उत्तर-दक्षिणकी चौड़ाई बहुत कम थी। इसका पानी गरम था और वायुके वेगसे दस दस बारह बारह हाथ ऊंची लहरें उठती थीं।

इस झीलके किनारे किनारे चलकर उत्तर-पश्चिम दिशामें

५०० लीसे ऊपर जानेपर सूरो नामक नगरमें पहुंचे। यहांपर येः-हूँ-ख़ाँ उस समय शिकार खेलने आया था और अपनी सेना सहित पड़ाव डाले था। जिस समय सुयेनच्वांग सूरो नगरमें ख़ाँके पड़ावमें पहुंचा वह शिकारपर जा रहा था। ख़ाँ हरे रंगका रेशमी पहने हुए था। उसके बाल खुले लटक रहे थे और सिरपर रेशमी सिरबंध बँधा हुआ था। उसके साथ २०० सरदार थे जिनके सिरपर अलकें थीं और कामदार परिधान पहने हुए थे। उसके दायें बायें समूर और पश्मीना पहने हुए सैनिक थे जो धनुष और भाले बांधे हुए घोड़ों और ऊँटोंपर सवार थे।

ख़ाँ सुयेनच्वांगके पहुँचनेके समय शिकारपर निकल चुका था। समाचार पाते ही वह उससे मिला और मिलकर बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने कहा कि मैं शिकारपर जा रहा हूं। कृपा-कर दो तीन दिन आप लोग विश्राम कीजिये। तबतक मैं शिकारसे लौट आऊँगा। उसने अपने अमोचियों (प्रधान कर्मचारियों) को आज्ञा दी कि इनको ले जाकर एक बृहद खेमेमें खाली कराकर ठहराओ और इनके खाने पीनेका समुचित प्रबन्ध कर दो।

तीन दिन बीतनेपर येः-हूँ-ख़ाँ शिकारसे लौटा। वहाँ पहुँचकर सुयेनच्वांग को अपने पास बुलवाया। सुयेनच्वांगके आनेपर वह स्वयं अपने खेमेसे बाहर निकला और कोई ३० पगसे सुयेनच्वांगको स्वागतपूर्वक हाथ पकड़कर अपने खेमेमें

आया। उसका खेमा क्या था छोटा मोटा प्रासाद था। उसकी कनातों और चंदवेपर जरदोजी कामके फूल पत्ते ऐसे बने हुए थे जिनके ऊपर आंख काम नहीं करती थी। खेमेके भीतर दुतर्फा कालीनें बिछी हुई थीं, जिनपर उसके सरदार चमकीले रेशमी वस्त्र पहने बैठे हुए थे। खाँने सुयेनच्वांगको बड़े आदरसे ले जाकर खेमेमें एक उच्च आसनपर बैठाया। तुर्क लोग अग्निपूजक थे इस कारण वे लकड़ीकी चौकीपर नहीं बैठते थे। वह भूमिपर कालीन बिछाकर बैठे हुए थे। पर सुयेनच्वांगके लिये एक लोहेका ऊँचा पात्र मंगवाकर उसपर मोटा गद्दा बिछाकर आसन बनाया गया था।

सुयेनच्वांगके आसनपर बैठ जानेपर खाँने दुभापियेको बुलवाया और उसके द्वारा उससे कुशल-प्रश्न पूछा। इसी बीचमें काउचांगका अमात्य और अन्य राजकर्मचारी वहाँके राजाका पत्र और उपहार लेकर पहुंचे। खाँने बड़े आदरसे उठकर पत्रको अपने हाथसे लिया और उपहारकी एक एक चीजको देखा। फिर सबको बैठाया। तदनन्तर मद्य मंगवाया और सब लोगोंके सामने पानपात्र रखा गया। फिर मद्यपान आरम्भ हुआ। सुराहीपर सुराही लुढ़काई जाती थी। सुयेनच्वांगके लिये द्राक्षारस मंगवाया गया। उसने भी थोड़ासा एक पात्रमें लेकर पिया। थोड़ी देरमें भोजन लाया गया। भाँति भाँतिके मांस और रोटियां कटोरों और थालोंमें भर भरकर सबके आगे रखी गईं। सुयेनच्वांगके लिये चावल, चपातियाँ

दूध, शक्कर, मिश्री आदि मंगाया गया। सब लोगोंने खाना आरम्भ किया। खा चुकनेपर जब सब हाथ मुंह धो चुके तो फिर मद्यपान आरंभ हुआ। इस बीचमें भाँति भाँतिके सुरीले बाजे बजते थे और गानेवाले अपने मनोहर अलाप और तान सुनाते थे।

मद्यपान करके खाँने सुयेनच्वांगसे प्रार्थना की कि कृपाकर आप कुछ बौद्धधर्मके मुख्य सिद्धान्तोंका उपदेश कीजिये। सुयेनच्वांगने अपने उपदेश आरंभ किये और पहले दश शीलोंकी व्याख्या की, फिर अहिंसाके महत्वका वर्णन किया, फिर परमपिता आदि निर्वाणके साधनोंकी व्याख्या करके अपने उपदेश समाप्त किये। खा उपदेशोंको सुनकर इतना प्रसन्न हुआ कि अपनेको संभाल न सका और विवश हो सुयेनच्वांगके सामने हाथ उठाकर साष्टांग गिर पड़ा और आनन्दमें मग्न हो गया। बड़ी रात बीतनेपर सब लोग सभासे उठे और अपने अपने खेमेमें सिधारे।

यहां ठहरे कई दिन बीत गये। जब सुयेनच्वांग खांसे विदा होनेके लिये आज्ञा मांगने गया तो खाँने कहा कि आप हिन्दुस्तानमें जाकर क्या करेंगे। वह देश बड़ा गरम है। वहाँके लोग कालेकलूटे होते हैं और वस्त्रसे अपने शरीरको गुप्त नहीं रखते। उनको देखनेसे घृणा उत्पन्न होती है। सुयेनच्वांगने उत्तर दिया कि कुछ भी हो मेरा विचार है कि वहाँ जाकर तीर्थस्थानोंका दर्शन करूँ और यहां रहकर धर्म और धर्मग्रंथोंकी

खोज करूं। मैं यहां जानेसे रुक नहीं सकता हूं, इस कारण आप जितने ही शीघ्र मेरे जानेका प्रबन्ध कर दें और मुझे विदा करें उतना ही अच्छा होगा।

निदान खांने आज्ञा दी कि पूछो मेरे साथ कोई ऐसा भी पुरुष है जो चीनी भाषा और अन्य देशोंकी भाषाको जानता है। खोजनेपर एक युवक मिला जो कई वर्ष तक चांगानमें रहा था और चीनी भाषा अच्छी तरह समझ सकता था। उसे लाकर खांके सामने पेश किया गया। खां उसे देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ और उसे 'मो-चो-ता-फवान्' की उपधि दे अपने प्रधान लेखकके पदपर नियुक्त किया कि तुम मेरी ओरसे पश्चिम-के भिन्न भिन्न देशोंके नरपतियोंके नाम चिट्ठियां लिख लाओ कि श्रमण सुयेनच्वांग भारतवर्षकी यात्रा करने जा रहा है। यह हमारा परम मित्र है उसकी यह यात्रा केवल सच्चे धर्मकी खोजके निमित्त है। उसमें जहांतक हो सके सहायता देना आप लोगोंका परम कर्तव्य है। मेरा अनुरोध है कि आप लोग उसको जिस जिस प्रकारकी सहायताकी आवश्यकता पड़े प्रदान करनेमें अपनी उदारताका परिचय दें। इसके पुण्यके भागी आप होंगे और मैं आपका परम अनुगृहीत हूंगा।

ये:-हूँ-खांने इस प्रकार मार्गके अनेक जनपदोंके शासकों और राजाओंके नाम पत्र लिखाकर अपने इस नवीन लेखकको आज्ञा दी कि तुम इन पत्रोंको लेकर श्रमणके साथ कपिशाके देशतक जाओ और सब प्रकारसे ऐसा प्रबन्ध करो कि श्रमणको यात्रामें

किसी तरहका कष्ट न पहुंचने पाये। चलते समय खांने सुयेनच्वांगको लाल साटनका सिरोपाउ परिधान भेंट किया और ५० थान रेशमी वस्त्र प्रदान किये। वह उसके साथ स्वयं दस लीतक मार्गमें पहुंचाने आया और चलते समय बड़ी श्रद्धासे प्रणामकर अपने पड़ावको लौट गया।

यात्री सुयेनच्वांग अपने साथियों समेत खांसे विदा होकर ४०० ली चलकर पिंगू प्रदेशमें पहुंचा। इस प्रदेशमें अनेक छोटी छोटी नदियां प्रवाहित थीं। बड़ा ही मनोरम और हरा भरा प्रदेश था। यहांके सारे वृक्षवनस्पति हरे-भरे और फूल और फलोंसे लदे हुए थे। देशकी प्रकृति अत्यन्त सुखप्रद थी और वह स्वर्ग सदृश जान पड़ता था। खां यहां उष्णकालमें आकर रहा करता था।

यथा राजा तथा प्रजा

पिंगूसे १५० ली जाकर यात्री तारस नगरमें पहुंचा। फिर तारससे चलकर कई छोटे २ नगरोंसे होता हुआ नूजीकन्दमें आया। नूजीकंदसे चेशी या ताशकंद पहुंचा। ताशकंदसे वह एक मरुभूमिसे निकलकर समरकंद पहुंचा। समरकंदके लोग बौद्ध नहीं थे और अग्निकी पूजा करते थे। यहां दो विहार प्राचीनकालके थे पर वे जनशून्य पड़े थे और कोई भिक्षु नहीं रहता था। यदि दैवयोगसे कोई बाहरका भिक्षु आकर उनमें ठहरता था तो वहांके अधिवासी हाथमें मशाल लेकर उसके पीछे दौड़ते थे और उसे वहां रहने नहीं देते थे।

यहांके राजाने पहले दिन तो सुयेनच्वांगका स्वागत नहीं किया और मिलनेमें उसका बड़ा अपमान किया पर दूसरे दिन सुयेनच्वांगने राजासे कार्य कारणके ऊपर बातचीत आरम्भ की, कर्मफलका निर्वाचन करते हुए पाप-पुण्यके लक्षणोंका वर्णन किया और बौद्ध-धर्मके तत्वका निरूपण करते हुए उपदेश किया, तो राजाका मन फिर गया और उसने सुयेनच्वांगसे प्रार्थना की कि कृपाकर आप मुझे बौद्धधर्मके दश शीलकी दीक्षा देकर अपना उपासक बना लीजिये। सुयेनच्वांगने राजाको दश शीलव्रत ग्रहण कराकर बौद्धधर्मकी दीक्षा देकर अपना उपासक बना लिया। फिर क्या था, वह सुयेनच्वांगका भक्त हो गया। दूसरे दिन सुयेनच्वांगके दो श्रमणेर विहारमें जहां बहुत दिनोंसे कोई भिक्षु जाने नहीं पाता था भगवानकी पूजा करने गये। अधिवासी जलते हुए लूक लेकर उनके पीछे दौड़े और विहारमें घुसने न दिया। श्रमणेरोंने आकर राजासे निवेदन किया। राजाने तुरन्त आज्ञा दी कि अपराधियोंको बांधकर मेरे सामने हाजिर करो। नगरके कोतवालने उनको पकड़कर राजाके दरबारमें उपस्थित किया और राजाने उनके हाथ काट लेनेकी आज्ञा दी। इस कठिन दण्ड प्रदानसे सारे राज्यमें सनसनी फैल गयी पर सुयेनच्वांगने राजासे कहा कि इनको अङ्गछेदनका दण्ड न दिया जाय और नाना भांतिसे धर्मका उपदेश किया। इसपर राजाने उनके हाथ काटनेके दण्डको क्षमा कर, अपने सामने पिटवाकर नगरसे बाहर निकलवा दिया।

इससे सब छोटे-बड़े सुयेनच्वांगके भक्त हो गये और झुंडके झुंड उसके पास धर्मोपदेशके लिये आने लगे। सुयेनच्वांगने वहां ठहरकर एक बृहत् सभा की और उसमें सबको धर्मोपदेश किया। उस सभामें अनेकोंने परिव्रज्या ग्रहण की और विहारमें रहने लगे। इस प्रकार सुयेनच्वांग वहां दो-चार दिन रहकर बौद्ध धर्मका उपदेश देकर वहांके लोगोंको सन्मार्ग पर ले आया।

त्रिया-चरित्र

समरकंदसे चलकर यात्री दक्षिण पश्चिम दिशामें चलकर केश या 'कसस' आया। इसे अब 'शहरे सब्ज' कहते हैं। यहांसे पुनः दक्षिण-पश्चिम दिशामें चलकर एक पर्वतमालाके भयानक और तङ्ग दर्रेसे होकर 'लौहद्वार' से होकर निकला। यह मार्ग अति दुर्गम और ऊबड़-खाबड़ था। दोनों ओर तुङ्ग शिखर खड़े आकाशसे बातें करते थे। मार्गमें न कहीं जल था और न कहीं हरियाली देख पड़ती थी। राह इतनी तंग कि कहीं कहीं तो दो आदमी एक साथ चलनेमें जा नहीं सकते थे। लौहद्वार-के पास दोनों ओर तुंग पर्वत सीधे खड़े थे, जान पड़ता था कि दो दीवालें हैं। उन्हीं दोनों पर्वतोंको बेधकर लोहेका फाटक लगाया गया है। वह किवाड़ बड़े सुदृढ़ और भारी हैं। उनमें लोहेकी बड़ी बड़ी फुलियाँ जड़ी हुई हैं। यह फाटक तुर्कोंको आगे बढ़नेसे रोकनेके लिये लगाया गया था।

इस लौहद्वारसे निकलकर तुपारसे होता हुआ उसने

आक्सस नदी पार की ओर हो (कुंदुज) के जनपदमें पहुंचा। यहांका शासक येः-दूँ-खाँका ज्येष्ठ पुत्र तातुशोः था। उसका विवाह काउचांगके महाराजकी बहन दोखातूनसे हुआ था। दोखातूनका जब देहान्त हो गया तो तातुशोःने दोखातूनकी छोटी बहनसे विवाह किया। यह राजकुमारी बड़ी ही दुश्चरित्रा थी और अपनी बड़ी बहन दोखातूनके पुत्रके जो युवावस्था प्राप्त था अनुचित प्रेमपाशमें बद्ध हो गई थी। वह अपने पति तातुशोः के प्राणकी गाहक हो गई थी। उसने उसे मारनेके लिये विष देना आरम्भ किया था और उसी विषके प्रभावसे तातुशोः रोगग्रस्त हो रहा था। उसने अपने नीरोग होनेके लिये एक ब्राह्मणको भारतसे बुलाया था और उससे अनुष्ठान करा रहा था। जिस समय सुयेनच्वांग वहां पहुंचा तातुशोः खाटपर पड़ा था, उसका अवतव लग रहा था। सुयेनच्वांग तातुशोः और उसकी पत्नीके नाम पत्र लाया था। उसने पत्र पढ़ाकर सुना और सुयेनच्वांगको अपने पास बुलवा कर मिला। उसने कहा कि आपके दर्शनसे आज मेरी आंखें खुल गई हैं। आप यहां कुछ ठहरिये और विश्राम कीजिये। तबतक यदि मैं उठ खड़ा हुआ तो मैं स्वयं आपको अपने साथ लेकर भारतवर्षको चलूंगा।

निदान सुयेनच्वांगको कुंदुजमें ठहरना पड़ा। पर उस दुष्टा स्त्रीने अपने पतिके प्राण ही ले लिये और विषकी मात्रा अधिक देनी आरम्भ की और दो एक दिनमें तातुशोः इस संसार-से चल बसा। उस समय उस दुष्टाकी गोदमें एक छोटासा

बालक था। तात्शांके मरनेपर उसकी दाहक्रिया की गई और श्रमण सुयेनच्वांगको इस कारण यहां एक माससे ऊपर ठहर जाना पड़ा। तात्के अनन्तर उसका ज्येष्ठ पुत्र जो दो·खातूनसे पैदा था उसके स्थानपर कुंदुजका शासक बना। फिर उसकी विमाताने अपने पतिका घातकर अपने बहिनके पुत्र नवीन शासकसे विवाहकर उसकी रानी बनी।

यहाँ सुयेनच्वांगको धर्मसिंह नामक एक भिक्षु मिला। वह भारतवर्ष हो आया था और त्रिपिटकका अद्वैत विद्वान था। सुयेनच्वांगसे जब उसकी भेंट हुई तो उसने पूछा, आप शास्त्रोंको जानते हैं? धर्मसिंहने कहा, हां मैं जानता हूं और इतना ही नहीं मैं उनको समझा भी सकता हूं। इसपर सुयेनच्वांगने उससे विभाषा और कुछ सूत्रोंके अर्थ पूछे। यह प्रश्न बड़े कठिन थे और धर्मसिंहने स्पष्ट शब्दोंमें अपनी अज्ञता स्वीकार कर ली। उसके शिष्यगण इसपर कुछ लज्जित भी हुए। पर धर्मसिंहने सची बात कही थी। वह सुयेनच्वांगका मित्र हो गया और सदा उसकी प्रशंसा करता था। अपने शिष्योंसे कहा करता था कि यह चीनका श्रमण बड़ा बुद्धिमान है, मैं उसका सामना नहीं कर सकता।

जब तातुशेःका मृतककर्म हो गया और उसका ज्येष्ठ पुत्र तेलेशेः उसके स्थानपर बैठ गया तो सुयेनच्वांग उससे विदा होनेकी आज्ञा मांगने गया। उसने कहा कि मेरे राज्यमें 'वाह्लीक' (बाक्र) भी है किन्तु उसके उत्तरमें आक्षस नदी पड़ती है।

उसकी राजधानी छोटा राजगृह कहलाती है। वहां बौद्धोंके अनेक विहार और स्तूप हैं। स्थान दर्शनीय है। मैं तो कहूंगा कि जब आप यहां आ ही गये हैं तो वहां भी होकर दर्शन करते जाइये। इसमें आपका अधिक समय नहीं लगेगा। तबतक आपके दक्षिण जानेके लिये सवारी और गाड़ी आदिका प्रबंध हो जायगा।

उस समय वहां वाह्लीकके बीसों भिक्षु तातूशेःके मरनेका समाचार पा तेलेशेःके पास अपनी सहानुभूति प्रगट करने आये थे और समरकंदमें ठहरे थे। जब सुयेनच्वांगकी उनसे भेंट हुई तो उन लोगोंने कहा कि यदि आपको वाह्लीक चलना है तो हमलोगोंके साथ ही चले चलिये। इस समयमें मार्ग साफ है, निकल चलिये। नहीं तो जब बर्फ पड़ने लगेगी तो आपका एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जाना कठिन हो जायगा।

क्षुद्र राजगृह

निदान सुयेनच्वांग शेःसे विदा हो उन्हीं भिक्षुओंके साथ चल पड़ा और कई दिनोंमें वाह्लीक पहुंचा। यहां आकर उसने देखा तो राजगृह नगर खंडहर पड़ा था, पर स्थान बड़ा ही रमणीक था। नगरके बाहर दक्षिण-पश्चिम दिशामें नव संघाराम नामक एक बृहत् संघाराम था। इस संघाराममें भगवान बुद्धदेवका जलपात्र दांता और पिच्छिका थी। जलपात्रमें दो पेक जल आता था। दांता एक इंच

लम्बा ८॥ इंच चौड़ा था। कुछ पीलापन लिये सफेद रङ्गका था। पिच्छिका या बुहारी कुशकी तीन फुट लम्बी, और गोलाईमें ७ इंच थी। उसकी मूठपर बहुत सुन्दर काम बना था और विविध भांतिके रत्न जड़े हुए थे। यह तीनों पदार्थ सदा मंदिरमें बन्द रहते थे और उत्सवके दिन बाहर निकाले जाते थे और यती गृही आकर उनकी पूजा करते थे। भक्तोंको उनमें कभी कभी प्रकाश भी निकलता देख पड़ता था। संघारामके उत्तर एक स्तूप था और दक्षिण-पश्चिम दिशामें एक बड़ा पुराना विहार था। नगरके उत्तर-पश्चिम ५० लीपर तीर्थ और उससे उत्तर ५० लीपर पोली नामका ग्राम था। वहाँ ग्यारह-बारह हाथ ऊंचे दो स्तूप थे। यह दोनों मल्लीक तथा तपुष नामके दो वैश्योंके बनवाये थे। यह दोनों वैश्य जब भगवान् गौतम बुद्धको बोधिज्ञान प्राप्त हुआ था तो गयाके पास मगधमें चावल खरीदने गये थे और यहाँ भगवानसे धर्मोपदेश श्रवणकर दश शीलव्रत जिसे शिक्षापद भी कहते हैं ग्रहण किया था। उन लोगोंने भगवानको चावलके आटेके लड्डू या टूढियां दी थीं जिन्हें भगवानने प्रसन्न होकर ग्रहण किया था। उन वैश्योंको भगवानने विदा होते समय अपने नख और बाल दिये थे और उनको यहां लाकर दोनों वैश्योंने अपने अपने गांवोंमें स्तूप बनाकर स्थापित किया था।

यहां नव संघाराममें सुयेनच्वांगको 'टक्क' देशका परम विद्वान भिक्षु मिला। उसका नाम था प्रज्ञाकर। यह त्रिपिटकका बड़ा पण्डित था। यह टक्कसे राजगृहके दर्शन करनेके निमित्त

वाह्लीकमें आया था। वह नव अंगों और चार अगामोंका तत्वज्ञ था। सारे भारतवर्षमें उसकी विद्वत्ताकी ख्याति थी। हीनयानके अभिधर्म, कात्यायनके कोश, षट्पदाभिधर्म आदि ग्रन्थ उसके भलीभांति देखे थे। सुयेनच्वाङ्ग उससे मिलकर बड़ा प्रसन्न हुआ। बातचीतमें उसने अपनी शंकाओंको जो उसे कोश और विभाषापर थे उसके सामने उपस्थित किया। प्रज्ञाकरने उनका एक एक करके समाधान किया और सुयेनच्वांगको सन्तोष हो गया। फिर वह वाह्लीकमें एक मास प्रज्ञाकरके साथ रह गया और विभाषाका अध्ययन करता रहा।

यहांपर उसकी विद्वत्ता और सुशीलताकी ख्याति चारों ओर फैली। जुमध और जुजगानाके राजाओंको जब यह समाचार मिला तो उन लोगोंने उसे बुलानेके लिये अपने दूत भेजे। पहले तो उसने इनकार कर दिया और दूतोंको लौटा दिया पर उनके दूत बार बार आये तो वह वहां जानेके लिये बाध्य हुआ। वह वाह्लीकसे अकेला जुमध और जुजगाना गया और वहांके राजाओंसे मिला। दोनों राज्योंमें उसका समुचित आदर और सत्कार हुआ। चलते समय दोनों राजाओंने बहुत कुछ धन रत्न विदाईमें देना चाहा पर उसने उनको लेनेसे इनकार किया और वाह्लीक लौट आया।

बड़ी बड़ी मूर्तियां और दांत

वाह्लीकसे वह प्रज्ञाकरके साथ साथ काचिः (गज़)

आया। काचिःसे दक्षिण-पूर्व दिशामें एक विशाल हिम-शैल पड़ता था। उसने हिम-शैलको कई दिनोंमें बड़ी कठिनाईसे पार किया। इस पर्वतमें उसे नाना भांतिके कष्ट उठाने पड़े। यह पर्वत बड़ा विशाल है। इसे आजकल हिंदुकुश या हिंदुकुश कहते हैं। इसकी घाटियां इतनी गहरी हैं और इसमें इतने खड्ड और गुहायें हैं कि यात्रियोंको पग पगमें गिरनेकी आशङ्का रहती है। निरन्तर बर्फ पड़ा करती है और प्रचण्ड वायु बड़े वेगसे चलती है। यहां बारहमास बर्फ जमी रहती है और दर्रे भर जाते हैं, लोगोंका आना-जाना बन्द हो जाता है। केवल ग्रीष्मऋतुमें कुछ बर्फ पिघल जाती है तब कहीं लोग कठिनाईसे इसे पार करनेका दुःसाहस करते हैं। दर्रे भी सीधे नहीं, इतने चक्करके हैं कि कहीं पता नहीं चलता कि किधरको जा रहे हैं। राहमें डाकुओं और बदमाशोंका अलग भय रहता है जो बड़े बड़े कारवानोंको क्षणभरमें लूट-पाटकर माल-असबाब ले नौ दो ग्यारह हो जाते हैं। इन सब कठिनाइयोंको झेलते हुए सुयेनच्वांग और उसके साथियोंने पखवारोंमें उस पर्वतको पार किया। फिर तुषार देशकी सीमासे निकलकर फान-येन-न (वामियान) में पहुंचे।

वामियानके राजाको जब उसके आनेका समाचार मिला तो उसने नगरसे बाहर निकलकर उसका स्वागत किया और अपने प्रासादमें उसे भिक्षा ग्रहण करनेके लिये आमन्त्रित किया। दो तीन दिन विश्रामकर वह उस जनपदके प्रधान प्रधान स्थानों

को देखनेके लिये निकला। वहां उसे नगरके उत्तर-पूर्व दिशामें पर्वतकी ढालपर एक पत्थरकी खड़ी मूर्ति मिली जो १५० फुट ऊंची थी। उसकी पूर्व दिशामें एक संघाराम था जिसके पूर्वमें बुद्धदेवकी एक मूर्ति लाल पत्थरकी बनी हुई १०० फुट ऊंची थी। उसके अतिरिक्त स्वयं संघाराममें भगवान बुद्धदेवको निर्वाण मुद्राकी एक लेटी हुई मूर्ति थी जो १००० फुट लंबी थी। यह तीनों मूर्तियां बहुत सुन्दर और भावपूर्ण बनी हुई थीं।

इन मूर्तियोंके अतिरिक्त नगरसे दक्षिण-पूर्व दिशामें २०० लीपर पर्वतके उस पार एक छोटी सी.कुन थी। उस कुनमें उसे तीन बड़े बड़े दांत देखनेको मिले। उनमें एक तो भगवान बुद्धदेवका, दूसरा एक साधारण बुद्धका था जो इस कल्पके आरम्भमें हुआ था और तीसरा एक स्वर्ण चक्रवर्ती सम्राट्का दांत था। इनमें दोनों बुद्धोंके दांत तो पांच इञ्च लंबे और कुछ कम चार इञ्च चौड़े थे और चक्रवर्तीका दांत तीन इञ्च लंबा और दो इञ्च चौड़ा था। इन दांतोंके अतिरिक्त यहां उसको शणकवास नामक अर्हतका एक लौहपात्र और संगाती देखनेमें आयी। लौहपात्रमें आठ नौ पेक (पाइंट) पानी आ सकता था और संगाती लाल चमकीले रंगकी थी। कथा है कि शणकवास भिक्षु इस संगातीको पहने हुए उत्पन्न हुआ था और आजन्म उसे धारण किये रहा।

यहांपर पंद्रह दिन बिताकर वह आगे बढ़ा। दूसरे दिन

मार्गमें इतना हिमपात हुआ और कुहरा बरसा कि हाथ पसारे नहीं सूझता था। सब लोग मार्ग भूलकर दूसरी ओर चले गये और जाकर बालूकी टीबरीसे टकराये। वहां उनको दैवयोगसे कुछ शिकारी मिल गये और उन लोगोंसे मार्ग पूछा। शिकारी उनको कुछ दूर ले जाकर ठीक मार्ग दिखला आये। उस मार्गसे चलकर आगे काला पहाड़ मिला। काले पहाड़को पारकर सब लोग कपिशा जनपदमें पहुंच गये।

चीनके राजकुमारोंका शरक संघाराम

कपिशामें उस समय क्षत्रिय राजा था। वह बड़ा ही चतुर और पराक्रमी था। उसने अपने कौशलसे दस राज्योंको विजय कर अपने अधीनस्थ कर लिया था।

जब वहांके राजाको समाचार मिला कि सुयेनच्वांग चीन देशसे अपने साथियों सहित आ रहा है तो वह नगरके सारे भिक्षुओंको साथ लेकर नगरके बाहर अगवानीको गया और उसका स्वागत करके नगरमें ले आया। वहांपर अनेक संघाराम और विहार थे। सब संघारामके भिक्षु यही चाहते थे कि सुयेनच्वांग हमारे विहारमें रहे। इसलिये सब परस्पर वाद-विवाद करने लगे। वह बड़े चक्करमें था कि कहां ठहरूं। इसी बीचमें (श-लो-क) शरक नामक विहारके लोग सुयेनच्वांगके पास पहुंचे और उससे कहने लगे कि आप चीनसे आये हैं और यह विहार हान देशके सम्राट्के उन राजकुमारोंका बनवाया

हुआ है जो महाराज कनिष्कके दरबारमें वहांसे प्रतिनिधि होकर आये थे और यहां रहते थे। अब आप उसी देशसे आते हैं तो आपको यह उचित है कि आप हमारे ही संघाराममें उतरें। निदान सुयेनच्वांगको उनकी बात माननी पड़ी।

शरक संघाराममें वहांके भिक्षुओंसे यह सुननेमें आया कि राजकुमारोंने इस संघारामकी मरम्मतके लिये भगवानके मंदिरके पूर्व द्वारकी दक्षिण दिशामें बहुतसा धन गाड़कर उसके ऊपर वैश्रवणकी प्रतिमा स्थापित कर दी है। उसे खोदनेके लिये कई बार प्रयत्न किया गया पर कोई खोद न सका। एक बारकी बात है कि एक दुष्ट राजाने यह दुःसाहस किया कि लाओ हम भिक्षुओंकी इस निधिको खुदवाकर उठवा ले जायं। वह इस विचारसे बहुतसे खोदनेवालोंको लेकर आया और प्रतिमाके पैरके नीचे खुदवाने लगा। फावड़ा उठाते ही भूकंप आया और वैश्रवणकी प्रतिमाके सिरके ऊपरका तोता अपने पर फड़फड़ाने और ज़ोर २ चीखने लगा। यह देखकर राजा और उसके सैनिक सब डरके मारे गिर पड़े और अपने घरको भाग गये। दूसरी बार यहांके श्रमणोंने संघारामके स्तूपकी मरम्मतके लिये जिसके बाहरकी दीवार गिर गयी है उसे खोदनेकी चेष्टा की। उस बार भी भूकंप आया और बड़ा कोलाहल हुआ, जिससे किसीको फिर उसके पास जानेका साहस नहीं होता।

भिक्षुओंने सुयेनच्वांगसे प्रार्थना की कि संघारामके अनेक स्थल छिन्न-भिन्न हो गये हैं और अब यह स्तूप गिर पड़नेको

है यदि आप कृपाकर उस निधिको खुदवाकर उसमेंसे इतना धन निकालकर दे दें कि जिससे संघारामका जीर्णोद्धार हो जाय तो बहुत अच्छी बात होगी। आप उसी देशसे आते हैं, संभव है कि आपके खुदवानेसे कुछ न हो।

सुयेनच्वांगने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और भिक्षुओंको साथ लिये उस स्थानपर गया जहां वैश्रवणकी मूर्ति स्थापित थी। वहां पहुंच उसने धूप जलाया और वैश्रवणसे प्रार्थना की कि यहांपर राजकुमारोंने निधिको इसी विचारसे रखा है कि वह धर्मके काममें लगाया जावे। अब इसे खोदने और काममें लानेका समय आ गया। आप हमारे हृदयके भावको जानते हैं। आप कृपाकर अल्प कालके लिये यहांसे अपने प्रभावको उठा लें तो हम इसे निकालें। इतना कहकर उसने वहीं यह संकल्प किया कि मैं सुयेनच्वांग स्वयं अपने सामने इसे निकलवाऊंगा और सहेजूंगा और कर्मदानको मरम्मतके आवश्यकतानुसार प्रदान करूंगा और व्यर्थ अपव्यय न होने दूंगा। इसके आप साक्षी रहें। यह संकल्पकर उसने खोदने-वालोंसे कहा कि भूमिपर फावड़ा चलाओ। खोदनेवालोंने खोदना आरम्भ किया और किसीका बाल भी बांका न हुआ। सात-आठ फुट भूमि खोदनेपर तांबेका एक भांडा मिला। उसमें कई सौ सोनेके सिक्के और कई सहस्र मोती मिले। सब लोग बड़े प्रसन्न हुए और सुयेनच्वांगके पैरों पड़े।

सुयेनच्वांगने वहां उसी संघाराममें वर्षावास किया। संघा-

राम और उसके स्तूपकी मरम्मतका प्रबंध अपने सामने कर लिया। वहांका राजा महायानका अनुयायी था और धर्मचर्चा (परिषद्) और शास्त्रार्थ करानेमें उसको बड़ी ही रुचि थी। उसने सुयेन-च्वांगसे प्रार्थना की कि आप दैवयोगसे यहां आ गये हैं तो आज्ञा दें कि महायानके किसी संघाराममें धर्म-चर्चा (परिषद्) का प्रबंध किया जाय। सुयेनच्वांगने अपनी सम्मति दे दी। राजाने परिषद्का प्रबंध किया और नगरके प्रधान २ भिक्षुओंको आमंत्रित किया। पांच दिनतक शास्त्रार्थ हुआ, सुयेनच्वांग तो सभी निकायोंके सिद्धान्तोंसे परिचित था उससे जिस जिसने जिस २ प्रकार जिस जिस यान और निकाय संबंधी प्रश्न किये उसने सबको यथायोग्य संतोषजनक उत्तर दिये। उसकी विद्वत्ता और बुद्धि देखकर सब चकित हो गये और सबने मुंह-पर उसकी प्रशंसा की। राजा सुयेनच्वांगसे बहुत प्रसन्न हुआ और पांच थान रेशमी कामदार तथा अन्य बहुतसे पदार्थ उसे भेंट किये।

वर्षावास समाप्तकर वह पूर्व दिशामें अपने साथियों समेत कपिशासे विदा हुआ और काला पर्वत लांघकर कई दिनोंमें लमघान पहुंचा। यहां तीन दिन विश्रामकर दक्षिण दिशामें एक छोटीसी पहाड़ीपर पहुंचा। इस पहाड़ीपर उसे एक छोटा सा स्तूप मिला। यहांके लोगोंसे उसे यह सुननेमें आया कि भगवान बुद्धदेव जब दक्षिणसे इधर आते थे तो इस स्थानपर ठहरते थे। वे यहांसे आगे भूमिपर पग नहीं बढ़ाते थे। कारण

यह है कि इस स्थानसे उत्तरके सब देश म्लेच्छ देश हैं। भगवान को उन देशोंमें जाना होता था तो आकाशमार्गसे जाते थे और उपदेशकर वापस आ जाते थे।

उष्णीषादि धातुओंका दर्शन

पहाड़ीको पारकर दक्षिण दिशामें नगरहारके जनपदमें आया नगरहारकी राजधानीसे दक्षिण-पूर्व दिशामें अशोकका एक बृहत्स्तूप उस स्थानपर था जहाँ बोधिसत्वने द्वितीय असंख्येय कल्पमें दीपंकर बुद्धसे यह वरदान प्राप्त किया था कि तुम भावी-कल्पमें बुद्धत्वको प्राप्त होगे। यहां पहुँचकर सुयेनच्वांगने दर्शन और पूजा की। यहां एक वृद्ध श्रमणसे यह सुनकर कि यहां असंख्येय कल्पमें बोधिसत्वने दीपंकर बुद्धके मार्गमें अपने मृगचर्म और जटा बिछायी थी, यहांपर पुष्प चढ़ाये थे। उसने यह प्रश्न किया कि बोधिसत्वने तो अपनी जटा द्वितीय असंख्येय कल्पमें बिछायी थी तबसे आजतक न जाने कितने कल्प बीत चुके। कल्पांतमें संसारका नाश होगया। पुनः इसकी उत्पत्ति हुई। जब सुमेरुतक कल्पांत भस्मीभूत हो जाता है तो फिर यह स्थान कैसे वैसा ही बना रह गया? यह सुन उस वृद्ध भिक्षुने उत्तर दिया कि इसमें संदेह नहीं कि कल्पांतमें इस स्थानका भी नाश हो जाता है पर कल्पारंभमें सृष्टिके समय यह स्थान पुनः ज्योंका त्यों बन जाता है। जिस प्रकार मेरु पर्वत नाश हो जाता है और पुनः सृष्टिके समय उसकी रचना

हो जाती है। फिर इसमें बात क्या है कि यह स्थान पुनः ज्योंका त्यों न हो जाय। इसमें संदेह करनेका कोई हेतु नहीं है।

इस स्थानसे दक्षिण-पूर्व-दिशामें एक टीवरीपार हिड्डा नामक स्थान पड़ता था। वहां एक दोमंजिले विहारमें तथागतका उष्णीष धातु था। वह एक फुट दो इंच गोलाईमें था और उसका रंग पीलापन लिये सफेद था। बाणके गड्ढे उसपर स्पष्ट देख पड़ते थे। वह एक रत्नजटित सम्पुटमें रखा रहता था और पूजाके समय निकाला जाता था। उसपर छाप लेकर लोग अपने शुभाशुभकी परीक्षा करते थे। रेशमी कपड़ेके टुकड़ेपर चंदन लगाया जाता था और फिर उसे उष्णीष धातुपर दबाते थे। इस प्रकार करनेसे उसपर जैसा छाप बन जाता था उसीको देखकर वहांके ब्राह्मण-पुजारी शुभाशुभ फल बतला देते थे। सुयेन-च्वांग और दो श्रमणेरोंने इस प्रकार छाप लिये थे। सुयेनच्वांग-के छाप लेनेपर बोधि वृक्षका चित्र निकला था और श्रमणेरों-के छाप लेनेपर एकमें तो बुद्धकी मूर्ति और दूसरेमें कमलकी आकृति बन गयी थी। ब्राह्मणने सुयेनच्वांगके छापको देखकर कहा था कि जैसा आपका छाप आया है ऐसा छाप बहुत कम लोगोंका आता है। इसका फल यह है कि आपको बोधिज्ञान-लाभ होगा।

यहांपर भगवान बुद्धदेवका चक्षुगोलक संगाती और दंड भी है। चक्षुगोलक आमके फलके बराबर इतना स्वच्छ और चमकीला था कि सम्पुटके बाहरतक उसकी झलक पड़ती थी।

संगाती चमकीले कपासके सूतका और अति सूक्ष्म था। दंड चंदनका था जिसकी मुठिया लोहेकी थी। यह कुधड़ीके आकारका था।

हिड्डामें पहुंचकर सुयेनच्वांगको सुन पड़ा कि दीपंकर बुद्धके स्थानसे दक्षिण पश्चिम दिशामें नाग-राजा गोपालकी गुहा है। वहां तथागतकी छाया दिखायी पड़ती है। सुयेनच्वांगने वहां जाकर दर्शन करनेकी इच्छा की पर लोगोंने कहा कि मार्ग जनशून्य और भयावह है। डाके प्रायः पड़ा करते हैं। दो तीन वर्षसे वहां जो गया है कोई कुशलसे नहीं लौटा। कपिशाके राजदूतने जो सुयेनच्वांगके साथ आया था, सुयेनच्वांगको बहुत रोका कि आप वहां मत जायँ, वहां जानेमें आपको नाना भांतिकी आपत्तियां उठानी पड़ेंगी। पर सुयेनच्वांगने नहीं माना और कहा कि सहस्रों कल्पके पुण्य प्रभावसे भी मनुष्यको भगवान्‌की छायाका दर्शन बड़ी कठिनाईसे होता है फिर इतनी दूर आकर थोड़ेसे कष्टके भयसे हम उसका दर्शन न करें यह कितने दुःखकी बात है। आप चलिये, मैं भी आकर मार्गमें आपसे मिल जाऊंगा।

सुयेनच्वांग यह कहकर दीपंकर बुद्धके स्थानकी ओर चला गया। वहां पहुंचकर एक संघाराममें ठहरा और साथीकी खोजमें लगा। वहीं खोजपर एक बालक मिला। उसने कहा कि संघारामकी जहां सीर होती है वह उसके पास ही है। आप मेरे साथ वहांतक चलिये। वहां पहुंचनेपर साथी मिल

जायगा। सुयेनच्वांग उस लड़केके साथ वहां गया और रातको वहीं रह गया। सवेरे उसे एक बूढ़ा ब्राह्मण मिला। उसने कहा, चलिये मैं आपको गोपालगुहाका दर्शन करा लाऊँगा। बूढ़े ब्राह्मणके साथ सुयेनच्वांग गोपालगुहाको चला। कुछ दूर जानेपर पांच डाकू हाथमें तलवार लेकर उसके आगे आये और मार्ग रोक लिया। सुयेनच्वांगने अपने भगवे वस्त्रको दिखलाया। डाकुओंने पूछा कि आप कहां जायंगे। उसने कहा, गोपालगुहामें छायाके दर्शनके लिये जा रहा हूं। डाकुओंने कहा कि क्या आप नहीं जानते कि मार्गमें बटमार लगते हैं? सुयेनच्वांगने कहा कि लगते होंगे। वह तो मनुष्य हैं यदि मार्गमें सिंह-व्याघ्र भी होते तो भी मैं दर्शन करने जाता। मनुष्योंसे मुझे क्या डर? वे तो अपने ही भाई-बन्धु हैं। यह सुन डाकुओंने राह छोड़ दी और वह गोपालगुहा चला गया।

यह गुहा दो पर्वतके भीतर है। पर्वत यहां दीवालकी भांति सीधे खड़े हैं। पश्चिमके पर्वतमें ऊपरसे पानीकी तीक्ष्ण धारा गिरती है और पानी भूमिपर गिरकर पुरसों उछलता है। पूर्वके पर्वतमें पश्चिमाभिमुख गुहा है। गुहाका द्वार अत्यंत संकुचित है और बड़ा ही अन्धेरा है। उसमें बहुत बचा बचाकर जाना पड़ता है। कारण यह कि गुहाके आगे जलप्रपात था, जिसका पानी अनेक मार्गोंसे इधर-उधर बहकर जाता था। मार्ग बड़ा ही विषम था। बड़ी कठिनाईसे वह गोपालगुहातक पहुंचा। वहां पहुंचकर वह गुहामें घुसा और पूर्वकी

दीवालतक जाकर वहांसे पचास पग नापकर पीछे हटा और वहांसे पूर्वाभिमुख खड़ा होकर देखने लगा। पहले तो उसे कुछ भी न दिखाई पड़ा तो वह अपने मनमें बड़ा ही दुखी हुआ और खड़े हो सूत्रोंका पाठ करने लगा और गाथा पढ़ पढ़कर भूमिमें प्रणिपात करने लगा। एक सौ बार प्रणिपात करनेपर उसे एक गोलाकार प्रकाश-विम्ब दिखायी पड़ा और क्षणमात्रमें विलुप्त हो गया। फिर वह दिखायी पड़ा और लोप हो गया। सुयेनच्वांगने अपने मनमें संकल्प किया कि बिना लोकनाथका दर्शन किये मैं इस स्थानसे नहीं टलूंगा। उसने वहां दो सौ प्रणिपात किये फिर तो सारी गुहामें उजाला हो गया और तथागतकी शुभ छाया दीवालपर दिखायी पड़ी। वहांका अन्धकार ऐसा फट गया जैसे बादलकी तह फटे और भगवानकी छाया सोनेके पर्वतकी भांति दिखायी पड़ने लगी। मुखकी आभा स्पष्ट दिखायी पड़ती थी। जान पड़ता था कि कषाय वस्त्र धारण किये भगवान साक्षात् कमलपर आसीन हैं। छायाके दायें-बायें बोधिसत्व और भिक्षुसंघ दिखाई पड़ते थे। सुयेनच्वांगने दर्शन करके बाहर खड़े हुए अपने और छः साथियोंको बुलाया और कहा कि धूप और आग ले आओ। पर ज्योंही वे आग लेकर आये छाया लुप्त हो गयी। सुयेनच्वांगने आगको बुझवा दिया। फिर बड़ी प्रार्थना करनेपर वह छाया फिर दिखायी पड़ी। छः मनुष्योंमें जिनको उसने बाहरसे बुलाया था पांच मनुष्योंको तो छाया दिखायी पड़ी थी पर एकको नहीं देख

पड़ी। छाया थोड़ी देरतक दिखायी पड़ती रही और सुयेन-च्वांगने स्तुति-प्रार्थना की, फूल चढ़ाये और धूप दिया, फिर छाया लुप्त हो गयी।

वहांसे चलकर सुयेनच्वांग अपने साथियोंसे आकर मार्गमें मिल गया और पर्वत पारकर दक्षिण-पूर्व दिशामें चलकर कई दिनोंमें गांधार देशमें पहुंचा।

कनिष्कका महास्तूप

गान्धारकी राजधानी उस समय पुरुषपुर थी जिसे आजकल पेशावर कहते हैं। नगरके उत्तर-पूर्व दिशामें एक पुराना स्तूप था जिसमें भगवान बुद्धदेवका पात्र था। पर वह पात्र उस समय उसमें नहीं था और किसी अन्य देशमें चला गया था। नगरके दक्षिण-पूर्वमें आठ सौ लीपर एक बड़ा पुराना पीपलका वृक्ष १००.फुटसे अधिक ऊंचा था। उसी वृक्षके पास कनिष्क-का महास्तूप था। यह स्तूप ४०० फुट ऊंचा और इतना सुन्दर बना था कि इससे बढ़कर भारतवर्षमें दूसरा स्तूप था ही नहीं। इसके पास भगवान बुद्धदेवकी अनेक मूर्तियां थीं।

इसके उत्तर-पूर्वमें १०० लीपर एक नदी पार करनेपर पुष्कलावती नगरी पड़ती थी। यहां अनेक स्तूप और संघाराम थे और यहां बोधिसत्वने अनेक जन्म ग्रहणकर अपने शरीर-तकका दान कर दिया था।

पुष्कलावतीमें नाना तीर्थ-स्थानोंके दर्शन और पूजा करता

हुआ सुयेनच्वांग उटखंड गया और उटखंडसे पर्वत और घाटियोंको पार करता उद्यान जनपद्में पहुंचा।

१०० फुटकी काठकी प्रतिमा

इस जनपदके बीचमें सुवास्तु नदी बही थी। नदीके दोनों किनारे सैकड़ों संघाराम थे पर सबके सब खंडहर और निर्जन थे। मङ्गली नामक राजा नगरमें रहता था। मङ्गली नगरके पूर्व चार पांच लीपर वह स्थान था जहां बोधिसत्वने क्षांति ऋषिका जन्म ग्रहण किया था। उससे उत्तर-पूर्व दिशामें २५० लीपर अपलाल नामका ह्रद था जिससे सुवास्तु नदी निकलती थी। अपलालके ह्रदके दक्षिण-पश्चिम ३० लीपर एक शिलापर भगवानके पद्का चिह्न था और नदीके उतारपर ३० ली चलनेपर एक शिला पड़ती थी जिसपर तथागतने अपने कषाय वस्त्र धोकर फैलाये थे। उसपर कषायके तानेबानेके सूतके चिह्न दिखायी पड़ते थे। नगरके दक्षिण ४०० लीपर हिलो नामक पर्वत था। वहां बोधिसत्वने यक्षसे आधी गाथा सुनकर उसे अपना शरीर प्रदान कर दिया था। पश्चिम दिशामें नदीपर रोहतकका स्तूप था। यहीं बोधिसत्वने मैत्रबलराजका जन्म ग्रहणकर पांच यक्षोंको अपने शरीरका मांस काट काटकर प्रदान किया था। उत्तर-पूर्व दिशामें ३० लीपर अद्भुत स्तूप था। कहते हैं कि यहां तथागतने देवताओं और मनुष्योंको धर्मका उपदेश किया था और उनके चले जानेपर यह आपसे आप भूमिको फोड़कर निकल आया था।

मङ्गली नगरसे उत्तर-पश्चिम दिशामें चलकर एक पर्वत लांघनेपर सुयेनच्वांगको उस पर्वतके मार्गमें अनेक घाटियों और खड्डोंको पार करना पड़ा। कितने स्थलोंमें तो उसे लोहेकी जञ्जीरोंके ऊपर बने हुए पुलपरसे उतरना पड़ा और बड़ी कठिनाईसे वह दरीलमें जो उद्यानकी प्राचीन राजधानी थी गया। वहाँ उसने मैत्रेय बोधिसत्वकी मूर्तिका दर्शन किया। यह मूर्ति काठकी थी और १०० फुट ऊँची थी। कहते हैं कि इस मध्यांतिक नामक अर्हतने अपने योग-बलसे एक बढ़ईको तुषित नामक स्वर्गमें भेजकर मैत्रेयके रूपके ही अनुरूप बनवाया था।

दरीलसे सुयेनच्वांग उदखंड लौट आया और वहांसे चलकर सिंधुनदको पारकर तक्षशिलामें पहुंचा। तक्षशिलाके पास ही उत्तर दिशामें वह स्थान था जहां बोधिसत्वने चन्द्रप्रभाका शरीर धारणकर अपना सिर काटकर प्रदान कर दिया था जिसके कारण उस देशका नाम तक्षशिरा पड़ा था। फिर कहते कहते तक्षशिरासे तक्षशिला हो गया। तक्षशिलासे वह सिंहपुरमें आया। सिंहपुरसे उसे पता चला कि तक्षशिलाकी उत्तर दिशामें सिन्धुपार एक स्थान है जहां बोधिसत्वने अपना शरीर भूखी बाघिनके बच्चोंको खिला दिया था। वह वहांसे तक्षशिलाकी ओर लौटा और तक्षशिलाकी उत्तरी सीमासे होकर सिन्धुनद पार किया और दक्षिण-पूर्व दिशामें २०० ली जाकर पर्वतके एक बड़े दर्रेसे निकला और उस स्थानपर पहुंचा। वहांकी मिट्टी लाल रङ्गकी और वृक्ष और वनस्पतिकी पत्तियांतक

लाल थीं। उस स्थानसे पर्वत पारकर उरष्ण जनपदमें गया। वहां दक्षिण-पूर्व दिशामें बीहड़ पहाड़ी दर्रोंसे होता हुआ एक लोहेकी जञ्जीरके पुलको उतरकर १००० ली से अधिक जानेपर कश्मीरके जनपदमें पहुंचा।

कश्मीरमें विद्याध्ययन

सुयेनच्वांगके कश्मीर जनपदमें पहुँचनेका समाचार जब वहांके राजाको मिला तो उसने अपनी माता और छोटे भाईको रथ लेकर उसकी अगवानीके लिये भेजा। वे उसे जनपदके पश्चिम द्वारसे जो एक विशाल पहाड़ी दर्रा था आकर ले गये और मार्गमें प्रधान संघारामों और विहारोंके दर्शन कराते राजधानीमें ले गये। वहांके एक भिक्षुने, उसके आनेके पहले ही एक रातको स्वप्न देखा था कि कोई देवता उससे यह कह रहा है कि महाचीन देशसे एक भिक्षु आ रहा है। वह यहां धर्मग्रन्थोंका अध्ययन करना और तीर्थोंके दर्शन करना चाहता है। भिक्षुने कहा कि हमने तो अबतक उसका नाम नहीं सुना है। इसपर देवताने कहा कि उस श्रमणके साथ अनेक देवता हैं। वह यहां आना ही चाहता है। अतिथि-सत्कारका महाफल है। तुम लोग पड़े सो रहे हो। उठो और स्तुति-पूजामें लगो। भिक्षु अपनी निद्रासे उठा और शेष रात्रि सूत्रोंके पाठ और जपमें व्यतीत की। प्रातःकाल होते उसने अन्य भिक्षुओंसे अपने स्वप्नका समाचार सुनाया और सब लोग बड़ी उत्सुकतासे सूत्रोंका पाठ करते हुए उसके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे।

कई दिन बीतनेपर सुयेनच्वांग राजधानीके निकट नगरके बाहरकी धर्मशालाके समीप पहुंचा। राजा यह समाचार पाकर कि वह नगरके निकट आ गया अपने अमात्यों और नगरके सारे भिक्षुओंको साथ लेकर उसकी अगवानीको निकला। एक सहस्र जनताके साथ ध्वजा पताका ले धूप जलाते और मार्गमें फूल बरसाते बड़ी धूमधामसे धर्मशालापर पहुंचा। वहां उसे प्रणामकर पुष्पादिसे पूजा की, हाथीपर चढ़ाकर नगरमें ले आया और जयेन्द्र नामक विहारमें उसे उतारा।

दूसरे दिन राजाने सुयेनच्वांगको अपने राजप्रासादमें भिक्षा ग्रहण करनेके लिये आमंत्रित किया और विविध भक्ष्य-भोज्यसे उसका सत्कार किया। उस अवसरपर राजाने दस और नगरके विद्वान भिक्षुओंको आमन्त्रित किया था। सबको भोजन कराकर राजाने भिक्षुओंसे प्रार्थना की कि आप लोग परस्पर कुछ वाग्विलास कीजिये। सुयेनच्वांगने कहा कि मैं यहां अध्ययन करने आया हूं और मेरा उद्देश्य धर्म-ग्रंथोंका खोजना और उनको पढ़ना है। राजाने उसकी बात सुनकर २० लेखकोंको पुस्तकें लिखनेके कामपर नियुक्त किया और पांच परिचारकोंको सुयेनच्वांगके साथ करके आज्ञा दी कि जिस पदार्थकी वह आज्ञा दे उसे लाकर दें और सबका व्यय राजकोशसे दिया जावे।

जयेन्द्र विहारका महा स्थविर बड़ा ही विद्वान और शीलसम्पन्न था। उसकी अवस्था ७० वर्षकी थी। वह सुयेनच्वांगको देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और अपने पास रखकर उसे सत्पात्र

या अध्ययन कराने लगा। सुयेनच्वांग उससे प्रातःकाल कोशका सायंकाल न्यायका पाठ पढ़ता। रातको वह हेतु-विद्याका अध्ययन करता। पाठके समय नगरके बड़े बड़े विद्वान भिक्षु अध्ययन करने आते थे। उस समय कश्मीर विद्याका प्रधान पीठ माना जाता था और बहुत दूर दूरसे लोग वहां विद्याध्ययन करने आते थे। वहां सुयेनच्वांगने दो वर्षतक रहकर अनेक शास्त्रोंका अध्ययन किया। सब भिक्षु उसकी बुद्धि और धारणा-शक्ति देखकर चकित थे और परस्पर कहा करते थे कि चीनका यह श्रमण अद्भुत है। भिक्षु-संघमें उसके जोड़का दूसरा नहीं।

कश्मीरके राजाने एक बार एक महापरिषद् की थी। उसमें उस समयके बड़े बड़े विद्वान भिक्षु विशुद्धसिंह, जिनबन्धु, सुगतमित्र, वसुमित्र, सूर्यदेव, जिनत्रात आदि उपस्थित थे। सब लोगोंने मिलकर उस परिषद्में सुयेनच्वांगकी परीक्षा ली और विभिन्न शास्त्रोंपर सूक्ष्म प्रश्न किये। सुयेनच्वांगने उन सबके प्रश्नोंका बहुत स्पष्ट शब्दोंमें उत्तर दिया और सब लोग उसकी धारणा और वक्तृत्व शक्तिको देखकर चकित रह गये।

कश्मीर बहुत प्राचीन कालसे विद्याके लिये प्रख्यात था। यहीं पर कनिष्कने अपने समयमें चतुर्थ धर्म-संगिनी आमन्त्रित की थी। इस धर्मसंगिनीमें ५०० अर्हत उपस्थित थे जिनमें पारिपार्श्वक सुयेनच्वांग ही था। इस धर्मसंगिनीमें त्रिपिटकका पुनः पारायण किया गया था और उपदेश और विभाषाशास्त्रोंकी जो सूत्रपिटक और अभिधर्म और विनयपिटककी टीका स्वरूप थे रचना हुई थी।

इस देशमें बड़े-बड़े विद्वान अर्हत होते आये थे जिन्होंने बौद्ध-धर्मके अनेक शास्त्रों और ग्रन्थोंकी रचना की थी। महायानका कश्मीर राज्य-केन्द्र था।

डाकुओंसे मुठभेड़

सुयेनच्वांग कश्मीरमें दो वर्ष बिताकर और वहांके तीर्थ-स्थानों और संघारामोंको देखकर कश्मीरसे पुंछ गया, पुंछसे राजपुर आया और राजपुरसे दक्षिण-पूर्व दिशामें पर्वत और नदीको लांघता हुआ टक्कजनपदको गया। टक्क आते हुए वह राजपुरसे दो दिन चलकर चंद्रभागा नदीको पार करके वहांसे जयपुरनामक नगरमें आया। वहां ब्राह्मणोंके एक मंदिरमें ठहरा और दूसरे दिन शाकल नगरमें पहुंचा। यह बड़ा प्राचीन नगर था, यहां बुद्ध भगवानका पद-चिह्न था। शाकलसे दर्शन और पूजाकर वह आगे बढ़ा और पलासके एक जङ्गलमें पहुंचा। जङ्गलमें उसे ५० डाकू मिले। डाकुओंने उसके और उसके साथियोंके सारे कपड़े-लत्ते छीन लिये और तलवार निकाल मारनेके लिये पीछे दौड़े। वह अपने साथियोंसहित एक सूखे तालसे होकर भागा और बड़ी कठिनाईसे तालसे निकलकर किनारेपर पहुंचा। तालमें डाकुओंने भागते हुए उसके अनेक साथियोंको पकड़ लिया और सुयेनच्वांग अपने दो श्रमणेरों-सहित झाड़की आड़में भागकर जा छिपा। वहांसे वह एक नालेसे होता हुआ भागा और थोड़ी दूर जानेपर उसे

खेतमें हल जोतता मिला। ब्राह्मणने उन सबको घबड़ाया हुआ देख और यह सुन कि डाकुओंने उनको लूट लिया है अपना हल छोड़कर गांवमें आया और अस्सी आदमियोंको साथ ले जहां डाकुओंने लूटा था गया। डाकू उन लोगोंको देखकर भाग गये और जङ्गलमें जा घुसे। सुयेनच्वांग उन सबको साथ लिये तालमें गया और वहां देखा तो डाकू उसके साथियोंके हाथ पैर बांधकर वहां छोड़ गये थे। उसने उन सबके हाथ पैर छुड़ाये और साथ लिये गांवमें आया। वहां सब लोगोंने किसी न किसी भांति रात बितायी। सब लोग तो रो रहे थे पर सुयेन-च्वांग बैठा हंसता था। उसके साथियोंने उसे हंसते देख कहा कि हमलोगोंके तो सारे माल-असबाब लुट गये और प्राण जाते जाते बचे आपको हंसना सूझता है। सुयेनच्वांगने कहा भाई, प्राण है तो सब कुछ है। प्राण तो बच गये फिर चिन्ता काहे-की? जीते रहोगे तो माल-असबाब फिर होता रहेगा। सब लोग यह सुन चुप रह गये।

प्रातःकाल वह उस गांवसे चलकर टक्की पूर्वीय सीमापर एक बड़े नगरमें पहुंचा। इस नगरके पश्चिम मार्गके उत्तर किनारे-पर आमका एक बाग था। उस बागमें ७०० वर्षका एक तपस्वी ब्राह्मण रहता था। देखनेमें उसकी आयु ३० वर्षसे अधिक नहीं जान पड़ती थी। वह सांख्य और योगका परम विद्वान था और वेद तथा अन्य शास्त्रोंका पारंगत था। उसके दो और शिष्य सौ सौ वर्षकी आयुके थे। जब सुयेनच्वांग उस बागमें

पहुंचा तो वह-तपस्वी उससे मिलकर बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने डाकुओंके लूटनेकी बात सुनकर तुरन्त अपने एक शिष्यको नगर भेजा और कहा कि जाओ और नगरके बौद्धोंसे सब समाचार कहो और इनके लिये कुछ भोजन लिवा लाओ।

शिष्य नगरमें गया और कहा कि एक चीनका श्रमण हमारे आश्रमपर आया है। डाकुओंने मार्गमें उसके और उसके साथियोंके सारे कपड़े-लत्ते छीन लिये। आप लोग जिससे जो हो सके उनकी सहायता करें। पुण्यका काम है। उसकी बात सुनकर बहुतसे वस्त्र और भोजन लेकर ३०० नगरवासी वागमें आये। सब सामान लाकर सुयेनच्वांगके आगे रख दिये और बड़ी नम्रतासे उसे प्रणाम किया। सुयेनच्वांगने कुछ मन्त्र पढ़कर उनको धर्मका उपदेश करना आरंभ किया। उसके उपदेशको सुन सब बड़े प्रसन्न हुए और उससे बात-चीत कर नगरको लौट गये।

सुयेनच्वांगने अपने साथियोंको वस्त्र बांट दिये और बांटने-से पांच थान जो बच गये उन्हें उसने उस तपस्वी ब्राह्मणको प्रदान कर दिया। वहां वह एक मासतक रह गया और शत-शास्त्र और शतशास्त्रवैपुल्य नामक ग्रन्थोंका अध्ययन किया। वहां पूर्व दिशामेंसे चलकर वह चीनपति देशमें आया और एक विहारमें उतरा। उस विहारमें विनीत प्रभ नामक एक महाविद्वान श्रमण रहता था। उसके पास चौदह मास रहकर उसने अभिधर्म प्रकरण और न्यायावतार आदि ग्रंथोंका अध्ययन किया।

चीनपतिसे तमसावनके संघाराममें होता हुआ वह पूर्व-उत्तर दिशामें चलकर जालंधर आया। वहाँ नगरधनके विहारमें उतरा। उस विहारमें उस समय चन्द्रधर्मा नामक एक बड़े विद्वान श्रमणसे भेंट हुई। उसके पास वह चार मासतक रह गया और प्रकरण आदि विभाषा-शास्त्रका अध्ययन किया।

जालंधरसे वह कुलूत गया और वहांसे एक पर्वतको पार कर सतलज नदी उतर, पार्यात्र जनपदसे होता हुआ मथुरामें पहुंचा।

स्तूप-पूजा

मथुरा उस समय बौद्धोंका एक प्रधान स्थान था। वहां अनेक संघाराम और स्तूप थे। सबमें प्रधान संघाराम पार्वत संघाराम था। इसे आर्य्य उपगुप्तने बनवाया था। इसके पास ही उत्तर दिशामें २० फुट चौड़ी ३० फुट लम्बी पत्थरकी एक गुफा थी। इसमें चार चार इञ्च बांसके फट्टेके टुकड़ोंका ढेर लगा हुआ था। सुयेनच्वांगको यह बतलाया गया कि यह ढेर आर्य्य उपगुप्तने लगाया था। जब उसके उपदेशसे कोई दम्पति (स्त्री और पुरुष एक साथ) अर्हत पदको प्राप्त होते थे तो वह एक टुकड़ा इसमें रख देता था। इस प्रकार उसने इतना बड़ा ढेर लगाया। इसमें उसने उनके लिये कोई टुकड़े नहीं डाले थे जो अकेले अर्हतपदको प्राप्त हुआ था। यह उपगुप्त अशोकका गुरु था।

उस समय इस देशमें अनेक अर्हतों और बोधिसत्वोंके स्तूपोंके पूजनेकी प्रथा थी। सूत्रपिटकाभ्यासी पूर्ण मैत्रेयके स्तूपको, विनय पिटकवाले उपालीके स्तूपको, और अभिधर्म-वाले सारि-पुत्रके स्तूपको पूजते थे। ध्यानके अभ्यासी मौद्ग-लायनेके स्तूपकी, श्रमणेर राहुलके स्तूपकी और भिक्षुनियां आनन्दके स्तूपकी पूजा करती थीं। महायानानुयायी यथा-मिमत बोधिसत्वोंके स्तूपकी पूजा करते थे। सालमें उत्सवके दिन यह पूजा होती थी और लोग दूर दूरसे आते थे और भीड़ लग जाती थी।

मथुरासे सुयेनच्वांग स्थानेश्वर गया। वहां उसने कुरुक्षेत्र-को देखा और अनेक बौद्धतीर्थोंके दर्शन करता स्रुघ्नके जनपदमें आया।

जयगुप्त और मित्रसेनसे भेंट

स्रुघ्नका जनपद स्थानेश्वरके पूर्वमें था। इसके पूर्वमें गंगा नदी थी और उत्तरमें यमुनोत्तरीका पर्वत था। स्रुघ्नकी राज-धानी यमुनाके किनारे दक्षिण तटपर बसी थी। इस देशके पूर्वमें गंगाद्वार पड़ता था जहां गंगा पर्वतोंमें फिरती हुई समतल भूमिमें आती है। वहां अनेक धर्मशालायें थीं और स्नान करनेवालोंकी बड़ी भीड़ लगती थी। वहां उस समय जयगुप्त नामक महा विद्वान श्रमण रहता था। सुयेनच्वांग उसके पास जाड़ेसे लेकर आधी वसन्ततक रह गया और सौत्रांतिक निकाय-की विभाषाका अध्ययन करता रहा।

गंगाद्वारसे नदी पारकर मतिपुरमें गया। मतिपुरमें उस समय एक शूद्रका राज्य था। वहां उससे मित्रसेन नामक एक बड़े विद्वान श्रमणसे भेंट हुई। यह मित्रसेन गुणप्रभका शिष्य था। गुणप्रभके विषयमें यहां उसने सुना कि वह महा विद्वान और प्रज्ञावान था। उसने तत्त्वं विभंग आदि सैकड़ों ग्रंथ रचे थे और बड़ा मानी था। जब उससे देवसेन अर्हतसे भेंट हुई तो उसने देवसेनसे कहा कि आप तुषित-धाममें जाया करते हैं कृपाकर मुझे भी आप तुषितमें ले चलिये। मैं भगवान् मैत्रेयका दर्शन करना और उनसे अपनी कुछ शङ्काओंका समाधान कराना चाहता हूं। देवसेन उसके कहनेसे उसे तुषित-धाममें ले गया। वहां उसने भगवान मैत्रेयके दर्शन तो किये पर उनको यह समझकर प्रणिपात नहीं किया कि मैं श्रमण हूं और यह अभी देवयोनिमें हैं और स्वर्गके सुख भोग रहे हैं। मैत्रेयने यह देखकर कि अभी उसके मनसे अहंभाव नष्ट नहीं हुआ है उससे बाततक नहीं की। वह देवसेनके साथ तुषितसे वापस आया। इस प्रकार वह तीन बार देवसेनके साथ तुषितधाममें गया पर न तो उसने प्रणिपात किये न मैत्रेय उससे बोले। वह अपनी शङ्काओंको अपने मनमें लिये लौट आया। जब उसने चौथी बार देवसेनसे चलनेके लिये कहा तो देवसेनने कहा, कि आप यह तो बतलाइये कि आप भगवान मैत्रेयको प्रणिपात क्यों नहीं करते। गुणप्रभने कहा कि मैत्रेय बोधिसत्व सब कुछ हों पर वह संसारी ही हैं। माना कि वह स्वर्गमें हैं,

उनका जन्म देवयोनिमें हुआ है और भावीकालमें वे बोधिज्ञानको प्राप्त होंगे ; पर क्या वे स्वर्गसुख नहीं भोगते ? क्या उन्होंने संसारको परित्याग कर दिया है ? मैंने तो गृहत्याग किया और परिव्रज्या ग्रहण की है। मैं संसारसे परे हूं। मेरे जीमें तो आता था कि मैं उन्हें प्रणिपात करूं पर अब यह सोचा कि मैं परिव्राट् हूं, और वे स्वर्गके सम्राट् तो हिचक गया। कुछ भी हो परिव्राट्-पद सम्राट्-पदसे कहीं ऊंचा है। परिव्राट्का सम्राट्के आगे सिर झुकाना किसी प्रकार उचित नहीं है। देवसेन यह सुन उससे नाराज हो गया और फिर उसे तुषित धाममें न ले गया। गुणप्रभ देवसेनसे बिगड़कर चला आया और मतिपुर नगरके दक्षिण थोड़ी ही दूरपर एक संघाराममें आकर रहने लगा। यहां रहकर उसने समाधि-लाभ किया पर अहंकार रह जानेके कारण उसे निर्वीज समाधिकी प्राप्ति न हुई और न उसे सम्यक् ज्ञान प्राप्त हुआ।

सुयेनच्वांग गुणप्रभके शिष्य मित्रसेनके पास आधी वसन्तसे लेकर पूरे ग्रीष्मकालतक रह गया और उससे अभिधर्म ज्ञान प्रस्थानादि अनेक शास्त्रोंका अध्ययन किया।

मतिपुरसे सुयेनच्वांग ब्रह्मपुर, अहिच्छत्र और वीरसन नामक जनपदोंमें होता हुआ और अनेक तीर्थोंका दर्शन करता संकाश्य नगरमें पहुंचा।

संकाश्य नगर स्वर्गावतरण

संकाश्यको उस समय 'कपिथ' कहते थे। यहांपर बुद्ध

भगवान जब त्रयस्त्रिंश धामको अपनी माताको अभिधर्मका उपदेश करने गये थे तो स्वर्गसे उतरे थे। यह स्थान जहांपर वह उतरे थे संकाश्य नगरसे पूर्व दिशामें २० लीपर था। वहांपर एक बड़ा संघाराम था और संघारामके मध्यमें ईंटें और पत्थरकी बनी हुई तीन सीढ़ियां थीं। यह सीढ़ियां ऊँचाईमें सत्तर २ फुट थीं और उत्तर-दक्षिण पंक्तिमें पूर्वाभिमुख बनी थीं। उनपर विविध भांतिके रंग विरंगके पत्थर जड़े थे और ऊपर मूर्तियां थीं। बीचकी सीढ़ीके ऊपर एक सुन्दर मंदिर बना था जिसमें भगवान बुद्धदेवकी पत्थरकी प्रतिमा उतरती हुई मुद्रामें स्थापित थी। दाईं ओरकी सीढ़ीके ऊपर महाब्रह्माकी मूर्ति थी जिसके हाथमें चँवर था और बाईं ओरकी सीढ़ीपर देवराज शक्रकी प्रतिमा हाथमें छत्र लिये स्थापित थी। मूर्तियां बड़ी ही भावपूर्ण और सुन्दर थीं। सामने अशोकका ७० फुट ऊंचा एक स्तंभ था। उसके पास ही पचास पग लंबा पत्थरका एक चबूतरा था।

यहांपर सुयेनच्वांगको यह बतलाया गया कि पूर्वमें जब भगवान यहां उतरे थे तो यह सीढ़ियां देवताओंने बनायी थीं। बीचवाली सीढ़ी सोनेकी थी और बाईं ओरकी स्फटिक मणिकी और दाईं ओरकी चांदीकी थी। जब भगवान त्रयस्त्रिंश-धामसे चले थे तो वे बीचकी सीढ़ीसे उतरे थे, उनके साथ देवताओंका संघ था और महाब्रह्मा अपने हाथमें श्वेत चामर लिये चांदीकी सीढ़ीसे और देवराज शक्र रत्नजटित छत्र हाथमें

लिये स्फटिक मणिकी सीढ़ीसे साथ २ आये थे। बहुत काल तक वह सीढ़ियां इस स्थानपर ज्यों की त्यों थीं पर सैकड़ों वर्ष बीतनेपर उनका लोप हो गया। फिर भक्त राजाओंने उनके स्थानपर इन सीढ़ियोंको बनवा दिया और उनपर मूर्तियोंको स्थापित कर दिया।

संकाश्य नगरसे चलकर सुयेनच्वांग कान्यकुब्जमें आया।

हर्षवर्द्धन

कान्यकुब्जमें उस समय हर्षवर्द्धन राजा था। हर्षवर्द्धन वयस क्षत्रिय था। उसके पिताका नाम प्रभाकरवर्द्धन था। प्रभाकरवर्द्धन स्थानेश्वरका राजा था। प्रभाकरवर्द्धनके मर जानेपर हर्षवर्द्धनका ज्येष्ठ भाई राज्यवर्द्धन राजसिंहासनपर बैठा था पर कर्ण सुवर्णके राजाने उसे धोखेसे अपने यहां आमंत्रित किया और विश्वासघातकर उसे मार डाला। उसके मारे जानेपर लोगोंके बहुत कहने-सुननेपर हर्षवर्द्धन कान्यकुब्जका राजा हुआ। वह अपनेको राजकुमार कहता था और उसकी उपाधि शिलादित्य थी।

राज-सिंहासनपर वह कभी नहीं बैठता था। शासनका भार हाथमें लेते ही उसने प्रतिज्ञा की कि जबतक मैं अपने भाईका बदला न ले लूंगा मैं अन्न ग्रहण न करूँगा। उसने अपने भाईका बदला लेनेके लिये ५००० हाथी, २०० सवार और ५०००० योधा लेकर कर्ण-सुवर्णके राजा शशांकपर चढ़ाई की और उसको दमन

कर सारे भारतवर्षमें दिग्विजय करता फिरा और सारे भारत-वर्षके जनपदोंको जीतकर छः वर्षमें अपनी राजधानीको लौटा। जिस समय सुयेनच्वांग कन्नौजमें पहुंचा उसे राज्य करते ३० वर्ष बीत चुके थे। उसके राज्यभरमें सड़कोंके किनारे किनारे नगर नगर गांव गांव धर्मशालायें बनी थीं। वहाँ यात्रियोंके ठहरनेका बहुत अच्छा प्रबंध था। जिनके पास भोजन वस्त्र नहीं होता था उनको भोजन वस्त्र मिलता था। रोगियोंकी चिकित्साके लिये ठौर २ पर औषधालय थे। वहाँ वैद्य नियुक्त थे और रोगियोंकी चिकित्सा करते और उनको ओषधि देते थे। उसने अपने राज्य-भरमें हिंसाका निषेध किया था और भारतके पांचों प्रदेशोंसे मांस खानेके लिये पशु-पक्षियोंका मारना बंद कर दिया था। मारने-वालेको प्राण-दंड दिया जाता था और ऐसा अपराधी कभी क्षम्य नहीं था। उसने सारे भारतवर्षमें जहां जहां बौद्धोंके तीर्थ-स्थान थे वहां वहां स्तूप, संघाराम और विहार बनवाये थे।

वह प्रति पांचवें वर्ष वहां पंच महापरित्यागका उत्सव करता था। यह मेला प्रयागमें गङ्गा-यमुनाके संगमपर होता था और वह वहां ब्राह्मण, श्रमण, अंधे, लूले—सभी लोगोंको पांच वर्षमें जो राजकोशमें धन आता था उसे लुटा देता था। प्रति वर्ष वहां भिक्षुओं और श्रमण ब्राह्मणोंको आमंत्रित करके नगरमें परिषद् करता था और अपने अधीनस्थ सभी राजाओंको निमंत्रण करता था। २१ दिनतक श्रमणोंको अन्न-पान, वस्त्र और ओषधि बाँटी जाती थी। फिर वह सभामें सब श्रमणोंको एकत्रित कर

उनसे शास्त्रार्थ कराता था और योग्यको उचित मान और पुरस्कार प्रदान करता था।

तीन महीने वर्षाभर तो वह कन्नौजमें रहता था पर शेष नौ महीने अपने राज्यमें फिरा करता था। जहां वह जाता था छप्परका पड़ाव बनाया जाता था। वह नित्य एक सहस्र श्रमणों और ५०० ब्राह्मणोंको भोजन कराकर आप भोजन करता था। उसकी दिनचर्या इस प्रकार थी कि प्रातःकालके समय तो वह अपने राज्यके कामोंको देखता था, और दोपहरमें वह पूजा और भोजनादि करता था और सायंकालका समय वह धर्म-चर्चामें बिताता था।

जिस समय सुयेनच्वांग कान्यकुब्जमें पहुंचा, हर्षवर्द्धन कान्यकुब्जमें नहीं था। वह अपने राज्यमें अभियान (दौरे) पर था। सुयेनच्वांग कान्यकुब्ज नगरमें जाकर भद्र नामक विहारमें उतरा। वहां वीर्यसेन नामक महा विद्वान श्रमणसे उसकी भेंट हुई। उसके पास वह कान्यकुब्ज नगरमें तीन मास रह गया और उससे बुद्धदास प्रणीत विभाषाशास्त्र जिसे धर्म विभाषा व्याकरण भी कहते थे अध्ययन किया। कान्यकुब्जसे चलकर उसने गङ्गा पार की और दक्षिण-पूर्व दिशामें ६०० ली चलकर अयोध्यामें पहुंचा।

डाकुओंसे फिर मुठभेड़

अयोध्यामें उस समय नगरके उत्तर-पश्चिम दिशामें नदीके किनारे एक बड़ा संघाराम और स्तूप था। यहांपर भगवान

बुद्धदेवने तीन मासतक देवताओं और मनुष्योंके हितार्थ धर्मका उपदेश किया था। यहांपर बड़े बड़े अर्हत और बोधिसत्व पूर्वकालमें थे। यहांपर नगरके दक्षिण पश्चिम दिशामें एक पुराने संघाराममें जानेपर उसे वहांवालोंसे मालूम हुआ कि यहांपर असंग बोधिसत्व पूर्वकालमें रहता और उपदेश किया करता था। असंग एक दिन तुषित धामको गया था और मैत्रेय बोधिसत्वसे योगशास्त्र, अलंकार, महायान और मध्यान्त विभंगशास्त्र ले आया था। उसका जन्म भगवान बुद्धके निर्वाणके पीछे प्रथम सहस्राब्दके मध्यमें गांधारमें हुआ था, वह वसुबन्धुका भाई था। असंगने विद्यामात्र, कोश, अभिधर्मादि अनेक ग्रन्थोंकी रचना की थी।

अयोध्यामें दर्शनादि करके सुयेनच्वांग नावपर नदीसे होकर हयमुखको रवाना हुआ। नाव पूर्व दिशामें १०० ली गयी होगी कि एक ऐसे स्थानपर पहुंची जहां नदीके दोनों ओर अशोकका घना वन था। यहां उसे लगभग दस नावें मिलीं जो डाकुओंकी थीं। डाकुओंकी नावें उसकी नावके पास पहुंचीं तो डाकू उसकी नावमें कूदकर चढ़ गये। उनको देखते ही यात्रियोंके होश उड़ गये कितने तो नदीमें कूद पड़े। अस्तु, डाकू उसकी नावको पकड़कर खेकर किनारे लाये। यहां सबके कपड़े उतरवाकर भाड़ लिये और रुपये-पैसे जो कुछ मिले सब छीन लिये।

यह सब डाकू दुर्गादेवीके उपासक थे और प्रति वर्ष शरद् ऋतुमें नवरात्रके दिनोंमें दुर्गादेवीके प्रसन्नार्थ नरबलि किया

करते थे। सुयेनच्वांगके रूपको देखा तो उसमें बलिदान-योग्य पुरुषके सब लक्षण मिले और वह मारे हर्षके अपनेमें फूले न समाते थे। परस्पर कहते थे कि भाई हमने तो समझा था कि हम इस वर्ष भगवतीकी पूजा यथाविधि न कर सकेंगे। कई दिनसे खोजते खोजते हार गये पर कोई बलिदान-योग्य पुरुष मिलता ही न था। पर धन्य भगवती तेरी महिमा! कैसा अच्छा बलिदान-योग्य मनुष्य दिया कि ऐसा कभी मिल ही नहीं सकता। देखो, तो कैसा सुन्दर और हंसमुख है! अब हमारी पूजामें किसी बातकी कमी नहीं नहीं रह गयी! चलिये आनन्दसे भगवतीकी पूजा कीजिये!

सुयेनच्वांगने उनकी परस्परकी बातें सुनकर उनसे कहा कि भाई यदि मेरा यह शरीर आपके बलिदानके काममें आये तो आप बड़ी प्रसन्नतासे मुझे बलिदान चढ़ा दें। इसकी मुझे कुछ चिन्ता नहीं है। चिन्ता केवल एक बातकी है कि मैं अपने देशसे इतनी दूर बोधिद्रुम और गृध्रकूट आदिके दर्शनों और धार्मिक पुस्तकोंकी खोज करनेके लिये आया था उसे मैंने अभी-तक कर नहीं पाया है और आप मुझे बलिदान चढ़ानेको ले जाते हैं यही बुरी बात है।

सुयेनच्वांगकी बातें सुनकर उसके और साथी कहने लगे कि भाई इस श्रमणको छोड़ दो। बेचारा परदेशी है तुम्हें और कोई बलिदानके लिये मिल जायगा। दो चार तो यहांतक तैयार हो गये और कहने लगे कि इसे छोड़ दो और यदि

तुमको चढ़ाना ही है तो हमको ले चलकर बलिदान चढ़ा दो। पर डाकुओंने एक की न सुनी और उसे नहीं छोड़ा।

उसे उसके साथियोंसहित लेकर वे जङ्गलमें अपने निवास-स्थानको गये। डाकुओंके सरदारने दो तीन डाकुओंको आज्ञा दी कि जाकर भगवतीके बलिदानके लिये सब सामग्री ठीक करो। डाकू एक सुन्दर वाटिकामें गये और वहाँ एक बागमें चौका लगाकर फूलादि पूजाकी सामग्री रखकर बलिदानके लिये खूंटा आदि सब गाड़कर ठीक किया। फिर सुयेनच्वांगको ले जाकर वहां खूंटेमें बांधा और खड्ग निकालकर उसको मारनेकी तैयारी करने लगे। पर सुयेनच्वांग निर्द्वंद्व बैठा रहा मानों उसको अपने मारे जानेकी कुछ चिन्ता ही न थी। उसकी यह दशा देख सारे डाकुओंको आश्चर्य होता था। उसके ललाट पर कहीं सिकुड़नतक न थी, वह प्रसन्नचित्त शान्त बैठा था। जब पूजा हो गयी और बलिदानका समय आया तब उसने डाकुओंसे कहा, भाई, मैं आपसे एक मांग मांगता हूं, कृपा कर आप लोग थोड़ी देरके लिये भीड़ न लगाइये और मुझे एकान्त बैठकर अपने चित्तको सावधान करने दीजिये। जब मुझे मरना ही है तो मैं आनन्दपूर्वक मरूं। डाकू उसकी बात मानकर वहांसे हट गये और वह वहां बैठकर प्रशान्त चित्तसे मैत्रेय बोधिसत्वका ध्यान करने लगा। उसने प्रार्थना की कि भगवन्, अब मुझे अपने तुषित-धाममें बुलाइये कि मैं आपसे योगशास्त्र, भूमिशास्त्र ग्रहण कर सकूं और आपके सुमधुर उपदेशोंको

श्रवण करूं। फिर मुझे इस लोकमें जन्म दीजिये कि मैं इन लोगोंको अपने उपदेशसे सन्मार्गपर लाऊं और उनसे दुष्कर्म छुड़ाकर धर्मकार्यमें उनको प्रवृत्त करता संसारमें धर्मका प्रचार करनेमें समर्थ होऊं।

हुयेनच्वांग इस प्रकार प्रार्थना करता २ बोधिसत्वके ध्यानमें इस प्रकार मग्न हो गया कि उसे अपने शरीरकी सुधि न रह गयी। वह तो उधर ध्यानमें मग्न था और तुषित-धाममें विचर रहा था, इधर उसके और सब साथी बैठे रोते-पीटते थे। इसी बीचमें आकाशमें बादल दिखायी पड़ने लगा और बातकी बातमें सारे गगनमण्डलमें छा गया। घोर आंधी आयी और वृक्षोंके हिलनेसे घोर शब्द होने लगा। डालियां टूटकर गिरने लगीं और नदीमें लहरोंपर लहरें थपेड़े खाने लगीं। महा उपद्रव मचा, सारे डाकू भयसे कांप उठे और व्याकुल होकर उसके साथियोंसे पूछने लगे कि यह श्रमण कौन है और कहांसे आता है। लोगोंने कहा, भाई, यह चीनसे यहां विद्या और धर्मकी जिज्ञासा करता हुआ आया है और विद्वान और महात्मा पुरुष है। इसके मारनेसे आपको महापाप होगा। बड़ी आपत्ति आयेगी। आकाशकी ओर देखिये, क्या हो रहा है। इसे आप देवताओंका कोप समझें। ऐसी प्रचण्ड आंधी-पानी आया चाहता है कि आपको कौन कहे हमलोगोंके इस निर्जन स्थानमें प्राण बचने कठिन होंगे। दौड़िये और उसके पांव पड़कर किसी प्रकार उससे क्षमा कराइये, नहीं तो गेहूंके साथ घुन भी पीसे जायंगे।

डाकुओंको यह सुनकर और भी व्याकुलता हुई। सब परस्पर कहने लगे कि भाई, अब कल्याण इसीमें है कि चलकर श्रमणसे क्षमा मांगें नहीं तो न जाने क्या हो। निदान सब लोग दौड़े हुए सुयेनच्वांगके पैरोंपर गिर पड़े। डाकुओंके पैरपर गिरनेसे उसका ध्यान भंग हो गया। उसने आंखे खोल दीं और हंसकर पूछा कि क्या भाई बलिदानका समय आ गया। उठूं, चलूं! डाकुओंने कहा, महाराज, किसकी शक्ति है कि आपको हाथ लगावे? आप हमारे अपराधको क्षमा कीजिये। हमसे बड़ी भूल हुई जो आपको पकड़कर बलिदान चढ़ानेके लिये ले आये। सुयेनच्वांगने उनको क्षमा कर दिया और उनको उपदेश करते हुए कहा कि भाई, इस पापकर्मको छोड़ दो। तुम नहीं जानते कि हिंसा करने, डाका मारने, चोरी करने, व्यर्थ प्राणियोंको देवताओंके प्रसन्न करनेके विचारसे बलिदान चढ़ानेसे मनुष्य घोर नरकमें पड़ता है? वहां वह कल्पोंतक यातनायें भुगतता है? भला इस क्षणिक जीवनके लिये जो बिजुलीकी कौंद या प्रातःकालकी ओसकी भाँति है असंख्य कालतक घोर नरकयातना भुगतना कहाँतक ठीक है?

चोरोंने अपने सिर नीचे कर लिये और कहा कि इसमें सन्देह नहीं कि हमने अबतक मनमाना कर्म किया और यह नहीं विचारा कि यह कर्तव्य है या अकर्तव्य और कितने ही कर्मोंको जो सचमुच महा अधर्म थे धर्म समझकर किया। यह तो हमारे पुण्य उदय हुए कि आपके दर्शन हो गये नहीं भला

कौन था जो हमको सन्मार्गका उपदेश देता और हमें पश्चात्ताप करनेकी सम्मति देता। हम आपके सामने प्रतिज्ञा करते हैं कि आजतक जो किया सो किया अब आगे भूलकर भी ऐसा कर्म न करेंगे और इस मार्ग का परित्याग कर देंगे।

यह कह वह लोग उठे और अपने हथियारोंको उठाकर फेंक आये और जिन जिनके कपड़े-लत्ते धन-माल लिये थे एक एक करके सबको लौटा दिये। उस समयसे उन लोगोंने पंचशीलव्रत ग्रहण किया और उपासक-धर्मको स्वीकार करके धार्मिक जीवन निर्वाह करने लगे।

जब आंधी-पानी जाता रहा तो सुयेनच्वांग डाकुओंके स्थानसे अपने साथियों समेत विदा हुआ। चलते समय डाकू उसके पैरोंपर गिर पड़े और सुयेनच्वांगके सब साथियोंको यह घटना देख बड़ा ही आश्चर्य और कुतूहल हुआ। वे परस्पर उसके सामने और पीठ पीछे यही कहते रहे कि धन्य हैं आप और आपकी सहनशीलता। यह आपहीके पुण्यका प्रभाव है कि हमलोगोंके प्राण बचे और इन डाकुओंको मनुष्य बनाया नहीं तो क्या न हो गया होता।

प्रयाग

सुयेनच्वांग वहांसे मार्ग पूछता हुआ हयमुख आया और वह दर्शन और पूजाकर दक्षिण-पूर्व दिशामें चलकर गंगा नदी उतरकर प्रयागमें पहुंचा। नगरके दक्षिण-पश्चिम दिशामें चंपककी

एक वाटिकामें अशोकका एक स्तूप मिला। यहां भगवान बुद्धने तीर्थकियोंको शास्त्रार्थमें पराजित किया था। इसके पास ही एक बड़ा संघाराम था जिसमें किसी समयमें देव बोधिसत्व आकर रहे थे और विधर्मियोंको शास्त्रार्थमें पराजितकर सत-शास्त्रवैपुल्य नामक ग्रंथकी रचना की थी।

नगरके मध्य एक देवमंदिर था। उसके संबन्धमें वहांके पंडे पुजारी यह कहते थे कि इस मंदिरमें एक पैसा चढ़ानेसे स्वर्गमें हजार पैसे मिलते हैं। मंदिरके जगमोहनके सामने वटका एक बड़ा पेड़ था। यह बहुत दूरतक फैला हुआ था और उसकी छाया बड़ी घनी थी। वटके दायें बायें हड्डियोंकी ढेर लगी हुई थी। वहांपर पहुंचते संसार असार जान पड़ता था और लोग अपने प्राण दे देते थे। यहां उसे यह बतलाया गया कि बहुत दिन नहीं हुए यहां एक ब्रह्मपुत्र आया था। वह बड़ा ही पंडित और बुद्धि-मान था। उसने मंदिरमें आकर दर्शन किये और सबसे कहा कि आपलोगोंके अंतःकरण कलुषित और मलिन हैं। आपलोग धर्मकी बात समझानेसे नहीं समझते। सीधी बातें आपको उलटी जान पड़ती हैं। यह कहकर उसने पूजा अर्चा की और वट-वृक्षके पास आकर उसपर चढ़ गया। वहां चढ़कर वह उनसे कहने लगा कि भाई, पहले तो मैं तुमसे कहता था कि तुम ही नहीं समझते पर इस वृक्षपर आनेसे मुझे यह ज्ञान पड़ा कि नहीं आपका कहना बिलकुल ठीक है। अब तो मैं इसपरसे कूदकर अपने इस शरीर-को छोड़ दूंगा। यह देखो, देवतागण विमान लिये मुझे बुला

रहे हैं। आकाशमें मनोहर दुन्दुभी बजा रहे हैं। उसके अन्य साथियोंने उससे बहुतेरा कहा कि इस वृक्षसे नीचे उतर आवो, पर उसने किसीकी बात न सुनी। निदान जब सब लगोंने देखा कि वह कहनेसे नहीं मान रहा है तो सब अपने अपने वस्त्र उठा लाये और पेड़के नीचे बिछाकर ढेर लगा दिया। फिर तो वह ब्राह्मण पेड़परसे कूद पड़ा। पर वस्त्रोंके गुलगुले बिछावनपर गिरनेसे मरा नहीं। थोड़ी देरतक अचेत रहा और साधारणसी चोट आ गयी। जब उसे चेत हुआ तो कहने लगा कि मैं स्वर्ग पहुँचा होता यह मुझे यद्यपि वहां दिखायी देता था पर अब मुझे निश्चय हो गया कि यह सब इस पेड़के भूतकी माया थी। वास्तवमें कुछ थी नहीं।

अक्षयवटके पूर्व दिशामें गंगा-यमुनाके संगमपर बहुत दूर-तक जो अनुमानतः दस लीसे ऊपर होगा रेत पड़ी हुई थी। यह रेत स्वच्छ बालूकी है और सर्वत्र समतल है। इसे यहांके लोग महादानक्षेत्र कहते हैं। प्राचीन कालसे बड़े बड़े राजे-महाराजे, सेठ-साहूकार यहांपर आकर दान करते चले आये हैं। उस समय भी राजा श्रीहर्ष शिलादित्य प्रति पांचवें वर्ष यहां आता था और बड़ा दान-पुण्य करता था। उस समय यहां बड़ा मेला लगता था और भारतवर्षके सब बड़े बड़े राजा और गण्यमान्य मेलेमें आते थे। भारतवर्षभरके साधु-महात्मा, श्रमण-ब्राह्मण आदि इकट्ठे हो जाते थे। राजा शिलादित्य पहले भगवान बुद्ध-देवकी पूजा और शृंगार करता था फिर यथाक्रम पहले यहांके

श्रमणोंका, फिर आये हुए श्रमणों और भिक्षुओंका, फिर विद्वानों और पंडितोंका, फिर यहांके ब्राह्मणों और पंडोंका, और अंतमें विधवाओं, अनाथों, लंगड़े लूले, निर्धन और भिखमंगोंको भोजन, वस्त्र, धन, रत्न प्रदान करता था। इस प्रकार वह नित्य दान-पुण्य करके अपने कोशके रुपये खर्च कर देता था और जब कुछ नहीं रह जाता था तो अपने मुकुट-वस्त्राभूषण और यान वाहनादि सब कुछ लुटा देता था। जब उसके पास एक कौड़ी भी नहीं रह जाती थी तब वह बड़े आनंदसे कहता था कि आज मैंने अपने सारे कोश और धनको अक्षय कोशमें रख दिया, यहां वह घटनेका नहीं है। फिर अन्य देशोंके राजा लोग भी दान करते थे। वे लोग राजाको अपने बलि देते थे और उसका कोश फिर पूर्ण हो जाता था।

दानक्षेत्रके आगे पूर्व दिशामें गंगा-यमुनाके संगमपर सहस्रों की भीड़ लगी रहती है। कितने तो स्नान करके चले जाते हैं, कितने यहाँ कल्पवास करते हैं और मरनेके लिये यहाँ आकर रहते हैं। इस देशके लोगोंका विश्वास है कि यहां आकर एक समय भोजनकर स्नान करते हुए जो कल्पवास करता, प्राण त्यागता है वह मरनेपर स्वर्ग प्राप्त होता है। यह स्नान करनेसे जन्म जन्मके पाप क्षय हो जाते हैं। दूर दूरसे लोग यहां स्नान करने आते हैं। यहाँ आकर लोग सात दिनतक उपवास-व्रत करते हैं। कितने यहीं मरणपर्यंत रहते हैं, कितने स्नानकर अपने घर चले जाते हैं। औरकी तो बात ही क्या कहना है वनके मृगतक

गंगा-यमुनाके संगमपर स्नान करने आते हैं और अनशन व्रत-करके अपने प्राण परित्याग करते हैं।

उसने वहाँ जाकर यह सुना कि बहुत दिन नहीं हुए एक बार राजा श्रीहर्ष शिलादित्य प्रयागके मेलेमें आया था। उस समय गंगाके किनारे एक बन्दर देखा गया था। वह बन्दर कुछ खाता-पीता नहीं था और पेड़के नीचे रहता था। कुछ दिनों पीछे उसने अनशन व्रत करके अपने प्राण परित्याग कर दिये।

वहांपर तपस्वियोंकी विचित्र दशा थी। वह लोग संगमपर एक खंभा गाड़ते थे, प्रातःकाल उसपर चढ़कर एक हाथसे उसे पकड़कर लटकते थे और अपनी आँखको सूर्यपर जमाये दिनभर उसीपर लटके रहते थे। जब सांयकालको सूर्यास्त हो जाता था तब उसपरसे उतरते थे। इस प्रकार तप करनेवाले वहाँ पचीसों साधु थे। उनमें कितने तो ऐसे थे जिनको इस प्रकार तप करते बीसों वर्ष हो गये थे। उनका विश्वास था कि इस प्रकार तप करनेसे हम जन्म-मरणके बंधनसे मुक्त हो जायँगे।

बुद्धदेवकी पहली प्रतिमा

प्रयागसे वह दक्षिण-पश्चिम दिशामें चला और एक घोर जंगलमें पहुंचा जहाँ बाघ, चीते आदि हिंसक जंतु और जंगली हाथी भरे पड़े थे। वहांसे बड़ी कठिनाईसे निकलकर वह कौशाम्बी पहुंचा जिसे आजकल कोसन कहते हैं। कौशाम्बी महा-

उदयनकी राजधानी थी। उदयन भगवान बुद्धदेवका समकालीन था और उसको उनसे बड़ा प्रेम था। जब भगवान अपनी माताको उपदेश करनेके लिये त्रयस्त्रिंश-धाम पधारे थे तो मौद्गलायनसे कहा कि आप एक बढ़ईको त्रयस्त्रिंशधाम पहुंचाइये कि वहां वह जाकर भगवानके रूपको देख आवे और वैसी ही अनुरूप प्रतिमूर्ति बना दे। बढ़ई त्रयस्त्रिंशधाम गया और वहांसे लौट आकर उसने चन्दनकी लकड़ीकी एक प्रतिमूर्ति बनायी थी। यह प्रतिमा वहांके साठ फुट ऊंचे एक विहारमें थी।

दंतधावनसे वृक्ष

ह्युयेनच्वांग कौशाम्बीमें उस मूर्तिकी पूजा तथा अन्य प्रसिद्ध स्थानोंका दर्शनकर वहांसे उत्तर दिशामें ५०० ली चलकर विशाखे जनपदमें आया। यहांपर भगवान बुद्धदेवने ६ वर्ष रहकर धर्मोपदेश किया था। यहांपर ७० फुट लंबा एक वृक्ष था जिसके विषयमें वहां यह कथा प्रचलित थी कि भगवानने दंतधावनकर भूमिपर फेंक दिया था और वह भूमिमें जड़ पकड़कर :लग गया और बातकी बातमें बढ़कर पूरा पेड़ हो गया था। विधर्मियोंने उसे कई बार काट डाला पर फिर भी वह ज्योंका त्यों हो गया।

विशाखेसे उत्तर-पूर्व दिशामें ५०० लीसे ऊपर जाकर वह श्रावस्तीमें आया। यह प्रसेनजित राजाकी राजधानी थी। यहां भगवान बुद्धदेव आकर प्रायः रहा करते थे। श्रावस्ती नगरी

उस समय उजाड़ हो गयी थी। नगरके मध्यमें महाराज प्रसेनजितके प्रासादकी केवल नींवमात्र रह गयी थी। श्रावस्तीका प्रसिद्ध जेतवनविहार बिलकुल नष्ट-भ्रष्ट हो गया था। उसकी सब कक्षायें गिरकर छिन्न-भिन्न हो गयी थीं और केवल एक कक्षा जिसमें बुद्ध भगवानकी चंदनकी मूर्ति थी बच रही थी। प्रसेनजितने यह सुनकर कि कौशाम्बीके राजा उदयनने अपने यहां चन्दनकी मूर्ति बनवायी है, यह मूर्ति बनवायी थी। संघारामके पूर्व द्वारपर अशोकराजके बनाये दो स्तम्भ दायें-बायें सत्तर सत्तर फुट ऊँचे थे।

श्रावस्तीमें भगवान बुद्धदेवके अनेक लीलास्थलोंका दर्शन और पूजा करके सुयेनच्वांग कश्यप बुद्धके स्तूप-दर्शन करता कपिलवस्तु गया। कपिलवस्तु नगर भी उस समय निर्जन और उजाड़ पड़ा था।

राजा शुद्धोदनके राजप्रासादकी नींवमात्र अवशिष्ट रह गयी थी। वहां राजा शुद्धोदनकी मायादेवीकी तथा अन्य मूर्तियां स्थल स्थलपर मण्डपों और विहारोंमें रखी थीं।

कपिलवस्तुसे यात्री दर्शन और पूजा करता पूर्व दिशामें चला। आगे चलकर उसे एक घना जङ्गल पड़ा। इस जङ्गलमें न कहीं राह थी न पैंड़ा, चारों ओर जङ्गली हाथियोंके झुंड फिरते थे। सिंह-व्याघ्र दहाड़ते थे। इसी जङ्गलमें उसे ५०० ली चलनेपर राम-ग्रामका स्तूप मिला। यह स्तूप राम-ग्रामकी उजड़ी हुई राजधानीके पूर्वमें था। स्तूपके पास ही एक

ताल था और स्तूपके किनारे एक संघाराम था। संघारामके कर्मदानका महंत एक ब्रह्मचारी था। उस संघाराममें आनेपर उसने यहांके भिक्षुओंसे सुना कि पूर्वकालमें कोई भिक्षु अपने कई साथियों सहित इस स्तूपके दर्शनके लिये आया था। यहां आकर उसने देखा कि हाथी वनसे फूल तोड़कर लाते और इस स्तूपपर चढ़ाते थे, पानी छिड़कते और घास फूसको उखाड़कर साफ करते थे। उनको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ और उनमेंसे एक यह दृढ़ प्रतिज्ञाकर कि मैं आजन्म यहींपर वास करूंगा और स्तूपकी पूजा और परिचर्य्या करता रहूंगा, यहींपर रह गया। वह यहां कुटी बनाकर रहने लगा और दिन-रात इस स्थानकी सफाईमें लगा रहता। लोगोंने फिर यहांपर यह संघाराम बनवा दिया और उसे इसका नायक या महंत बनाया। तबसे यहांका महंत ब्रह्मचारी ही होता चला आता है।

यहां उसे इस स्तूप और तालके सम्बन्धमें एक और कथा सुननेमें आयी कि उस तालमें एक नागका वास है। वह नित्य रूप बदलकर तालावसे निकलता है और स्तूपकी प्रदक्षिणाकर फिर चला जाता है। राजा अशोकने सब स्तूपोंको तोड़कर भगवानके धातुको निकलवाया और उससे यथाभाग जम्बूद्वीपभरमें स्तूप बनवाकर प्रतिष्ठित किया पर वह इस स्तूपको नहीं तोड़ पाया था। जब वह इसे तोड़ने आया था तो नाग ब्राह्मणका वेष धरकर उसके गजरथके सामने खड़ा हो गया था और उसकी राह रोक ली थी। राजाको रथसे उतारकर अपने घर

ले गया था और वहां उसने राजाको पूजा की और अपनी सारी सामग्रियों और पार्षदों (उपाकरणों) को दिखलाया था। राजा उन्हें देखकर चकित हो गया था और उसने कहा था कि भला मनुष्य-लोकमें पूजाकी ऐसी सामग्रियाँ और ऐसे पार्षद कहाँ मिल सकेंगे। इसपर नागने कहा था कि जब आप उन्हें नहीं पा सकते तो कृपाकर इस स्तूपके तोड़नेका विचार अपने मनसे निकाल दीजिये और राजा अशोक लौट गया था।

यहांसे सुयेनच्वांग जङ्गलको पारकर कुशीनगर आया। कुशीनगर उस समय उजाड़ पड़ा था, उसके खण्डहरपर दो चार घर टूटे फूटे थे। नगरके उत्तर-पश्चिम अचितावती नामकी नदी पड़ती थी। उसके उस पार शालका जङ्गल था। उसीमें चार बड़े बड़े शालके वृक्षोंके पास एक मन्दिरमें भगवान बुद्धदेवकी एक प्रतिमा निर्वाणमुद्रामें स्थापित थी। प्रतिमाका सिर उत्तर दिशाकी ओर और पैर दक्षिण दिशाकी ओर थे। पासही अशोकके बनवाये विहार और स्तूप थे जो निर्जन, उजाड़ और गिरे पड़े थे। उसके पास ही एक स्तम्भ था जिसपर भगवानके परिनिर्वाणका अभिलेख था पर उसमें तिथि और संवत्सरका उल्लेख न था। यहां यह दन्तकथा चली आती है कि भगवान-का परिनिर्वाण अस्सी वर्षकी अवस्थामें वैशाख शुक्ल पूर्णिमा-को हुआ था। पर सर्वास्तिवाद निकायवाले भगवानका परिनिर्वाण कार्त्तिक शुक्लाष्टमीको मानते हैं। परिनिर्वाणको हुए कितने दिन हुए इस सम्बन्धमें भी लोगोंके मतभेद थे। "कोई

कहता था कि १२०० वर्ष हुए, कितने १३००, कोई १५०० वर्ष भी बतलाते हैं। किसी किसीका यह कथन था कि परिनिर्वाणको हुए ६०० से ऊपर और १००० के भीतरका समय है।

यहाँ उसे यह भी सुननेमें आया कि कुशीनगरसे दक्षिण-पश्चिम दिशामें एक गाँव है। वहां थोड़े दिन हुए एक ब्राह्मणको एक श्रमण मिला था। ब्राह्मण उसे अपने घर लाया और दूध-भात भिक्षामें दिया। श्रमणने उसे अपने भिक्षापात्रमें ले लिया और भोजन करने लगा। पर एक ही ग्रास मुंहमें डालकर उगल दिया और लम्बी सांस ली। ब्राह्मण उसके पैरोंपर गिर पड़ा और हाथ जोड़कर बोला, महाराज क्या कारण है कि आपने भोजन मुंहमें डालकर उगल दिया? क्या भोजन सुस्वादु नहीं है? श्रमण लम्बी सांस लेकर बोला कि दुःख है कि संसारसे धर्म उठता जा रहा है। अच्छा, मैं भोजन कर लूं, तब बताता हूँ। श्रमण भोजन करके उठा और जानेको तैयार हुआ। ब्राह्मण फिर हाथ जोड़कर खड़ा होकर बोला कि महाराज आपने कहा था कि भोजन कर लूं तो बताऊँगा और आप जा रहे हैं? श्रमणने कहा मैं भूला नहीं हूं पर तुम उसे सुनकर क्या करोगे? समय बदल गया, लोगोंमें विश्वास नहीं रहा है। अस्तु, मैं तुम्हें बताऊँगा। श्रमणने कहा कि मेरे ग्रास उगल देनेका कारण यह है कि कई सौ वर्षपर आज मुझे दूध-भात मिला है। तथागतके साथ जब मैं राजगृहके पास वेणु वनमें रहता था वहाँ उस समय मैं उनका पात्र मांजता, जल भर

लाता और उनको आचमन स्नान कराया करता था। पर हाय जैसा उस समयका जल मीठा था वैसा मीठा यह तुम्हारा दूध नहीं। इसका कारण यही है कि मनुष्योंसे धर्म उठता चला जा रहा है। ब्राह्मण यह बातें सुन उसके चरणोंपर गिर पड़ा और बड़ी नम्रतासे हाथ जोड़कर फिर बोला कि महंत, क्या आपने भगवान बुद्धके अपनी आंखोंसे दर्शन किये हैं? श्रमणने उत्तर दिया कि हाँ। फिर बड़े आग्रह करनेपर कहा कि मैं तथागतका कुमार राहुल हूं और धर्मकी रक्षाके लिये अबतक बना हूं और निर्वाण नहीं प्राप्त हुआ। यह कहकर श्रमण वहांसे अन्तर्धान हो गया। उनके अन्तर्धान हो जानेपर ब्राह्मणने उस स्थानपर राहुलकी मूर्ति स्थापित की और उसकी पूजा करता था।

कुशीनगरसे हुयेनच्वांग काशी गया। काशी नगरके उत्तर पूर्व दिशामें वरुणा नदीके पश्चिम अशोकका एक स्तूप था और स्तूपके सामने ही एक स्तम्भ था। और वरुणा नदीके दूसरे पार सारनाथका प्रसिद्ध स्थान था जहाँ भगवान बुद्धदेवने धर्मचक्र प्रवर्तन किया था। वहाँ उस समय एक बड़ा संघाराम बना था जिसके मध्यमें एक सुन्दर विहारमें भगवान बुद्धदेवकी मूर्ति धर्मचक्रके उपदेशकी मुद्रामें स्थापित थी। विहारके दक्षिण-पूर्व दिशामें राजा अशोकका एक स्तूप था जिसे अब धमेख कहते हैं। उसके आगे ७० फुट ऊंचा एक स्तम्भ था। संघारामकी पश्चिम दिशामें एक ताल था और उसके

एक और स्तूप था जिसे अब चौखंडी कहते हैं। वहांपर भगवान बुद्धदेवने पूर्वजन्ममें छः दांतवाले हाथीका शरीर धारण किया था। इस प्रकार और अनेक पुण्यस्थल सारनाथके आसपासमें थे।

सुयेनच्वांग उनके दर्शन करके गङ्गाके किनारे किनारे चलकर स्कन्दपुरमें जिसे अब गाजीपुर कहते हैं होता हुआ गङ्गापार करके महाशालमें जिसे अब मसार कहते हैं और आरा ज़िलामें है गया। वहां उस समय ब्राह्मणोंकी बस्ती थी। उन लोगोंने सुयेनच्वांगको विदेशी और श्रमणके वेशमें देखकर उससे पहिले तो उसकी विद्या-बुद्धिकी परीक्षा लेनेके लिये अनेक प्रश्न किये पर जब उसने सबके उत्तर दिये तो लोगोंने उसका बड़ा आदर और मान किया। मसारमें उस समय गङ्गाके किनारे नारायणका एक विशाल मन्दिर था। उसमें बहुत सुंदर नारायणकी मूर्ति स्थापित थी। मसारके पूर्व ३० लीपर अशोक राजाका एक टूटा फूटा स्तूप था। स्तूपके आगे एक स्तम्भ था, जिसपर सिंहकी मूर्ति थी। मसारसे होकर वह मार्गमें अनेक पुण्यस्थानोंके दर्शन करता गंगानदी पार करके आटवीके स्तूपका दर्शन करता गण्डक पारकर वैशालीके जनपदमें पहुंचा। वैशाली उस समय उजाड़ पड़ी हुई थी। उसके खंडहर बहुत दूरतकमें दिखायी पड़ते थे। उसके आसपासमें अनेक पुण्य स्थान थे जिनकी गिनती करनी कठिन थी। नगरके उत्तर-पश्चिममें अशोकका एक स्तूप और स्तम्भ था। दक्षिण-पूर्व दिशामें वह

स्थान था जहांपर भगवानके निर्वाण प्राप्त होनेसे ११० वर्ष बीतनेपर यशद आदि ७०० अर्हतोंने मिलकर द्वितीय धर्म-संगिती की थी।

वैशालीसे सुयेनच्वांग समयउजी जनपदमें गया। वहाँकी चेन-गुना उजाड़ पड़ी थी। वहाँ अनेक तीर्थ-स्थानोंका दर्शन करता वह नेपालमें पहुंचा। नेपालमें उस समय अंशुवर्माका राज्य था। सुयेनच्वांग अपने यात्रा-विवरणमें लिखता है कि अंशुवर्मा बड़ा विद्वान और प्रतिभाशाली है। उसने एक व्याकरण बनाया है और विद्वानोंका बड़ा मान और आदर करता है। नेपालसे वह वैशाली लौट आया और वहांसे दक्षिणपूर्व दिशामें अस्सी नब्बे ली चलकर श्वेतपुरके संघाराममें पहुंचा। यह संघाराम गङ्गा-के किनारे था और बहुत सुन्दर और सुदृढ़ बना था। पास ही अशोकका एक स्तूप भी था। यहांपर उसे बोधिसत्व सूत्रपिटक नामक ग्रन्थ मिला। उसे लेकर सुयेनच्वांगने गङ्गा पार किया और मगधकी राजधानी पाटलिपुत्रमें पहुंचा।

मगध

पाटलिपुत्रका प्राचीन नगर उस समय उजाड़ पड़ा था, केवल प्राकारकी नींव बच रही थी। नगरका खंडहर नदीके दक्षिण ७० लीके घेरेमें था। इस नगरका नाम पहले कुसुमपुर था। कुसुम-पुरसे पाटलिपुत्र नाम पड़नेका कारण यात्रा-विवरणमें इस प्रकार लिखा है कि कभी यहां कुसुमपुर गांव था। वहां एक बड़ा विद्वान ब्राह्मण रहता था। उसके पास सहस्रों विद्यार्थी रहकर विद्या-

ध्ययन करते थे। एक दिन बहुतसे ब्रह्मचारी वनमें विहारके लिये गये। उनमें एक ब्रह्मचारीका चित्त कुछ उदास था और उसका मन किसी काममें नहीं लगता था। अन्य ब्रह्मचारियोंने उसको यह दशा देख उससे पूछा कि भाई, तुम्हारा मन उदास क्यों है? तुम्हें किस बातका कष्ट है? उसने कहा, भाई, न तो मुझे कुछ कष्ट है, न कुछ रोग है। मैं दिन रात इसी चिन्तामें पड़ा रहता हूं कि मुझे गुरुजीके पास पढ़ते इतने दिन हो गये और मैं युवा भी हुआ पर अबतक मैं कुंआरा ही पड़ा हूं। इसी चिन्तासे मैं घुलता चला जाता हूं और मेरा मन दुखी रहता है। इसपर उसके साथियोंने कहा, अच्छा, हम आज तुम्हारा विवाह करा देंगे। फिर तो उन लोगोंने उसके विवाह का स्वांग रचा और दो वर-पक्षके दो कन्या पक्षके बन गये और उसका विवाह पाटलके वृक्षके साथ जिसके नीचे बैठे थे कर दिया। दिन बीत जानेपर सब लोग गांवमें गये पर वह उसी पाटलके वृक्षके नीचे बैठा रह गया। रात होनेपर उसे जान पड़ा कि बहुतसे लोग आ रहे हैं, बाजा बज रहा है। बातकी बातमें लोग आ गये और भूमिपर बिछावन बिछने लगा। सब ठीक हो जानेपर एक वृद्ध दम्पति एक कन्याको साथ लिये आये और उस ब्रह्मचारीके पास आकर उस कन्याका हाथ जिसे वे साथ लाये थे पकड़ा दिया। पाणि-ग्रहण हो जानेपर सब विवाहका उत्सव मनानेमें लगे। सात आठ दिन बीते वह वहांसे अपने गांवमें आया और अपने इष्ट मित्रोंको अपने साथ लेकर

वहां गया। वहां सुविशाल प्रासाद बन गया था और दास दासी सब अपने काममें लग रहे थे। वृद्ध पुरुषने द्वारपर सबका स्वागत किया और सबको विविधि भांतिके व्यञ्जन खिलाकर बड़े आदर-सत्कारसे विदा किया। वहां ब्रह्मचारी अपनी इस दिव्य वधूके साथ उसी स्थानपर देवनिर्मित प्रासादमें रह गया। कालांतरमें लोग वहां आकर बस गये और उसका नाम पाटलिपुत्र पड़ गया।

राजा बिंबसारके प्रपौत्रके समयमें यह नगर मगधकी राजधानी बना। शताब्दियोंतक यह नगर मगधकी राजधानी रहा। यहां सैकड़ों संघाराम और विहार थे पर अब केवल दो बच रहे हैं। नगरके उत्तर दिशामें गङ्गाके किनारे एक छोटासा नगर था। यहां १००० घरोंकी बस्ती थी। नगरके उत्तर एक स्तम्भ था। यहांपर पहले अशोक राजाका नरक बना था। उसके दक्षिण दिशामें अशोक राजाका बनवाया एक स्तूप था। उसके पास ही एक विहार था जिसमें भगवान बुद्धदेवका पद-चिह्न था। यह चिह्न एक फुट आठ इञ्च लम्बा और छः इञ्च चौड़ा था। उसमें चक्र, कमल, स्वस्तिका आदिके चिह्न बने हुए थे। विहारके उत्तर एक स्तम्भ था। उसपर यह लिखा हुआ था कि राजा अशोकने तीन बार समस्त जंबूद्वीपको बुद्ध-धर्म और संघको दान कर दिया था। राजधानीके दक्षिण पूर्व दिशामें कुक्कुटारामका संघाराम था जहां अशोक १००० श्रमणोंको चतुर्विधि दान दिया करता था।

सुयेनच्वांग पाटलिपुत्रमें एक सप्ताह रहा और वहां प्रधान स्थानोंके दर्शनकर तिलाडक गया। तिलाडक पाटलिपुत्रसे दक्षिण-पश्चिम दिशामें सात योजनपर पड़ता था। वहां ए बृहत्संघाराम था। वहां अनेकों विद्वान श्रमण रहते थे। उ लोगोंको जब उसके आगमनका समाचार मिला तो सब मि बाहर आये और आदरपूर्वक उसे ले जाकर वहां ठहराया तिलाडक संघारामसे चलकर वह बुद्ध गयामें पहुंचा।

गयामें बोधिवृक्षका दर्शन किया। बोधिवृक्षके चारों ओ ईंटोंका सुदृढ़ प्राकार बना हुआ था। प्रधान द्वार पूर्व दिशामें था जिसके सामने निरंजना नदी बहती थी। दक्षिण द्वारके सामने एक सुन्दर ताल था जिसमें कमलपुष्प खिल रहे थे, पश्चिम ओर पर्वत पड़ता था और उत्तर द्वारसे उतरकर संघाराम था। बीचमें वज्रासन था। यह वज्रासन सौ पगके घेरे में था। उसके संबंधमें सुयेनच्वांग लिखता है कि "यह विश्वके मध्यमें है और इसका मूल पृथ्वीके मध्यमें एक सोनेके चक्रसे ढक गया है। सृष्टिके आरम्भमें इसकी रचना भद्रकल्पमें होती है। इसे वज्रासन इस कारण कहते हैं कि यह ध्रुव और नाशरहित है और सबका भार इसपर है। यदि यह न होता तो पृथ्वी स्थिर नहीं रह सकती। वज्रासनके अतिरिक्त संसारमें दूसरा कोई आधार नहीं है जो वज्रसमाधिस्थको धारण कर सकता है।" इसी वज्रासनपर बैठकर भद्रकल्पके सहस्र संख्यक बुद्ध बोधिज्ञानको प्राप्त हुए हैं। इसे बोधिमंड भी कहते हैं।

सारा संसार हिले या विचलित हो जाय पर यह स्थान अचल है। आजसे दो सौ वर्ष बीतनेपर लोगोंको बोधिवृक्षके पास आनेपर भी यह वज्रासन न देख पड़ेगा कारण यह है कि संसारसे धर्मका ह्रास होता जा रहा है। आसनके दक्षिण और उत्तर दिशाओंमें अवलोकितेश्वर बोधिसत्वकी दो मूर्तियां पूर्वाभिमुख हैं। जब यह मूर्तियां अन्तर्धान या लुप्त हो जायंगी तब बौद्धधर्म संसारसे उठ जायगा। इस समय दक्षिणकी मूर्ति छातीतक भूमिमें धस चुकी है। प्राकारके भीतर अनेक स्तूप और विहार बने हुए थे और उसके आसपासमें योजन भरतक पग पगपर तीर्थ-स्थान पड़ते थे।

सुयेनच्वांग बुद्ध गयामें आठ नव दिन रह गया और वहांके भगवानके लीलास्थलों और पुण्यस्थानोंका एक एक करके दर्शन और पूजा करता रहा।

नालंद

नालंदके भिक्षु-संघको जब यह समाचार मिला कि सुयेनच्वांग आ रहा है और बुद्ध गयामें पहुंच गया है तो उन लोगोंने चार श्रमणोंको उसे बुद्ध गयामें उसके पास भेजा। यह श्रमण बुद्ध गयामें पहुंचे और सुयेनच्वांगसे मिले। सुयेनच्वांग नवें दिन नालंद विहारको उनके साथ चला और सात योजनपर एक गांवमें जहां विहारकी सोर थी जाकर उतरा। यह गांव आयुष्मान मौद्गलायनका जन्म-स्थान था। यहां दो सौ

भिक्षु और कितने ही गृहस्थ उसके स्वागतके लिये पहलेसे ही उपस्थित थे। वहां कुछ जलपानकर सबके साथ नालंद महा विहारमें पहुंचा। नालंदके श्रमणोंने उसका बड़े आदरसे शिष्टाचारपूर्वक स्वागत किया और उसे ले जाकर स्थविरके पास आसनपर बैठाला और सब लोग संघमें बैठ गये। फिर कर्मदान या 'वेन' ने घण्टा बजानेकी आज्ञा दी और घोषणा कर दी कि जबतक उपाध्याय सुयेनच्वांग इस विहारमें रहें तबतक उनके लिये भिक्षुओंके उपयुक्त सब सामग्रियां पहुंचायी जांया करें। फिर बीस विद्वान श्रमण उसे अपने साथ लेकर महा स्थविर शीलभद्रके पास ले गये।

शीलभद्रके पास पहुंचकर सब लोगोंने महा स्थविरको अभिवादन किया। प्रधान दाताने उसके सामने उपहारको रखकर प्रणिपात किया। फिर शीलभद्रने आसन मंगवाये और सुयेनच्वांग और अन्य सबको बैठनेके लिये कहा। बैठनेके बाद शीलभद्रने सुयेनच्वांगसे पूछा कि आप किस देशसे आते हैं! सुयेनच्वांगने उत्तर दिया कि मैं चीनसे आता हूं और मेरी कामना है कि आपकी सेवामें रहकर योग-शास्त्रकी शिक्षा लाभ करूं।

यह सुन शीलभद्रकी आंखोंमें आंसू भर आये, उसने बुद्धभद्रको पुकारा। बुद्धभद्र शीलभद्रका भतीजा था। उसकी अवस्था सत्तर वर्षसे अधिक थी और शास्त्रों और सूत्रोंमें निपुण और बड़ा वाग्मी था। बुद्धभद्रको बुलाकर शीलभद्रने कहा कि तुम इन लोगोंको मेरे तीन वर्ष पूर्वके रोगकी कथा सुना दो।

युद्धभद्रका हृदय भर आया और आँखोंमें आंसू छलक पड़े। वह अपने आंसू रोककर कहने लगा कि तीन वर्षके पहले उपाध्यायको शूलका रोग हो गया था। जब शूल उमड़ता था तो इतने व्याकुल हो जाते थे कि हाथ पैर पटकने लगते और चिल्लाते थे। जान पड़ता था कि आग लग गयी है या कोई छुरी भोंक रहा है। यह शूल-रोग आपको २० वर्षसे था। पर अन्तमें आकर यह इतना कष्ट देने लगा था कि सहा नहीं जाता था। जीवन भार हो गया था। तीन वर्षकी बात है कि आपने अनशनव्रत करके प्राण छोड़नेकी ठान ली और दाना-पानी छोड़ बैठे थे। आपने रातको स्वप्नमें देखा कि तीन देवता एक तो हिरण्यवर्ण, दूसरा शुद्ध स्फटिक संकाश, और तीसरा रजत वर्ण दिव्य वसन धारण किये आपके पास आये और कहने लगे कि तुम शरीर छोड़नेपर क्यों लगे हो? नहीं जानते कि शास्त्रोंमें लेखा है कि शरीर दुःख भोगनेके लिये मिलता है। उनमें यह नहीं लिखा है कि शरीर घृणाका पात्र है और उसे त्यागना चाहिये। तुम पूर्वजन्ममें राजा थे, तुमने प्राणियोंको बहुत कष्ट दिया था उसीका यह फल तुम पा रहे हो। सोचो और अपने पूर्वजन्मके कर्मोंका ध्यान करो, शुद्ध हृदयसे अपने कर्मोंपर पश्चात्ताप करो, उनके परिणामको शांतिपूर्वक सहन करो, नियमपूर्वक शास्त्रोंका अध्यापन कराओ इससे तुम्हारे कष्ट निवृत्त हो जायेंगे। पर यदि तुम आत्मघात करोगे तो उससे तो दुःखका अन्त होना असम्भव है।

उपाध्यायने उनकी बातें सुनकर बड़ी श्रद्धा और भक्तिसे उन्हें प्रणाम किया। फिर हिरण्यवर्ण पुरुषने शुद्ध स्फटिक संकाश पुरुषकी ओर संकेत करके कहा कि तुम इनको पहचानते हो या नहीं। यह अवलोकितेश्वर बोधिसत्व हैं। फिर रजत वर्ण पुरुषकी ओर संकेत करके कहा यह मैत्रेय बोधिसत्व हैं।

उपाध्यायने फिर मैत्रेय बोधिसत्वकी वंदनाकर उनसे प्रश्न किया कि दास यह नित्य प्रार्थना करता है कि मुझे तुषित-धाममें जन्म मिले और आपकी सभामें रहूं पर न जाने कामना पूरी होगी या नहीं ? यह सुन मैत्रेय बोधिसत्वने उत्तर दिया कि धर्मका प्रचार करो, तुम्हारी कामना पूरी होगी।

फिर हिरण्यवर्ण पुरुषने कहा—मैं मंजुश्री बोधिसत्व हूं। यह देखकर कि तुम अकल्याणकर आत्मघात करना चाहते हो मैं तुमको रोकने आया हूं। तुम हमारे वचनको प्रमाण मानो और धर्मका प्रचार करो, योग-शास्त्रादि ग्रंथोंकी शिक्षा उन लोगोंको दो जिन्होंने अभी उनका नाम न सुना हो। ऐसा करनेसे तुम्हारा शरीर स्वस्थ हो जायगा, तुम्हारा रोग छूट जायगा और तुमको कष्ट न होगा। देखो, भूलना नहीं चीन देशसे एक श्रमण धर्मकी जिज्ञासा करता आवेगा, वह तुमसे अध्ययन करना चाहेगा। उसे ध्यानपूर्वक अध्यापन कराना।

शीलभद्रने इन बातोंको सुनकर वंदना की और कहा कि मैं जैसी आपकी शिक्षा है वैसा ही करूंगा। बोधिसत्व तो चले गये पर उसी समयसे उपाध्यायका कष्ट जाता रहा और फिर शूल नहीं उमड़ा।

सब लोग यह बात सुन चकित रह गये और सुयेनच्वांग अपने मनमें बड़ा प्रसन्न हुआ। वह शीलभद्रके चरणोंपर गिर पड़ा और हाथ जोड़कर कहने लगा कि यदि यह बात है तो सुयेन-च्वांग उससे जहांतक हो सकेगा जी तोड़ कर परिश्रम करके आपसे अध्ययन करेगा और आपकी शिक्षा ग्रहण करके उसका अभ्यास करेगा। भगवन्, क्या आप कृपाकर उसे अपना अंते-वासी बनावेंगे ?

शीलभद्रने कहा, मैं बड़े हर्षसे तुम्हें अपना अंतेवासी बना-ऊंगा पर यह तो बतलाओ कि तुम्हें चीनसे चले हुए कितने दिन हुए। सुयेनच्वांगने कहा मुझे चले तीन वर्ष हुए और जब लेखा मिलाया तो शीलभद्रके स्वप्नका समय और सुयेनच्वांगके चीनसे चलनेका समय मिल गया। इससे और यह देख और भी आनंदित हुआ कि उसमें और सुयेनच्वांगमें गुरु-शिष्यका संबन्ध होनेवाला है।

इतनी बातें हो जानेपर बुद्धभद्र सुयेनच्वांग बालादित्यके विहारमें जहाँ वह रहता था ले गया। वहां उसने उसे चौथे मंजिलपर अपने साथ ठहराया और सात दिनतक अपना अतिथि रखकर उसका आतिथ्य-सत्कार करता रहा। तदनंतर उसे वहाँ एक पृथक् कक्षेमें ठहराया गया और उसकी परिचर्य्याके लिये एक उपासक और एक ब्राह्मण दिये गये। उसकी सवारीके लिये एक हाथी दिया गया। प्रति दिन उसके लिये एक द्रोण महाशालि, १२० जंबीर, २० सुपारी, २० जायफल, २ टंक कपूर

और घी इत्यादि आवश्यक पदार्थ आवश्यकतानुसार मिलने लगे। महीनेमें तीन घड़ा तेल उसके जलानेके लिये बंधेज हो गया।

नालंदके विश्वविद्यालयमें छ संघाराम थे, जिनमें एक गिर गया था और पांच उस समय विद्यमान थे। उसका नाम नालंद पड़नेका यह कारण था कि बोधिसत्वने जब नालंद नामक राजाका जन्म ग्रहण किया था तो यहाँपर एक विहार बनवाया था। नालंद बड़ा दानशील राजा था और वह दीनों और अनाथोंको मुंहमांगा दान देता था। इसीलिये उसका नाम नालंद अर्थात् 'न-अलम-दः' पड़ गया था। नालंदहीके विहारके कारण इस स्थानका नाम नालंद पड़ा। किसीका यह भी मत है कि नालंद एक नागका नाम था जो एक दहमें जो विहारके दक्षिण दिशामें आमके एक बागमें है रहता था।

भगवान बुद्धदेवके समयमें इस स्थानपर आमका एक बाग था। उस बागको ५०० सेठोंने १० कोटि स्वर्णमुद्रापर उसके मालिकसे मोल लिया था और भगवान बुद्धदेवको दान कर दिया था। भगवानने यहां वर्षावासकर उनको तीन मासतक धर्मोपदेश किया था जिससे वे सब अर्हतपदको प्राप्त हो गये थें।

भगवानके निर्वाण प्राप्त हो जानेके बहुत दिन पीछे मगधमें शक्रादित्य नामक राजा हुआ। उसने इस स्थानपर एक संघाराम बनवाया था जिसके मध्यमें एक विहार था। यह विहार उस समयतक बच रहा था, और नित्य वहां ४० श्रमणोंको

भोजन मिलता था। यात्राविवरणमें लिखा है कि शक्रादित्यकी सभामें एक निर्ग्रन्थनैमित्तिक था। उसने विचारकर राजा शक्रादित्यको लिखा था कि 'यह स्थान सर्वोत्तम है। यहां संघाराम बना तो यह विश्वविख्यात होगा और एक सहस्र वर्षतक विद्याका केन्द्र होगा। दूर दूरके विद्यार्थी सब आश्रमके यहां आकर अध्ययन करेंगे। यहांपर एक नाग रहता है। इससे उसे चोट लगी है अतएव बहुतोंके मुंहसे रक्त वमन होगा।'

शक्रादित्यके अनंतर उसका पुत्र बुद्धगुप्त सिंहासनपर बैठा। उसने भी अपने पिताके संघारामके दक्षिण दिशामें दूसरा संघाराम बनवाया। बुद्धगुप्तके अनंतर उसके पुत्र तथागत गुप्तने तीसरा संघाराम शक्रादित्यके संघारामसे पूर्व दिशामें बनवाया। तथागतगुप्तके अनंतर राजा बालादित्य मगधके सिंहासनपर बैठा। उसने चौथा संघाराम उसके उत्तर-पूर्व दिशामें बनवाया। बालादित्यके संघाराममें यह नियम था कि उपासकोंमें जो गृहत्याग कर भिक्षुसंघमें रहते थे जबतक परिव्रज्या ग्रहण नहीं करते थे आयुके अनुसारज्येष्ठता मानी जाती थी। कहावत है कि बालादित्यने संघाराम बनवाकर संघको आमंत्रित किया था। उसमें बहुत दूर दूरसे भिक्षु और उपासक आये थे। संघके लोग बैठ गये थे इसी बीचमें चीन देशके दो भिक्षु वहां पहुंचे। संघने उनसे पूछा कि आप कहांके रहनेवाले हैं और आनेमें देर क्यों हुई? दोनों भिक्षुओंने कहा कि हम चीनके रहनेवाले हैं, हमारे उपाध्याय रोग-ग्रस्त हैं। उन्हींको पथ्य देनेमें देर हो गयी। उनकी

बातें सुनकर सबको आश्चर्य हुआ और राजाको सूचना दी। बालादित्य संघमें आया पर इतनी देरमें वह न जाने कहां चले गये। राजाको विराग उत्पन्न हो गया और वह अपना राज्य युवराजको दे उपासक बनकर संघमें रहने लगा। पर संघमें वह ज्येष्ठ नहीं माना जाता था, कनिष्ट ही समझा जाता था। शक्रादित्यको विराग तो था पर उसमें मानकी एषणा बनी ही थी। उसने इस बातको संघके सामने उपस्थित किया। संघने तबसे यह नियम कर दिया कि इस संघाराममें गृहत्यागियोंमें जबतक वे प्रव्रज्या न ग्रहण करें आयुसे ज्येष्ठता मानी जाय।

बालादित्यके अनंतर उसके पुत्र वज्रादित्यने अपने पिताके विहारके पश्चिम और शक्रादित्यके विहारसे उत्तर पांचवा विहार बनवाया। वज्रादित्यके बाद दक्षिणके एक राजाने इन संघारामों-के पास छठा विहार बनवाया था। इन छः संघारामोंको आवेष्ठन करता हुआ एक सुदृढ़ प्राकार बना था। विद्यापीठ मध्यमें था। उसके किनारे किनारे दीवालसे लगी हुई आठ बड़ी बड़ी कक्षायें थीं। कंगूरे आकाशसे बातें करते थे, नुकीले पर्वत-के समान मनोहर उत्सेध शृंखलाबद्ध बने हुए थे। वेधशालायें इतनी ऊंची थीं कि दृष्टि काम नहीं करती थी और ज्ञान पड़ता था कि उनके चारों ओर कुहरा छाये हुए है। उनके ऊपरका सिरा बादलको छूता हुआ देख पड़ता था। उनके ऊपर ऐसे यन्त्र स्थापित थे जिनसे वायु और वर्षाके आनेका ज्ञान होता था और जिनसे सूर्य्य चंद्रादिके ग्रहण और ग्रहयुद्धका निरीक्षण करते थे।

पासही सुन्दर स्वच्छ जलसे पूर्ण सरोवर था जिसमें नील कमल और रक्तवर्णा कुमुदनी खिली हुई थी। किनारेकी जगहपर आमके उपवन लगे थे, जिनकी छाया निर्मल सरोवरमें पड़ती थी। विहारसे पृथक् अध्ययन करनेवाले भिक्षुओंके रहनेके लिये आवासगृह था। यह चार तल्लेका था। उसमें मोतीके समान श्वेत वर्ण स्तम्भोंकी पंक्ति थी। ऊपर पायड़ी थी और छज्जेकी कड़ियोंके सिरेपर अद्भुत जन्तुओंके सिर बने हुए थे। सबसे ऊपर खपड़ेकी छाजन थी। उसमें सदा १०००० भिक्षु वास करते थे और दूर दूरसे लोग यहां विद्याध्ययन करने आते थे। यों तो भारतवर्षमें उस समय करोड़ों संघाराम थे पर नालंदके विहारकी कुछ और ही बात थी।

विद्यापीठमें हीनयान और महायान, और उनके अठारह निकायों होकी शिक्षा नहीं दी जाती थी अपितु वेद,वेदांग, उपवेद, दर्शन इत्यादि सभी ग्रंथोंकी शिक्षा मिलती थी और सभी संप्रदायोंके लोग आकर विद्याध्ययन करते थे। विद्यापीठमें १५०० उपाध्याय थे जिनमें १००० उपाध्याय ३० ग्रंथोंकी शिक्षा देते थे, ५०० उपाध्याय २० ग्रंथोंका अध्ययन कराते थे और सबका प्रधान उपाध्याय शीलभद्र था जो सब विद्याओंका पारंगत था और समस्त ग्रंथोंकी शिक्षा देनेमें दक्ष था।

७०० वर्षसे यह बड़े २ विनयसंपन्न श्रमणों, अर्हतों और बोधिसत्वोंका आश्रय रहा है। यहांके भिक्षु जो विद्यापीठमें विद्याध्ययन करते हैं बड़े गम्भीर और शांत होते हैं। ७००

वर्षसे जबसे यह विद्यापीठ है यह बात कभी सुनायी भी नहीं पड़ी है कि कभी किसी विद्याध्ययन करनेवाले या इस विहारके रहनेवाले भिक्षु ने विनयपिटकके नियमका उल्लंघन किया हो। विहारके व्ययके लिये इस जनपदके राजाने १०० गांवके योगवलि (मालगुजारी) को प्रदान कर दिया है। इन गांवोंके दो सौ गृहपति प्रति दिन सैकड़ों पिचल (१॥) चावल, सैकड़ों चट्टी (३५) घी-दूध विहारमें पहुंचाते रहते हैं। इतनेमें यहांके विद्यार्थी श्रमणों और ब्रह्मचारियोंका काम चलता रहता है। उनको अपने भोजन, वस्त्र, ओषधि और बिछावनके लिये किसीका मुंह ताकना नहीं पड़ता।

जब विद्यार्थियोंके भरती करनेका समय आता है तब दूर दूरके लोग विद्यापीठमें भरती होनेके लिये आते हैं। यहां उनकी परीक्षा आर्ष और अनार्ष, प्राचीन और नवीन शास्त्रों और ग्रंथोंमें होती है। उपाध्याय लोग उनकी विद्या-बुद्धिकी परीक्षा लेते हैं और जो विद्यार्थी उनकी परीक्षामें ठीक उतरते हैं उनकी भरती विद्यालयमें होती है और उनको विद्यालयमें स्थान दिया जाता है और भोजन वस्त्रादि प्रदान होते हैं।

इस विद्यालयमें बड़े २ विद्वान उपाध्याय अध्यापक हो चुके हैं और हैं यथा धर्मपाल, चन्द्रपाल, गुणमति, स्थिरमति, प्रभामित्र, जिनमित्र, ज्ञानचन्द्र, शीघ्रबुद्ध, शीलभद्र इत्यादि। यह सबके सब शास्त्रकार, व्याख्याता और भाष्यकार थे। इनमें आचार्य्य शीलभद्र तो उस समय विद्यालयका प्रधान उपाध्याय था।

सुयेनच्वांग नालंदके विहारमें भरती होकर कुछ दिन बीतने-पर उपाध्याय शीलभद्रकी आज्ञा लेकर राजगृहके दर्शनके लिये चला। राजगृह नालंद महा विहारके दक्षिण ओर एक दिनकी राहपर था। प्रातःकाल नालंदसे चलकर वह सायं-काल राजगृहमें पहुंच गया।

राजगृह

मगधकी प्राचीन राजधानीका नाम कुशागरपुर था। सहस्रों वर्षसे यह मगधके राजाओंकी राजधानी था। यह मगध देशके मध्यमें था और चारों ओर इसके तुंग पर्वतोंकी मालायें इसे घेरे हुई थीं। पश्चिम दिशामें एक तंग दर्रा था जिससे होकर लोग वहां आ जा सकते थे और उत्तरमें एक विशाल सिंहद्वार था। नगर उत्तर-दक्षिण लंबा था और पूर्व पश्चिममें संकुचित था। इसका घेरा १५० ली था। इसके कुशागरपुर नाम पड़ने-का कारण यह था कि यहांपर एक प्रकारका सुगन्धित कुश उत्पन्न होता था। नगरके मध्यमें एक गढ़ था जिसके आकारके चिह्न ३० लीके घेरेमें दिखायी पड़ते थे। उसके चारों ओर कनकके वृक्षोंका वन था जो बारह महीने फूला करते थे। उन-के फूलोंकी पत्तियां सुनहली रंगकी होती थीं इसी कारण उनको कनक कहते हैं।

नगरके उत्तर-पूर्व चौदह पन्द्रह लीपर गृध्रकूट पर्वत पड़ता था। इस पर्वतमें बहुत सी छोटी २ टीवरियां परस्पर सटी हुई हैं, जिनमें उत्तरकी टीवरीका शृंग बहुत ऊंचा है और दूरसे

देखनेमें गृध्रके आकारका दिखायी पड़ता है। इसी कारण इसे लोग गृध्रकूट कहते हैं। इसपर स्वच्छ निर्मल जलके स्रोत स्थान स्थानपर यहते हैं और सारा पर्वत हरियालीसे ढका हुआ है।

नगरके उत्तर द्वारसे निकलते ही पास ही कारंड वन विहार-का स्थान था जहाँपर भगवान बुद्धदेवने विनयका उपदेश किया था। विहारके पूर्व दिशामें अजातशत्रुका बनवाया वह स्तूप था जिसे उसने भगवान बुद्धदेवके धातुपर जो उसे मिला था बनवाया था।

कारंड वेणु वनविहारके दक्षिण-पश्चिम पाँच-छ लीपर सप्त-पर्णी गुहा पड़ती थी। यहाँपर आयुष्मान कश्यपादि १००० अर्हतोंने भगवान बुद्धके परिनिर्वाण प्राप्त हो जानेपर एकत्र होकर त्रिपिटकका संग्रह किया था। इस संघमें बड़े २ विद्वान् आर्हत एकत्रित हुए थे और साधारण भिक्षुओं और श्रमणों-को उसमें प्रवेश करनेकी आज्ञा न थी। औरोंकी तो बात ही क्या है स्वयं आनन्दको जो भगवान बुद्धदेवके प्रिय शिष्योंमें थे आयुष्मान कश्यपने यह कहकर रोक दिया था कि तुम्हारे राग अभी नहीं गये हैं, यहाँ आकर संघको दूषित मत करो। कहते हैं कि आनन्द श्रमपूर्वक उसी रातको तीनों लोकके बंधन-से मुक्त होकर अर्हतपद प्राप्त हो गया। फिर जब वह सप्तपर्णी गुहामें पहुंचा तो कश्यपने आनन्दसे पूछा कि क्या तुम बंधन-मुक्त हो गया? आनन्दने कहा हाँ। कश्यपने कहा फिर मुक्त-

के लिये द्वार खोलनेका क्या काम है, चले आओ। आनन्द भीतर पहुंच गया और सब अर्हतोंने मिलकर भगवान बुद्धदेव के वचनोंका संग्रह किया। आनन्दने सूत्रपिटकका, उपालीने विनयपिटकका और कश्यपने अभिधर्मपिटकका संग्रह किया। यह संघ तीन मासतक वर्षासनुमर रहा और पिटकोंको ताड़ पत्रपर लिखकर एकत्रित किया गया। यह स्थविर निकायके नामसे प्रख्यात है।

सप्तपर्णी गुहासे पश्चिम यह स्थान पड़ता है जहांपर महा संघिक निकायके त्रिपिटकका संग्रह हुआ था। यहांपर अशोक-का बनवाया एक स्तूप है। यहांपर वह श्रमण जिनको सप्तपर्णी गुहामें प्रवेश नहीं मिला था सहस्रोंकी संख्यामें एकत्रित हुए थे और पांच पिटकोंका जिनके नाम सूत्रपिटक, विनयपिटक, अभिधर्मपिटक, संयुक्तपिटक और धारिणीपिटक था संग्रह किया था। इस संग्रहका नाम महासंघिक निकाय है, कारण यह है कि इस संघमें अर्हत, श्रमण, भिक्षु और साधारण लोग सभी सम्मिलित हुए थे।

यहांसे उत्तर-पूर्व दिशामें तीन चार लीपर राजगृह नगर पड़ता था। बाहरके प्रकार गिर गये थे पर नगरके भीतरके प्रासादकी दीवालें उस समयतक बच रही थीं। नगर बीस ली-के घेरेमें था और केवल एक द्वार था। कहते हैं कि कुशागरपुर-में बिंबसार राजाके कालमें आग लगा करती थी कारण यह था कि वहांकी बस्ती बड़ी घनी थी और घर पास पास सटे

हुए थे। निदान यह राजाज्ञा हुई कि सब लोग सजग रहें और जिस घरसे आग लगेगी उसके अधिवासीको नगरसे निकलकर श्मशानमें जाकर रहना पड़ेगा। थोड़े दिन बीतनेपर राजप्रासादसे आग लगी और सारा प्रासाद जलकर राख हो गया। राजाने यह कहा कि यह आज्ञा मैंने दी थी यदि मैं आप इसका पालन न करूंगा तो अन्य लोगोंको इसके माननेके लिये मैं कैसे बाधित कर सकूंगा। उसने श्मशानमें अपना प्रासाद बनवाया और नगरके शासनका भार युवराज अजातशत्रुको सौंप वहीं स्वयं जाकर रहने लगा।

जब वैशालीके राजाको यह समाचार मिला कि बिंबसार कुशागरपुरको त्यागकर निर्जन श्मशानमें आकर रहता है तो उसने चढ़ाईकर उसे पकड़ लानेका विचार किया। जब इसका पता बिंबसारको मिला तो उसने उस स्थानको चारों ओरसे प्राकार बनवाकर सुदृढ़ कर लिया। फिर तो वहां एक नगर बस गया। उस नगरका नाम राजगृह पड़ा; कारण यह था कि पहले पहल वहां राजाहीका घर बना था।

बिंबसारके अनन्तर राजा अजातशत्रुने इसे अपनी राजधानी बनायी तबसे यह बहुत दिनोंतक मगधकी राजधानी रही। राजा अशोकने अपने शासन-कालमें इसे ब्राह्मणोंको दान कर दिया था। वहां उस समय एक सहस्रसे ऊपर ब्राह्मणोंकी बस्ती थी।

सुयेनच्वांग राजगृहमें दर्शन और पूजा करके इंद्रशील गुहाको गया। इन्द्रशील गुहा राजगृहसे पूर्व दिशामें १३० लीपर

पड़ता था। पर्वतकी पूर्वकी ढालपर हंस नामक संघाराम था। यह संघाराम हीनयानवालोंका था। कहते हैं कि एक बार इस संघारामका येन या कर्मदान बड़ी चिन्तामें पड़ा था। कारण यह था कि उसके पास श्रमणोंको प्रदान करनेके लिये अन्न न था। कर्मदानने देखा कि आकाशमें हंसोंकी एक धांग उड़ी जा रही है। उसने कहा कि आज भिक्षुओंके लिये भोजन नहीं है आप इसपर ध्यान दें। हंसोंका सरदार उसकी बात सुनकर ऊपरसे गिर पड़ा और अपने प्राण दे दिये। उसे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ और संघारामके सब भिक्षु वहां दौड़े हुए आये। सबोंने देखकर कहा कि यह बोधिसत्व है। इसके मांसका खाना कदापि उचित नहीं है। तथागतने छूत, दृष्ट और उद्दिष्टको छोड़कर मांस खानेका विधान किया था अवश्य पर उन्होंने यह भी तो कहा था कि यह समझना ठीक नहीं है कि इसमें परिवर्तन नहीं हो सकता। अतएव आजसे हम मांसका परित्याग करते हैं। यही महायानका आरंभ है। उस समयसे लोगोंने मांसका परित्याग करनेका व्रत लिया और उस हंसके ऊपर स्तूप बनाया। तबसे इस संघारामका नाम हंसविहार पड़ा।

सुयेनच्वांग चारों ओरके पवित्र स्थानोंके दर्शन और पूजा करते हुए राजगृहसे नालंद वापस आया।

अध्ययन

नालंद वापस आकर वह वहां पांच वर्षतक रहा। वहां रहकर उसने उपाध्याय शीलभद्रसे सबसे पहले योगशास्त्रका

अध्ययन करना आरंभ किया । योगशास्त्रकी व्याख्याके समय सहस्रों भिक्षु एकत्रित होते थे । एक दिनकी बात है कि व्याख्या समाप्त हो चुकी थी कि देखा गया कि संघके बाहर एक ब्राह्मण खड़ा था। वह पहले रोया और पीछे हँसने लगा। लोगोंने उससे जाकर पूछा कि तुम कौन हो और क्यों तुम पहले रोये और फिर क्यों हँसे।

उसने कहा कि मेरा घर पूर्वमें है। मैंने पोतरकगिरिपर अवलोकितेश्वर बोधिसत्वके आगे यह संकल्प किया था कि मैं राजा होऊँ। बोधिसत्वने मुझे दर्शन दिया और कहा कि ऐसा संकल्प मत करो। इतने दिन बीतनेपर अमुक संवत्सर, अमुक मास और अमुक तिथिको आचार्य शीलभद्र नालंदमें चीन देशके एक श्रमणको योगशास्त्रका अध्ययन करना आरंभ करेंगे। वहां जाकर तुम उनकी व्याख्याका श्रवण करो, उससे तुमको भगवान् बुद्धदेवके दर्शन होंगे। राजा होकर क्या ले लोगे!

मैं इसी लिये यहां आया। उपाध्यायका मैंने दर्शन किया, मैंने चीनके श्रमणको देखा और योगशास्त्रकी व्याख्याका श्रवण किया। मुझे सब फल मिल गये। शीलभद्रने उसकी बातें सुनकर कहा कि तुम यहीं पन्द्रह मास रह जाओ और योगसूत्रकी व्याख्याको श्रवण करो। ब्राह्मण वहां पन्द्रह मासतक रह गया और नित्य योगशास्त्रकी व्याख्याको श्रवण किया। व्याख्या समाप्त हो जानेपर उपाध्याय शीलभद्रने उस ब्राह्मणको अपने एक आदमीके साथ शिलादित्य राजाके पास भेज दिया और

शिलादित्यने उसे तीन गांवका भोगवलि उसके भरण-पोषणके लिये प्रदान कर दिया।

सुयेनच्वांगने उपाध्याय शीलभद्रसे तीन पारायण योगशास्त्रका किया तथा न्यायानुसार, हेतुविद्या, शब्दविद्या, प्राण्यमूलकी टीका, शतशास्त्रादि ग्रंथोंका अध्ययन किया। कोशविभाषा और षट्पदाभिधर्मका अध्ययन वह कश्मीरमें ही कर चुका था। अनंतर जो उसे शङ्कायें थीं उनको एक एक करके समाधान कराया। इस प्रकार उसने बौद्धशास्त्रोंका अध्ययनकर ब्राह्मणोंके ग्रन्थोंका अध्ययन आरम्भ किया। उसने शब्दशास्त्र वा व्याकरणका अध्ययन किया।

भारतवर्षके लोग अपनी लिपिको ब्राह्मी और अपने धर्मग्रंथोंकी भाषाको देववाणी कहते थे। उनका कथन था कि कल्पारम्भमें ब्रह्मा उनका उपदेश देवताओं और मनुष्योंको करता है। इसी कारण उसे 'ब्रह्म' कहते हैं और वह लिपि ब्राह्मी कहलाती है। इसमें सौ कोटि श्लोक थे। पुन वैवर्त कल्पमें देवराज शक्रने उसको संक्षेप करके दस कोटि श्लोकोंमें लिखा था। पुनः गांधार देशके शालतुर ग्रामनिवासी एक ब्राह्मणने जिसका नाम पाणिनि था उसे संक्षेप कर ८००० श्लोकोंमें किया। अन्तमें दक्षिण भारतके एक पंडितने वहांके राजाकी आज्ञासे उसका सारांश २५०० श्लोकोंमें संक्षेप करके लिखा।

व्याकरणके श्लोकोंकी संख्या १००० है। उसके धातुपाठ ३०० श्लोकोंके हैं। दो गण पाठ हैं—एक मंडक जो

३००० श्लोकात्मक है, दूसरा उणादि जो २५०० श्लोकात्मक है। इनके अतिरिक्त ८०० श्लोकोंकी अष्टाध्यायी है। संस्कृत भाषामें दो प्रकारकी विभक्तियां होती हैं। तिंगंत और सुबन्त। तिंगंतकी अठारह विभक्तियाँ होती हैं और सुबन्तकी विभक्तियाँ चौबीस हैं। तिंगंतकी विभक्तियाँदो प्रकारकी होती हैं। आत्मनेपदी और परस्मैपदी। दोनों विभक्तियां तीन तीनके समूहोंमें विभक्त हैं और क्रमशः वे एक वचन, द्विवचन और बहु वचनके लिये लायी जाती हैं। इस प्रकार पहली तीन विभक्तियाँ प्रथम पुरुष की, दूसरी तीन मध्यम पुरुषकी और अन्तकी तीन उत्तम पुरुषकी विभक्तियाँ कहलाती हैं।

इसी प्रकार २४ सुबन्त विभक्तियोंके तीन तीनके आठ समूह होते हैं जिनको, प्रथमा, द्वितीया, तृतीया इत्यादि, कहते हैं। कर्ताके अर्थमें प्रथमा, कर्ममें द्वितीया, करणमें तृतीया, संप्रदानमें चतुर्थी, अपादानमें पंचमी, संबन्धमें षष्ठी, अधिकरणमें सप्तमी और आह्वानमें अष्टमी विभक्ति लगायी जाती है। संस्कृत भाषामें लिङ्ग तीन होते हैं—पुल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग।

व्याकरणशास्त्रका अध्ययन समाप्तकर सुयेनच्वांगने ब्राह्मणों के अन्य ग्रंथोंका अध्ययन आरंभ किया और पांच वर्षमें ब्राह्मणों और बौद्धोंके ग्रंथोंका अध्ययन समाप्तकर वह नालंदसे हिरण्यपर्वतके जनपदको रवाना हुआ।

अवलोकितेश्वरकी मूर्ति

मार्गमें उसे कपोत नामक संघाराम मिला। इस संघाराम-

के दक्षिणमें एक पहाड़ी थी। उसकी ऊंची चोटी और विषम ढाल हरियालीसे ढकी हुई थी जहाँ स्वच्छ निर्मल जल-स्रोत प्रवाहित थे और रंग बिरंगके फूलोंसे लदी झाड़ियाँ और लतायें चतुर्दिकको अपनी सुगन्धसे सुवासित कर रही थीं। सारी पहाड़ी पग पग तीर्थोंसे भरी थी। संघारामके मध्यमें एक विहार था जिसमें अवलोकितेश्वर बोधिसत्वकी चन्दनकी मूर्ति है। यहांपर दसों आदमी एक एक सप्ताह, पखवारे पखवारे अनशन व्रतका अनुष्ठान करते हैं। कभी कभी ऐसा भी होता है कि बोधिसत्व उनको साक्षात् दर्शन देते हैं और उनकी मनोकामनायें पूरी करते हैं।

मूर्तिके चारों ओर सात पगकी दूरीपर कठघरा बना हुआ है और पूजा दर्शन करनेवाले कठघरेके बाहरसे खड़े होकर दर्शन-पूजा करते हैं। लोग बाहरसे खड़े होकर अपनी मनोकामना पूरी होनेके अभिप्रायसे फूल और माला मूर्तिपर चढ़ानेके लिये फेंकते हैं जिसके माला और फूल मूर्तिके हाथपर वा गले आदिपर पड़कर रुक जाते हैं वह समझ लेते हैं कि हमारी प्रार्थना स्वीकार हो गयी और पूरी हो जायगी। सुयेनच्वांगने यहां पहुंचकर भांति भांतिके फूलोंको तागेमें पोहकर उनकी मालायें बनायीं। उनको लेकर वह विहारमें गया और बड़ी श्रद्धा-भक्तिसे प्रणिपातकर अपने मनमें यह तीन कामनायें करके प्रार्थना पूर्वक फेंकने लगा:—

१—क्या मैं यहां विद्याध्ययनकर कुशलपूर्वक अपने देशको

पहुंच जाऊंगा ? यदि ऐसा हो तो मेरा यह माला बोधिसत्वके हाथपर पड़े।

२—क्या मैं अपने पुण्यकर्मोंके प्रभावसे जन्मांतरमें तुषित धाममें जन्म ग्रहणकर मैत्रेय बोधिसत्वकी परिचर्या करूंगा ? यदि मेरी यह कामना पूरी हो तो यह माला बोधिसत्वकी भुजाओंपर पड़े।

३—शास्त्रोंमें लिखा है कि संसारमें अभव्य जीव भी हैं जो कभी बुद्धत्वको प्राप्त न होंगे। मुझे मालूम नहीं कि मैं किस प्रकारका प्राणी हूं। यदि मैं सद्मार्गगामी हूं और जन्मांतरमें कभी बोधिज्ञान मुझे प्राप्त होनेको है तो मेरा यह माला बोधिसत्वके गलेमें पड़े।

सुयेनच्वांगकी फेंकी हुई तीनों मालायें हाथ,भुजा और कंठमें पड़ीं। वह यह देख बहुत प्रसन्न हुआ और पुजारियोंने करतलध्वनि की और कहा कि यह आश्चर्यकी बात है। हमलोगोंकी प्रार्थना है कि यदि आप बोधिज्ञानको प्राप्त हों तो कृपाकर पहले आकर हमलोगोंको उपदेशकर हमें त्राण दीजियेगा। भूलियेगा नहीं।

कपोतविहारसे चलकर वह हिरण्यपर्वतको गया। राजधानीके दक्षिणमें वहां एक स्तूप था। इस स्थानपर भगवान बुद्धदेवने तीन मास तक धर्मोपदेश किया था। उसके पश्चिम एक और स्तूप था। इसके संबन्धमें उसने वहांके अधिवासियोंसे सुना कि प्राचीन कालमें इस नगरमें एक गृहपति रहता था। वृद्धावस्थामें उसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसने उस पुरुषको जिसने

उसे पुत्र जन्मका समाचार सुनाया दो कोटि स्वर्णमुद्रा प्रदान की थी। इस कारण उसके पुत्रका नाम श्रुत विंशकोटि पड़ा था। लाड़प्यारके कारण लोग बालकको हाथोंहाथ गोदमें लिये रहते थे और वह भूमिपर पैर नहीं देने पाता था। भूमिमें पैर न रखनेके कारण उसके पैरके तलवोंमें लोम जम आये थे। गृहपति अपने पुत्रको बहुत प्यार करता था। लोकनाथने उसे भव्य-ज्ञान मौद्गलायनको आज्ञा दी कि तुम हिरण्यपर्वतमें जाकर उस बालकको उपदेश दो। मौद्गलायन उसके द्वारपर आया पर किवाड़ बंद था। उसे भीतर जानेका मार्ग न मिला। उस समय गृहपति भगवान सूर्य्यका उपासक था। वह नित्य सूर्य्योदयके समय सूर्य्यकी पूजा करके उनकी परिक्रमा और उपस्थान किया करता था। उस समय वह अपने पुत्र सहित सूर्य्यदेवकी पूजा कर रहा था। मौद्गलायनने जब देखा कि द्वार बंद है तो वह सूर्य्य-मंडलमें पहुँचा और वहाँ अपनी झलक दिखाकर सूर्य्य राशिके सहारे गृहपतिके आगे आकर प्रगट हुआ। गृहपतिके बालकने मौद्गलायनको भगवान आदित्य समझ उनकी पूजा सुगंधित तंडुल और पुष्पसे की। मौद्गलायन बालकको उपदेश दे और उसकी पूजाको ग्रहणकर वेणुवन-विहारमें आये। तंडुल जो उस बालकने उनको प्रदान किया था इतना सुगंधित था कि सारा राजगृह उसके सुगंधसे भर गया। राजा विंबसारने उसकी गंध पा अपने अनुचरोंको आज्ञा दी कि जाकर पता लगाओ कि यह सुवास कहाँसे आ रही है। वह

लोग पता लगाते हुए वेणुवनविहारमें पहुँचे। वहां देखा कि मौद्गलायनके पात्रके चावलसे यह सुगंध आ रही है। मौद्गलायनसे पूछनेपर उनको मालूम हुआ कि हिरण्यपर्वतके एक गृहपतिने उनको यह चावल अर्पण किया है। अनुचरोंने जाकर इसकी सूचना महाराज विंबसारको दी। विंबसारने उस गृहपतिके पुत्रको अपनी राज-सभामें बुला भेजा। गृह-पतिका पुत्र अपने मनमें यह विचारने लगा कि किस सवारीपर मैं राजगृह चलूँ। उसने अपने मनमें सोचा कि यदि मैं नौकापर जाऊँ तो आंधीका भय है, गजरथपर जाऊं तो हाथियोंके बिगड़नेका डर है; अन्य सवारियोंपर जानेसे पैर भूमिपर रखना पड़ेगा। निदान उसने बहुत सोच-विचारकर अपने नगरसे राजगृहतक नहर खुदवायी और उसमें सरसों भरवा दिया। फिर उसमें एक सुन्दर नाव बनवा कर छुड़ाई और आप अपने साथियों सहित उस नौकापर बैठा। मल्लाह उस नौकाको रस्सीके सहारे खींचकर राजगृहको ले चले। वह पहले भगवान बुद्धके पास गया। वहाँ भगवानको वंदना करके बैठ गया। भगवानने उससे कहा कि विंबसार राजाने तुमको तुम्हारे पैरके तलवेके लोमको देखनेके लिये बुलवाया है। राजाके दरबारमें जाकर पालथी मारकर इस प्रकार बैठना कि पैरके तलवे ऊपरसे देख पड़ें, पैर फैलाकर कभी मत बैठना। ऐसा करनेसे देश-धर्मका उल्लंघन होगा। गृहपति भगवानकी आज्ञा पाकर राजा विंबसारकी सभामें गया और राजा विंबसारके पास जाकर वह जिस प्रकारसे भगवान

बुद्धदेवने कहा था पालथी मारकर बैठा। राजा उसका इस प्रकार बैठना देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और वह उसके पद-तलके लोमको देखकर उसे बड़े आदरसे विदा किया। वहांसे वह भगवान बुद्धदेवके पास आया। वहाँ उनके धर्मोपदेशोंको सुनकर उसके ज्ञानके किवाड़ खुल गये। वह उनकी शरणको प्राप्त होकर अर्हतको प्राप्त हुआ।

हिरण्यपर्वतमें उस समय दो प्रधान विहार थे जिन्हें थोड़े दिन हुए एक सामंत राजाने यहांके राजाको परास्तकर बनवाया था और इस देशको जीतकर भिक्षु संघको समर्पण कर दिया था। यहाँ दो परम विद्वान श्रमण जिनके नाम तथागत-गुप्त और क्षान्तिसिंह थे रहते थे। वे सर्वास्तिवाद निकायके अनुगामी थे और अनेकों शास्त्रोंके तत्वज्ञ थे। सुयेनच्वांग उनके पास एक वर्ष तक ठहर गया और वहां रहकर विभाषा, न्यायानुसार आदि ग्रंथोंको उनसे पढ़ता और मनन करता रहा।

वहांसे वह हिरण्यपर्वतकी दक्षिणसीमापर आया। वहां गंगाके किनारे एक छोटासा पर्वत था। पूर्व समयमें भगवान बुद्धदेवने इस स्थानपर बकुल नाम यक्षको दमन करके उसे धर्मका उपदेश दिया था। यहांसे वह गंगा उतरकर चम्पाके जनपदमें पहुँचा।

चंपानगर उस समय गंगा नदीके दक्षिण तटपर था। उसके चारों ओर ईंटोंके सुदृढ़ प्राकार बहुत ऊंचे बने हुए थे।

प्राकारके बाद पनियाँ सोत आई थी। इस नगरके संबन्धमें उसने यहाँके लोगोंसे यह गाथा सुनी कि पूर्व कालमें कल्पारम्भमें लोग गुहाओंमें रहा करते थे और घर नहीं बनाते थे। उस समय स्वर्गसे एक देवी इस भूमिपर आयी। वह गंगाके किनारे विचरती और गंगाके जलमें क्रीड़ा करती रहती थी। दैवयोगसे उसे कुछ काल बीतनेपर चार बालक उत्पन्न हुए। उस समय इस संसारमें कोई राजा न था। उसके चारों बालक समस्त जम्बूद्वीपके राजा हुए और चारों इस द्वीपको परस्पर विभाजितकर चार नगर बसाकर इसका शासन करने लगे। यह चंपानगर उन्हीं चार प्रधान नगरोंमें है, जिन्हें उन चारों कुमारोंने जम्बूद्वीपमें बसाया था।

इस जनपदके दक्षिणमें महावन है। उसमें सिंह, व्याघ्र, हाथी आदि भरे पड़े हैं। वहांके हाथी बड़े ऊंचे होते हैं। हिरण्य और चंपादेशमें उसी जंगलसे हाथी पकड़कर आते हैं। यहाँकी सेनामें हाथियोंकी संख्या बहुत अधिक है। यहाँ हाथी रथोंमें जोते जाते हैं।

उस जंगलके विषयमें वहाँ यह गाथा उसे सुननेमें आयी कि भगवान बुद्धदेवके जन्मके पूर्व यह एक गोप था जो वनमें अपनी गायोंको लिये चराया करता था। जब वह अपनी गायोंको जंगलके पास लेकर पहुंचता था तो एक बैल झुंडसे अलग होकर जंगलमें घुस जाता और वहांसे जब वह अपनी गायोंको हांककर घर चलने लगता तब आता। उसका वर्ण अत्यन्त शुभ्र हो गया था और वह इतना बलिष्ठ और तेजस्वी था कि जितने

गाय बैल थे सब उसे देखकर भयभीत होते थे और उसके पास कोई जाते न थे। गोप उसकी यह दशा देखकर इसकी खोजमें लगा कि उसके ऐसे रूप और बलसंपन्न होनेके कारण क्या है ? वह दिनको झुंडसे निकल कर कहां चला जाता है ? निदान वह एक दिन जब अपनी गायोंको लेकर जंगलके पास पहुंचा और वह बैल झुंडसे निकलकर जंगलमें घुसने लगा तो वह उसके पीछे लग गया। बैल जंगलमें जाकर एक कंदरामें घुसा, गोप भी उसके पीछे लगा हुआ उसमें घुस पड़ा। उस अंधकार मार्गमें होकर दो ढाई कोस जानेपर उसे प्रकाश दिखायी पड़ने लगा और आगे जाकर एक उपवन मिला। उसमें भांति भांतिके फूल खिले हुए थे, वृक्ष फलोंसे लदे हुए स्थान स्थानपर खड़े थे। वहांके फूलों फलों और वृक्ष-वनस्पतियोंसे दिव्य ज्योति निकलती थी जिससे आंखें चौंधिया जाती थीं। वहां जाकर उसने देखा कि वह बैल वहां पहुंचकर एक वनस्पति चर रहा है। वह वनस्पति पीले रंगकी और बड़ी ही सुगंधित थी। उस प्रकारकी वनस्पति उसने संसारमें कभी न देखी थी। गोप बागमें गया और वहांसे कुछ सुन्दर २ सुनहले फल तोड़े। फल बड़े ही सुगंधित थे, उसका मन उनको खानेके लिये ललचाया। पर उसे खानेका साहस न पड़ा। बैल चरकर उस उपवनसे निकला और गोप भी उसके पीछे चला। वह गुहाके मार्गपर पहुंचा और निकलना ही चाहता था कि एक राक्षसने उससे उन फलोंको जिन्हें वह वहांसे तोड़कर ले चला था छीन लिया।

वहाँसे आकर उसने एक पंडितसे वहाँका समाचार कहा। उस कहा कि अनजाने फलका खाना कदापि उचित नहीं है। अच्छा किया जो तुमने उन्हें वहां खाया नहीं। पर एक बातपर ध्यान रखो अब जब कभी वहां जाना तो किसी न किसी उपायसे एकाध फल अवश्य ले आनेका प्रयत्न करना।

दूसरे दिन जब उसकी गायें जंगलके किनारे पहुंचीं तो वह बैल झुंडसे निकलकर जंगलमें घुसा और गोप भी उसके पीछे लगा हुआ चला। वह उस गुफासे होकर उस उपवनमें पहुंचा। वहाँसे वह जब चलने लगा तो दो चार फल तोड़कर अपनी छातीके पास छिपाकर बैलके पीछे पीछे चला। गुहापर पहुंच-कर जब वह निकलने लगा तो राक्षसने उसे पकड़ा और फल छीनने लगा। गोपने फलको अपने मुंहमें डाल लिया। राक्षसने उसके मुंहको पकड़ा पर गोप उसे निगल गया। फलका भीतर पहुंचना था कि उसका शरीर फूलने लगा। गुहासे उसका सिर कठिनाईसे निकल पाया था कि उसका शरीर इतना फूल गया कि वह उसमें अटक गया और बाहर न निकल सका।

कई दिनतक जब उसका कुछ समाचार न मिला तो उसके कुटुंबवाले घबराये और उसे खोजने निकले। खोजते हुए वे लोग वहाँ गुफाके द्वारपर पहुंचे और उसकी यह दशा देखकर बड़े दुखी हुए। उस समय उसमें बोलनेकी शक्ति रह गयी थी, उसने उन लोगोंसे अपना सारा समाचार कह सुनाया। वे लोग वहांसे लौटे और बहुतसे लोगोंको लेकर वहांपर गये और

बलपूर्वक उसे खींचकर बाहर निकालनेकी चेष्टा करने लगे। पर उनका सब परिश्रम निष्फल हुआ। वह बाहर न निकाल सके और विवश हो रो कलपकर अपने घर लौट गये। राजाको जब यह समाचार मालूम हुआ तो कुतूहलवश वह उस स्थानपर उसे देखनेके लिये स्वयं गया और बहुतसे खोदनेवालोंको आज्ञा दी कि गुफाके द्वारको खोदकर उसे निकाल लो पर वह वहाँसे हिल न सका और वहीं ही पड़ा रह गया।

कालांतरमें वह वहीं पड़े पड़े पत्थर हो गया। पीछेके कालमें एक और राजा इस देशमें हुआ था। उस समय वह गोप पत्थर हो गया था। राजाने उसकी कथा सुनकर यह विचारा कि जब वह फलके खानेसे पत्थर हो गया है तो संभव है कि उसके पत्थरके शरीरका प्रयोग किसी ओषधके काममें आ सके। यह विचार उसने अपने अमात्यको आज्ञा दी कि तुम वहां जाकर पत्थर काटनेवालोंको बुलाकर कहो कि छेनीसे उसे काटकर कुछ टुकड़े निकालें और उन्हें लेकर हमारे पास लाओ। अमात्य उस स्थानपर गया और पत्थर काटनेवालोंको उसे काटने-पर लगवा। वे लोग दस दिनतक छेनी लेकर काटनेकी चेष्टा करते रहे पर उसके ऊपर छेनी काम नहीं करती थी। निदान निराश हो वह उनके साथ राजाके पास वापस आया। उसकी पत्थरकी मूर्ति अबतक वहां ज्योंकी त्यों पड़ी है।

इंपासे पूर्व दिशामें चलकर सुयेनच्वांग कजुघरके जनपदमें पहुंचा। वहां उस समय कोई राजा नहीं था। राजधानी उजाड़

पड़ी थी। राजा शिलादित्य जब यहां आता था तो छप्परकी छावनी बनवाकर रहता था। गंगाके किनारे एक ऊंचा विहार था जिसके चारों ओर देवताओं और भगवान बुद्धकी प्रतिमायें स्थापित थीं। कजुघरसे गंगा पारकर वह पुंड्रवर्द्धन देशमें गया। यहाँ उसने पहले पहल कटहलके फलको देखा। पुंड्रवर्द्धन नगरसे पश्चिम पो-चि-श संघाराम था जिसके पास अशोक राजाका स्तूप बना था। यहां तथागतने दो तीन मासतक धर्मका उपदेश किया था। यहां दर्शन और पूजा करके वह दक्षिण पूर्व दिशामें कई दिन चलकर कर्णसुवर्ण नगरमें पहुंचा। कर्णसुवर्णमें उसे दो ऐसे संघाराम मिले जिनके भिक्षु देवदत्तके अनुयायी थे और दूध और घीको हाथसे नहीं छूते थे। वहांसे अनेक स्तूपों और संघारामोंको देखता हुआ वह 'समतट' नामक देशमें गया। यह देश समुद्रके किनारे था और यहाँ एक संघाराममें उसे भगवानकी एक मूर्ति काले पत्थरकी देखनेमें आयी। मूर्ति बहुत सुन्दर बनी थी और उसमेंसे इतनी मनोहर गंध निकलती थी कि सारा विहार गमक उठता था। इसके अतिरिक्त उसमेंसे दिव्य प्रकाश भी निकलता था जिसे देखकर लोग विस्मयापन्न हो जाते थे।

समतटके उत्तर पूर्व दिशामें एक पर्वतके उस पार समुद्रके किनारे श्रीक्षेत्र, कामलंका, द्वारपति, ईशानपुर, महाचंपा और यमराज, नाम छः जनपद पड़ते थे। सुयेनच्वांग उन जनपदोंमें न जाकर समतटसे पश्चिमको फिरा और ताम्रलिप्तिमें पहुंचा। ताम्रलिप्ति

समुद्रकी खाड़ीके किनारे थी। वहां अशोकका एक स्तूप भी था। यहां जाकर उसने सुना कि समुद्रके मध्यमें ७०० योजनपर सिंहल नामक द्वीप है। वहां स्थविरनिकायके अनुयायी भिक्षु रहते हैं। वे योगशास्त्रकी व्याख्या बहुत अच्छी करते हैं। उसने वहां दक्षिणके एक श्रमणसे लंका या सिंहलद्वीप जानेकी बात चलायी और वहांका मार्ग पूछा। उसने कहा कि समुद्रके मार्गसे सिंहलद्वीप जाना बहुत कठिन है। मार्गमें आँधी, तूफ़ान, समुद्रकी लहरों और यक्षोंसे बड़ी बड़ी बाधायें पड़ती हैं। सुगम मार्ग यही है कि आप भारतवर्षके दक्षिण-पूर्वके अन्तरीप तक चले जाइये। वहांसे सिंहलद्वीपको तीन दिनमें समुद्रसे होकर पहुंच जाइयेगा। मार्गमें आपको पहाड़ों और घाटियोंसे होकर जाना तो पड़ेगा पर राह बुरी नहीं है और एक तो समुद्रकी विपत्तियोंसे बचियेगा दूसरे मार्गमें उड़ीसा आदि देशोंके तीर्थस्थानोंका दर्शन करते जाइयेगा। सुयेनच्वांगको उसकी सम्मति भली जान पड़ी और वह ताम्रलिप्तिसे उड़ीसाको रवाना हुआ।

उड़ीसामें उस समय चरित्र नामक बंदर था। वहाँ दूर दूरसे व्यापारी अपनी विविध भांतिके पण्य द्रव्योंसे लदी नौका लाते थे और उतारते थे। वहां आने जानेवाली नावोंके ठाट लगे रहते थे। उसका कहना है कि यहांसे सिंहलद्वीप २०००० ली दक्षिण दिशामें पड़ता है और वहां दंत स्तूपपरके रत्नकी चमक यहांसे जब आकाश निर्मल रहता है रातको दिखाई

पड़ती है और वह आकाशमें तारेकी भांति चमकता हुआ देख पड़ता है।

उड़ीसा होकर सुयेनच्वांग कोण्योध (गंजाम) में गया और कोण्योधसे कलिंग देशमें गया। यहाँ आकर उसने सुना कि पूर्वकालमें यह देश जनसम्पन्न था पर एक ऋषिके शाप देनेसे जनक्षय हो गया, आबाल वृद्ध सबका नाश हो गया और सारा देश निर्जन और उजाड़ हो गया। अन्य देशोंसे लोग आ आकर यहाँ बसे हैं और अबतक यहांकी बस्ती उजाड़ ही है।

कलिंगसे सुयेनच्वांग दक्षिण-पश्चिम दिशामें चलकर दक्षिण कोशलमें गया। यहांका राजा वर्णका क्षत्रिय था। वह विद्य और शिल्पका बड़ा प्रेमी था और बौद्धधर्मपर उसको बड़ी श्रद्धा और भक्ति थी। राजधानीके दक्षिण एक पुराना संघाराम था जिसके पास अशोकका एक स्तूप था। यहां भगवान बुद्धदेवने तीर्थियोंको पराजय करनेके लिये अपने बुद्धिबलको प्रदर्शित किया था। यहां राजा 'शहाह'के समय सिद्ध नागार्जुन पधारे थे और राजाको श्रद्धा और भक्ति देखकर वह यहां रहे थे। उस समय नागार्जुन बोधिसत्व बहुत वृद्ध हो चुके थे। उसी समय सिंहलद्वीपसे देव बोधिसत्व यहां आया था। जब वह यहां आया तो सिद्ध नागार्जुन बोधिसत्वके पास जाना चाहा, और द्वारपालसे नागार्जुनके पास सूचना भेजी। नागार्जुनने उसके पास एक जलपूर्ण पात्र भेज दिया जिसे देख देव बोधिसत्वने उसमें एक सुई डाल दी और पात्रको लौटा

दिया। नागार्जुन बोधिसत्वने देवको अपने पास बुलवाया। नागार्जुन देव बोधिसत्वको देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। नागार्जुनने कहा—मैं तो अब वृद्ध हो गया। क्या विद्याके सूर्य्यको तुम ग्रहण कर सकोगे? देवने उत्तर दिया कि यद्यपि मुझमें इतनी योग्यता तो नहीं है पर मैं यथाशक्ति आपकी आज्ञा पालन करूंगा। फिर देव बोधिसत्वको नागार्जुनने अपनी सारी विद्याओंका अध्ययन कराया।

सिद्ध नागार्जुन रसायनशास्त्रके आचार्य्य थे। वह रसायनके प्रयोगसे कई सौ वर्षकी आयु होनेपर भी युवाके समान थे। राजा सद्वाह्को भी नागार्जुनने सिद्ध गुटकाका सेवन कराया था और वह भी कई सौ वर्षकी अवस्थाका हो चुका था। उसके पुत्र प्रपौत्रादि कितने ही थे। युवराज इस आकांक्षामें कि राजा कब सिंहासन खाली करेगा प्रतीक्षा करते करते तंग आ गया था। एक दिन युवराजने अपनी मातासे कहा कि भला वह समय कब आवेगा जब मैं भी राजसिंहासनपर बैठूंगा? उसकी माताने कहा कि 'तुम देखते हो कि तुम्हारा पिता कई सौ वर्षका हो चुका, कितने पुत्र प्रपौत्र हुए और बुड्ढे होकर मर गये। जबतक बोधिसत्व नागार्जुन जीते रहेंगे तुम्हारे सिंहासनपर बैठनेकी कोई आशा नहीं है। वह अपने रसायनकी गुटकाके प्रभावसे न आप मरेगा न राजाको मरने देगा। यदि तुमको राजकी आकांक्षा है तो बोधिसत्वके पास जाओ, वह अपने जीवनको तुम्हारे लिये याचना करनेपर दे देगा।'

राजकुमार अपनी माताके आदेशानुसार बोधिसत्व नागार्जुनके पास गया। वह सायंकालके समय नागार्जुनके आश्रमपर पहुंचा। द्वारपाल राजकुमारको आते देख हट गया और राजकुमार नागार्जुनके पास चला गया। उस समय नागार्जुन मंत्र जपता हुआ टहल रहा था। राजकुमारको देखकर नागार्जुनने कहा—सायंकालका समय है, इस समय श्रमणके आश्रमपर तुम्हारे अचानक आनेका कारण क्या है ? क्या आपत्ति पड़ी कि तुम इस समय यहां दौड़े हुए आये ?'

राजकुमारने उत्तर दिया कि प्राचीन कालसे बोधिसत्व परोपकारमें अपने जीवनतकको प्रदान करते आये हैं। राजचंद्र प्रभने अपना सिर ब्राह्मणको दान कर दिया, मैत्रबलने भूखे यक्षको अपने शरीरका रक्त प्रदान किया, शिविने भूखे श्येन पक्षीको अपने शरीरका मांस दे दिया। प्राचीन कालसे यह होता आया है। मेरी प्रार्थना है कि आप कृपाकर मुझे अपना सिर प्रदान कीजिये। यही मेरी याचना है, इसीलिये मैं यहां आया हूं। सिद्ध नागार्जुनने कहा, यह ठीक है। मनुष्यका जीवन पानीके बुलबुलेके समान है। पर इसमें एक बाधा है। यदि मैं न रहूंगा तो फिर तुम्हारा पिता भी न रह जावेगा। यह कहकर नागार्जुनने एक शरपत उठा लिया और अपना सिर काटकर राजकुमारके आगे रख दिया। राजकुमार यह देख वहांसे भागा और राजप्रासादमें आया। द्वारपालने राजा सद्वाहको सिद्ध नागार्जुनके सिर प्रदान करनेकी कथा आकर सुनायी। उसे सुनते ही राजाके प्राण निकल गये।

राजधानीके दक्षिण-पश्चिम ३०० लीपर भ्रमरगिरिका संघाराम था। इस संघारामको राजा सद्वाहने एक पर्वत काटकर बनवाया था। इसमें पांच तल्ले थे और एक एक तल्लेमें चार चार कक्षायें और विहार बने हुए थे। विहारोंमें भगवान बुद्धदेवकी सोनेकी मूर्तियां मनुष्यके आकारकी स्थापित थीं। कहते हैं कि राजा सद्वाह जब इसे पर्वत काटकर बनवाने लगा तो उसका सारा कोश खाली हो गया था और संघाराम अपूर्ण रह गया। उस समय राजा बहुत दुःखी हुआ। उसको खिन्न-मन देख नागार्जुनने कहा कि घबरानेकी बात नहीं, कल आप शिकार खेल आवें, फिर इसपर विचार किया जायेगा।

नागार्जुनने अपने रसायनके बलसे जङ्गलके पत्थरोंको सोना बना दिया और प्रातःकाल जब राजा शिकारको निकला तो उसे मार्गमें चारों ओर सोनेकी चट्टानें देख पड़ीं। वह शिकारसे लौटकर सिद्ध नागार्जुनके पास गया और कहने लगा कि शिकारमें मुझे मार्गमें सोनेकी चट्टानें देख पड़ीं। नागार्जुनने कहा कि यह आपके पुण्यका प्रभाव है, आप उसे लेकर काममें लाइये और अपने कृत्यको पूरा कीजिये। राजा उन सोनेकी चट्टानोंको खुदवाकर इस संघारामके बनवानेमें लगा। संघाराम बनकर तैयार हो गया। नागार्जुनने इस संघाराममें संपूर्ण त्रिपिटक और अन्य विभाषा और शास्त्रोंको संस्थापित किया। कहते हैं कि सबसे ऊपरकी मंजिलपर भगवान बुद्धदेवकी प्रतिमा स्थापित थी और सूत्र और शास्त्र रखे गये थे। चौथेसे

लेकर दूसरेतकमें श्रमण और भिक्षु रहते थे और नीचेकी मंजिलमें ब्राह्मण और उपासक रहते थे। कहा जाता है कि इस संघारामके बनते समय सद्वाह राजाने मजदूरोंके लिये नौ कोटि स्वर्ण-मुद्राका लवण मंगवाया था। उस समय इस संघाराममें १००० भिक्षु और श्रमण रहते थे। पीछे श्रमणोंमें वादविवाद हो पड़ा और वे लोग यहांके राजाके पास निर्णयके लिये गये। ब्राह्मणोंने जब देखा कि श्रमण अपने वादविवादमें लगे हैं और अपने निर्णयके लिये गये हैं तो सारे संघारामपर अधिकार कर लिया और उसे चारों ओर सुदृढ़ कर लिया और श्रमणोंके घुसनेका मार्ग बन्द कर दिया। उस समयसे उस संघाराममें कोई श्रमण और भिक्षु नहीं रहता है। उसके द्वारका पता किसीको नहीं चलता है। जब ब्राह्मणोंको अपनी चिकित्साके लिये किसी वैद्यकी आवश्यकता पड़ती है तो वे उसकी आंखोंपर पट्टी बांधकर गुप्त मार्गसे भीतर ले जाते हैं और फिर उसे उसी प्रकार आंख बन्द कर जहांसे ले जाते हैं पहुंचा देते हैं।

इस देशमें एक ब्राह्मण था जा तर्क-शास्त्रका अनुपम विद्वान था। सुयेनच्वांग उसके पास एक माससे अधिक रह गया और उससे अध्ययन करता रहा।

दक्षिण कोशलसे वह दक्षिण-पूर्व दिशामें चलकर आंध्र देशमें पहुँचा। वहांसे संघारामों और स्तूपोंका दर्शन करता वह धनकटक देशमें गया। यह देश आंध्रके दक्षिणमें था। यहां पूर्वशिला और अवरशिला नामक दो संघाराम नगरके पूर्व

और पश्चिममें थे। यह संघाराम यहांके एक राजाके बनवाये हुए थे। यहां पूर्व कालमें बड़े बड़े अर्हत और ऋषि मुनि रहा करते थे। भगवान बुद्धदेवके निर्वाणसे प्रथम सहस्राब्दीके मध्य-तक यहां श्रमण और उपासक आते थे और वर्षावास करते थे। सौ वर्षसे यहांके वन-देवतोंने उत्पात मचाना आरम्भ किया तबसे यह संघाराम निर्जन पड़े हैं।

नगरके दक्षिण एक पर्वत है। यहां उपाध्याय भावविवेक असुरोंके गढ़में अबतक बैठा है और भगवान् मैत्रेयके आनेकी प्रतीक्षा कर रहा है। कहते हैं कि भावविवेक बड़ा विद्वान था और कपिलके दर्शनका आचार्य्य था। यद्यपि वह कपिलका अनुयायी था पर वह अंतःकरणसे नागार्जुनकी शिक्षाको मानता था। जब उसने यह सुना कि बोधिसत्व धर्मपाल मगध देशमें धर्मका प्रचार कर रहा है और सहस्रों मनुष्योंको अपना अनुयायी बना रहा है तब भावविवेकने मगध जाकर धर्मपाल बोधि-सत्वसे शास्त्रार्थकर अपने शङ्का समाधान करनेका विचार किया। वह अपना दंड लिये अपने शिष्योंसहित पाटलिपुत्र पहुंचा। उस समय धर्मपाल बोधिसत्व गयामें बोधिवृक्षके पास था। भावविवेकने अपने शिष्योंको धर्मपाल बोधिसत्वके पास भेजकर उससे कहला भेजा कि बोधिवृक्षकी पूजामें क्या धरा है। आकर विचार करो। धर्मपाल बोधिसत्वने यह कहला भेजा कि मनुष्यका जीवन क्षणिक है। मैं यहां दिनरात श्रम करता हूं। मुझे शास्त्रार्थ करनेका अवकाश नहीं है। यह उत्तर

या भावविवेक मगधसे अपने आश्रमपर वापस आया और अपने मनमें यह विचारकर कि बिना भगवान् मैत्रेयसे भेंट हुए मेरी शङ्काओंका समाधान होना कठिन है वह अवलोकितेश्वर बोधिसत्वकी प्रतिमाके सामने बैठकर हृदयधारिणीका अनुष्ठान करने लगा। तीन दिन वह बिना अन्न-जल ग्रहण किये बैठा पाठ करता रह गया। तीसरे दिन अवलोकितेश्वर बोधिसत्वने प्रसन्न होकर उसे दर्शन दिया और कहा कि वर मांगो। भावविवेकने कहा कि मेरी यही कामना है कि मेरा शरीर मैत्रेय भगवानके आनेतक बना रहे। बोधिसत्वने कहा कि मानव-जीवनमें अनेक बाधायें हैं। संसारी जन बुलबुलेके सदृश हैं। तुम तुषितधाममें जावो, वहां भगवान मैत्रेयके पास रहो। भावविवेकने कहा कि मैंने दृढ़ संकल्प कर लिया है वह अन्यथा नहीं हो सकता है। फिर बोधिसत्वने कहा कि यदि यह बात है तो तुम धनकटक देशमें जावो। वहां पर्वतकी गुहामें वज्रपाणि नामक देवता रहता है। वहां जाकर वज्रपाणिधारिणीका जप करो। उसके प्रसन्न होनेसे तुम्हारा मनोरथ सिद्ध होगा। भावविवेक यह सुन इस देशमें आया और आकर वज्रपाणिधारिणीका अनुष्ठान करने लगा। तीसरे दिन वज्रपाणिने दर्शन दिया और कहा कि वर मांगो? भावविवेकने कहा कि मुझे अवलोकितेश्वर बोधिसत्वने आदेश दिया है कि मैं आपसे यह वर प्राप्त करूँ कि मेरा यह शरीर मैत्रेय भगवानके आनेतक बना रहे। वज्रपाणिने उसे एक मन्त्रका उपदेश किया और कहा कि

जाओ और इस पर्वतपर अमुक स्थानपर बैठकर इसे जप करो। वहांपर असुरका दुर्ग है। यदि तुम इस मन्त्रको सिद्ध कर लोगे तो दुर्गका द्वार खुल जायगा। उस समय तुम उसके भीतर चले जाना, वहां तुम मैत्रेय भगवानके आनेतक बने रहोगे। भावविवेकने कहा कि असुरका-दुर्ग तो अन्धकारमय होगा। वहां मुझे इसका पता कैसे चलेगा कि भगवान मैत्रेयका अवतार हो गया। वज्रपाणिने कहा कि इसकी तुम कुछ चिन्ता न करो, मैं तुम्हें जब उनका अवतार होगा सूचना दे दूंगा। भावविवेक पर्वतपर बैठकर वज्रपाणिके उपदेशानुसार उस बीज मन्त्रको सिद्ध करने लगा। तीन वर्ष बीतनेपर असुरके दुर्गका द्वार खुला और वह उसके भीतर चला गया। उसने जाते समय अपने अनेक शिष्योंसे कहा कि आवो यहां हमलोग अजर अमर होकर भगवान मैत्रेयके अवतार होनेतक रहें। पर किसीने उसकी बातको नहीं माना और यह कहकर बाहर रह गये कि यह सर्पकी मांद है इसमें कौन आवे। केवल उसके छः शिष्य उसके साथ दुर्गमें गये और दुर्गका द्वार बंद हो गया। वहां वह अपने शिष्योंसहित अबतक बैठा मैत्रेय भगवानके अवतारकी प्रतीक्षा कर रहा है।

इस देशमें सुयेनच्वांगको सुभूति और सूर्य्य नामक दो महासंघिक निकायके अनुयायी परम विद्वान श्रमण मिले। उनके पास वह कई मासतक रह गया और उनसे मूलाभिधर्मादि अनेक शास्त्रोंका अध्ययन किया और उनको महायानके ग्रंथोंका अध्यापन कराया।

धनकटकसे दक्षिण दिशामें चलकर सुयेनच्वांग चोल देशमें पहुंचा। चोलकी राजधानीके पास अशोकका एक स्तूप था यहां भगवान बुद्धदेवने तीर्थियोंको अपने ऋद्धियल प्रदर्शनक पराजित किया था और देवताओं और मनुष्योंको धर्मोपदेश किये थे। नगरके पश्चिममें एक संघाराम था। उसमें देव बोधिसत्वने आकर उत्तर नामक अर्हतसे शास्त्रार्थ किया था। अर्हत उत्तर सात प्रश्नमें निग्रह स्थानमें आ गया था और उसे उत्तर न आया था। फिर वह तुषित-धाममें गया और मैत्रेय बोधिसत्वसे उस प्रश्नके उत्तरको पूछा और वहांसे लौटकर देव बोधिसत्वको वह उत्तर दिया। देव बोधिसत्वने उसके उत्तरको सुनकर कहा कि यह उत्तर तुम्हारा नहीं है, यह तो मैत्रेय बोधिसत्वका है। अर्हत यह सुनकर चकित हो गया था।

चोलसे चलकर सुयेनच्वांग द्राविड़ देशमें गया। द्राविड़ देशकी राजधानी कांचीपुर थी। धर्मपाल बोधिसत्वका जन्म इसी नगरमें हुआ था। उसका पिता यहांका महामात्य था। वह इतना बुद्धिमान था कि बाल्यावस्थामें ही उसकी लोकोत्तर प्रतिभाको देखकर लोग चकित हो जाते थे। उसकी विद्या और बुद्धिपर मुग्ध हो द्राविड़ देशके राजाने अपनी राजकुमारीका विवाह उसके साथ करनेका निश्चय किया। विवाह पक्का हो गया। एक दिन रह गया था। धर्मपाल बोधिसत्वको बड़ी चिन्ता हुई। वह अपने बचनेका कोई उपाय न देख सायंकालके समय भगवानके विहारमें गया और वहां उनकी मूर्तिके

सामने बैठकर प्रार्थना करने लगा और रातभर यहीं प्रार्थना करता रह गया। देवराजको उसकी दशा देख दया आयी। उसने उसे उठाकर पर्वतके एक संघाराममें जो कांचीपुरसे बहुत दूर था ले जाकर वहांके विहारमें पहुंचा दिया। संघारामके श्रमणोंने उसे यहां देखकर चोर समझा और उसको पकड़कर वेणके पास ले गये। धर्मपाल बोधिसत्वने उसको अपना सारा समाचार कह सुनाया जिसे सुनकर सब चकित हो गये। यहां उसने परिव्रज्या ग्रहण की और निरन्तर शास्त्रोंके अध्ययनमें प्रवृत्त हुआ और अल्प-कालहीमें अनेक निकायोंके ग्रंथोंका अध्ययनकर सब निकायों-का पाण हो गया। उसने शब्दविद्या संयुक्त शास्त्र, शतशास्त्र वैपुल्य, विद्यामात्रसिद्धि, न्यायद्वार तारकशास्त्रकी टीकायें और अन्य ग्रन्थोंकी रचना की।

कांचीपुरका नगर समुद्रके तटपर बसा है। यहांसे सिंहल-द्वीप लोग तीन दिनमें समुद्रके मार्गसे जाते हैं। उस समय सिंहलके राजाका देहान्त हो गया था। वहाँ अकाल पड़ा था और देशभरमें विप्लव मचा था। प्रजा बहुत दुःखी थी। वहांके दो महाविद्वान भिक्षु बोधिमेघेश्वर और अभयदंष्ट्र नामक ३०० भिक्षुओंके साथ सिंहलसे भागकर द्राविड़ देशमें चले आये थे और कांचीपुरमें आकर उतरे थे। सुयेनच्वांग उनसे मिला और कहा कि सुनते हैं कि सिंहलके देशमें श्रमण लोग स्थविर निकायके त्रिपिटक और योगशास्त्रमें बड़े व्युत्पन्न हैं और उनके पठन-पाठनका अच्छा प्रचार है। मेरा विचार है कि मैं सिंहलद्वीप

जाऊँ और वहाँ रहकर योगशास्त्र और स्थविर निकायके त्रिपिटकका अध्ययन करूँ। आप लोग वहाँसे क्यों यहां आये हैं ? उन लोगोंने कहा कि हमारे देशका राजा मर गया, सारे देशमें अकाल पड़ा हुआ है, कोई प्रजाकी रक्षा करनेवाला नहीं है। हमने सुना कि जम्बूद्वीपमें लोग शांति और सुखसे हैं और यहां अन्न भी बहुत है। इसके अतिरिक्त भगवानने इसी देशमें जन्म लिया है और सारे देशमें पग पगपर तीर्थ हैं। इसी विचारसे हमलोग यहां आये हैं। हमारे देशके विद्वान श्रमणोंमें हम लोगोंसे बढ़कर विद्वान दूसरे कम हैं। सारा संघ हमारा मान और प्रतिष्ठा करता है और बड़े बड़े लोग हमारे पास आकर अपनी शंकाओंका समाधान कराते हैं। यदि आपको कुछ विचार करना है तो हमारे साथ विचार कीजिये, हम बड़ी प्रसन्नतासे जो जानते हैं आपको बतलानेमें संकोच न करेंगे। ह्युयेनच्वांगने उनसे योगशास्त्रके सूत्रों और वृत्तियोंकी व्याख्या पूछी और उनपर अपनी शंकाओंको कहा। पर वे लोग न तो उनकी वैसी व्याख्या ही कर सके जैसी कि आचार्य शीलभद्रसे उसने सुनी थी और न उसकी शंकाओंका यथावत् समाधान ही किया।

यहांपर उसने सुना कि द्राविड़ देशके आगे मालकूट नामक जनपद पड़ता है। यह देश समुद्रके किनारेपर है और वहां विविध भांतिके रत्न उत्पन्न होते हैं। वहांकी राजधानीके पास अशोकका बनवाया एक स्तूप है। यहां तथागतने अपनी विभूति प्रदर्शित की थी। जनपदके दक्षिण दिशामें समुद्रतटपर मल-

यागिरि नामक पर्वत है। उस पर्वतमें श्वेतचन्दनका वन है। इस चन्दनके वनमें ग्रीष्मऋतुमें वृक्षोंपर सांप लपटे रहते हैं। यहांका चन्दन बहुत सुगन्धित होता है और वैसा चन्दन अन्यत्र नहीं उत्पन्न होता है। वहां कपूरके भी वृक्ष हैं। वे वृक्ष देवदारके सदृश होते हैं पर पत्तेमें भेद है। जब कर्पूरका पेड़ काटा जाता है तो उसमें सुगन्धि नहीं होती है। पर जब वह सूख जाता है तो चीरनेपर उसके भीतर उसका रस जमकर मोतीकी भांति स्वच्छ ढले बने हुए मिलते हैं। यह बड़े सुगन्धित होते हैं और कर्पूर कहलाते हैं। मालकूटके उत्तर-पूर्व दिशामें एक नगर है। वहींसे लोग समुद्र मार्गसे होकर सिंहलद्वीप जाते हैं।

सिंहलद्वीप मालकूटसे दक्षिण-पूर्व दिशामें ३००० ली पर पड़ता है। यहांकी बस्ती बड़ी घनी है और अन्न बहुत उपजता है। यहांके अधिवासी ठेंगने और काले रंगके होते हैं। इस द्वीपका प्राचीन नाम रत्नद्वीप था। कहते हैं कि दक्षिण भारतमें एक राजा था। उसकी कन्या किसी राजाके यहां व्याही थी। एक दिन वह अपने पतिके यहांसे अपने पिताके घर जा रही थी, मार्गमें उसे एक सिंह मिला। सिंहको देखते सब साथी उसे अकेली पालकीमें छोड़ कर भाग गये। सिंह पालकीके पास आया और राज-कन्याके रूप-लावण्यको देखकर मुग्ध हो गया और उसे पकड़कर पर्वतकी एक गुहामें ले गया। वहां वह उसके लिये नित्य शिकार करके लाता था। कुछ दिन बीतनेपर राजकन्याके एक पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई। उनके रूप और

आकार मनुष्यकेसे पर प्रकृति उग्र और तीक्ष्ण थी। जब बालक बड़ा हुआ तो एक दिन उसने अपनी मातासे पूछा कि बात क्या है कि पिताका रूप तो कुछ और ही है और तेरे रूप कुछ और। यह मनुष्य और पशुका साथ कैसा? माताने उससे सारी कथा कह सुनायी। बालकने कहा कि मनुष्यकी प्रकृति भिन्न है और पशुकी भिन्न। चलो हमलोग यहांसे भाग चलें। माताने कहा कि मैं तो बहुत चाहती हूँ पर भागकर जाऊँ तो कहाँ जाऊँ, भागनेकी राह नहीं दिखायी पड़ती। एक दिन बालक सिंहके साथ जब वह शिकारके लिये जाने लगा पीछे पीछे लगा हुआ गया और वहांसे बाहर निकलनेके मार्ग देख आया। फिर दूसरे दिन जब सिंह शिकारको गया तो वह अपनी माता और बहनको लेकर चुपकेसे गुफासे निकला और जंगलके पास एक गांवमें चला आया। फिर वह अपनी माताके साथ उसके पिताके देशमें आया और वहाँ उसे पता चला कि उसके माता-महके वंशमें कोई नहीं रह गया है। फिर वह वहांसे दूसरे गांवमें सबको लेकर जा छिपा। सिंह जब अपनी गुहामें आया तो राज-कन्या और बालकोंको न पाकर बड़ा कुपित हुआ और बस्तीमें आकर बड़ा उपद्रव मचाने लगा। सहस्रों स्त्री-पुरुषोंका संहार करता चारों ओर उन्मत्तके समान फिरता था। प्रजाने उसके उपद्रवसे बहुत दुःखी हो राजाके पास जाकर पुकार मचायी। राजा अपनी सेना लेकर आया और चारों ओरसे सिंहको घेर लिया और उसपर बाण-प्रहार करने लगा।

सिंह यह देखकर तड़पा और चीरता हुआ बाहर निकल गया और किसीका किया कुछ न हुआ। इस प्रकार सिंह बहुत दिनोंतक उस जनपदमें उपद्रव मचाता और जनक्षय करता रहा। राजा और प्रजा दोनों उससे दुःखी थे, कोई उपाय बन नहीं पड़ता था, देश उजाड़ होता जाता था। निदान राजाने यह घोषणा की कि जो इस सिंहको मारेगा उसे एक कोटि स्वर्ण-मुद्रा प्रदान करूंगा। बालकने यह घोषणा सुनकर अपनी मातासे कहा कि हमलोग इतने कष्टमें पड़े हैं न तो खानेको अन्न है और न ओढ़ने और पहननेको वस्त्र। यदि तू आज्ञा दे तो मैं इस सिंहको मार डालूं और राजासे कोटि स्वर्णमुद्रा पुरस्कारका लूं। दिन तो चैनसे कटेगा। माताने कहा कि यह अनुचित है। पशु ही सही पर है तो यह तुम्हारा पिता। उसे मारकर तुम कौन मुंह दिखलाओगे। लोग तुमको पितृघाती कहेंगे। बालकने कहा कि बिना मारे उससे पिंड छूटना कठिन है। कब-तक छिपे रहेंगे, एक न एक दिन यह बात खुल जायगी, फिर तो राजासे प्राण बचाने कठिन हो जायेंगे। जब यह औरोंको मार रहा है तो एक न एक दिन यह हमें भी मार ही डालेगा। पागल-का विश्वास ही क्या है। एकके लिये सहस्रोंका संहार भला नहीं है, मैं तो उसे अवश्य मारूंगा। यह सोचकर वह बालक बाहर निकला। सिंह उसे देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ और मारे हर्षके उसके पास आकर खड़ा हो गया। उसे इसका कहां ज्ञान था कि बालक मेरे प्राणका इच्छुक है। बालकने खड्ग

कर उसके गलेपर ऐसा प्रहार किया कि वह गिर पड़ा। फिर उसने उसका पेट फाड़ डाला। सिंह तो मर गया और जब राजाको यह समाचार ज्ञात हुआ तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ और यह अद्भुत समाचार सुनकर कारण पूछने लगा। पहले तो बालकने उसे छिपानेका प्रयत्न किया पर अंतको जब देखा कि बिना बतलाये छुटकारा नहीं मिलेगा तो सब बातें सच सच कह दीं। राजाने कहा सच है, पशुका बालक ही यह क्रूर कार्य कर सकता है। यह तो पुरस्कार पर तुमने पितृघात किया है अतः तुम हमारे राज्यमें नहीं रह सकते। यह कह उसने अपने कर्मचारियोंको आज्ञा दी कि दो नौकामें नाना रत्न और खाद्य पदार्थ भरे जायँ और इन दोनों भाई-बहनको उनपर मध्य सागरमें ले जाकर छोड़ दो। कर्मचारीगण उन दोनोंको एक एक नौका-पर चढ़ाकर मध्य सागरके मध्यमें ले गये और वहां उनको छोड़-कर चले आये। बालककी नौका समुद्रकी लहरोंसे बहती हुई रत्नद्वीपमें जाकर लगी। वह उस द्वीपमें उतरा और रहने लगा। उस देशमें रत्नोंकी उपज अधिक थी और व्यापारीगण अपनी नौका लेकर वहाँ रत्नोंके लिये आया करते थे। वहाँ उस बालकने धोखा देकर अनेक व्यापारियोंको मार डाला और उनकी स्त्रियोंको उस द्वीपमें रख छोड़ा। इस प्रकार उनसे वहां सन्तानकी वृद्धि होने लगी और थोड़े ही दिनोंमें सारा द्वीप बस गया और वहां राजा और मन्त्री नियत हो गये। सब लोग तबसे अपने द्वीपको सिंहल कहने लगे क्योंकि उनके पूर्वजने सिंहको मारा था।

यह नौका जिसमें कन्या थी समुद्रकी लहरोंकी ठोकरें खाते पारस (पोलसी) के पश्चिमीय किनारेपर लगी। वह एक राक्षसके हाथमें पड़ गयी और उससे उसे अनेक कन्यायें उत्पन्न हुई और वहीं बस गयीं। उसी देशका नाम पश्चिमी स्त्री-राज्य पड़ा।

पुनः यह ग्रंथोंमें सुननेमें आता है कि पूर्वकालमें रत्नद्वीपमें राक्षसियां रहती थीं, द्वीपके मध्यमें उनका एक दुर्ग था, जो लोहेका बना था। उसके ऊपर दो ध्वजायें थीं। एक ध्वजा आपत्ति-सूचक दूसरी शुभ-सूचक। जब कोई आपत्ति आनेवाली होती थी तो शुभसूचक ध्वजा गिर पड़ती थी और आपत्ति-सूचक ध्वजा उड़ने लगती थी। अन्यथा आपत्ति-सूचक ध्वजा गिरी रहती और शुभ-सूचक ध्वजा उड़ा करती थी। यह राक्षसियाँ सुंदर-रूप धारणकर समुद्रके तटपर फिरा करती थीं और जब किसी व्यापारीकी नौका रत्नद्वीपके किनारे आती तो यह झुंडकी झुंड वहाँ पहुँच जातीं और अपने हाव-भाव दिखलाकर उन्हें मुग्धकर अपने प्रेम-पाशमें फाँस ले आती थीं। फिर कुछ कालतक उनके साथ भोग-विलास करती थीं और फिर जब दूसरे लोग मिल जाते थे तो उनको लेजाकर लोहेके दुर्गमें डाल देती थीं और उनको खा जाती थीं।

एक समय जंबू द्वीपके एक सेठने जिसका नाम सिंह था अपने पुत्र सिंहलको ५०० व्यापारियोंके साथ नौकापर रत्नों और मणियोंके लिये भेजा। दैवयोगसे वह नौका समुद्रकी

लहरोंसे ठोकर खाती रत्नद्वीपके तटपर जाकर लगी। राक्षसियोंने देखा कि नगरपर शुभ-सूचक ध्वजा उड़ रही है। वह अपने रूप बदलकर नाना आवरणों और भूषणोंको धारणकर समुद्रतटपर आयीं और उनको बड़े आदरसे अपने नगरमें ले आयीं। सिंहल और अन्य व्यापारी उन राक्षसियोंके प्रेम-पाशमें फंस गये और सब एक एक राक्षसीके साथ रहकर भोग-विलास करने लगे और अपने देशकी सुधि भूल गये। राक्षसियोंने जब इन्हें पाया तो अपने पूर्वके प्रेमियोंको लेजाकर बंदी-गृहमें डाल दिया और उनको एक एक करके खाने लगीं।

कुछ समय बीतनेपर उन राक्षसियोंको एक एक बालक उत्पन्न हुए। वे इस चिन्तामें थीं कि अब कोई नये लोग मिलें तो इन्हें भी हम लेजाकर बंदी-गृहमें डालें। एक दिन रातको सिंहलने दुःस्वप्न देखा। वह अपनी नींदसे चौंककर उठा और भागनेकी राह ढूंढ़ने लगा। वह मार्ग खोजता हुआ लोहेके दुर्गके बंदी-गृहके पास पहुंचा और वहां उसे रोने और चिल्लानेके शब्द सुनायी दिये। वह आर्तनादको सुनकर बंदी-गृहकी दीवालके पासके एक वृक्षपर चढ़ गया और पूछा कि तुम कौन हो और किसने तुमको यहां लाकर बंद कर दिया है? तुमपर क्या विपत्ति आपड़ी है? उन लोगोंने उत्तर दिया कि क्या तुमको यह ज्ञात नहीं है कि यह राक्षसियोंका स्थान है? जिनको तुम परम रूपवती समझे हुए हो वे राक्षसियां हैं। हमलोग भी इसी भ्रममें पड़कर उनके जालमें फंसे थे और अब यह दुःख भोग रहे हैं।

हमलोगोंको मार मारकर यह नित्य भक्षण करती है। कितनों-को खा चुकी है। एक न एक दिन तुमको भी यहीं लाकर डालेंगी और तुम्हारी भी यही दशा होगी।

सिंहलने उनसे पूछा कि भला कोई इनसे बचनेका भी उपाय है। उन लोगोंने कहा, सुनते हैं कि समुद्र-तटपर एक दिव्य अश्व रहता है और जो सच्ची श्रद्धासे उसकी प्रार्थना करता है वह उसे समुद्र पार पहुंचा देता है। सिंहल उनकी बात सुनकर लौट आया और अपने साथियोंसे सारी बातें कह सुनायीं। सब लोगोंसे सम्मति लेकर वह उन्हें साथ लिये चुपकेसे भागकर समुद्रके तटपर आया और दिव्य अश्वकी स्तुति-प्रार्थना करने लगा। दिव्य अश्वने प्रगट होकर उनको दर्शन दिया और कहा कि आप लोग मेरे केशको पकड़ें पर एक बात ध्यानमें रखें कि लौटकर पीछे न देखियेगा, मैं आप लोगोंको अभी समुद्र-पार पहुचाये देता हूं। व्यापारियोंने घोड़ेके बालको पकड़ा और घोड़ा उनको लेकर आकाशमें उड़ा। राक्षसियोंने जब यह देखा कि सबके सब व्यापारी दुर्गमें नहीं हैं तो वे उनको खोजने लगीं और अपने अपने बालकोंको गोदमें लेकर समुद्रपार उड़कर पहुंचीं और अपने अपने प्रेमियोंसे रोने और गिड़गिड़ाने लगीं। अन्य व्यापारियोंको उनके बनावटी प्रेमपर दया आयी और वे बीच राहसे लौट गये पर सिंहल नहीं लौटा। सब राक्षसी अपने अपने प्रेमियोंको लेकर लौट गयीं और अकेली वह राक्षसी जिससे सिंहलको प्रेम था रह गयी। जब उस राक्षसीने देखा कि

सब तो लौट गये पर यह नहीं लौटता है तब वह उस बालकको लिये सिंहलके पिताके पास पहुंची और उससे जाकर कहा कि तुम्हारे पुत्रने मुझसे विवाह किया और यह बालक उत्पन्न हुआ। वह मुझे छोड़कर चला आया है, मैं उसे खोजती हुई यहां आयी हूं। सिंहलके पिताको उसकी बातपर विश्वास पड़ गया और उसे अपने घरमें रख लिया। कुछ दिन बीतनेपर सिंहल जब अपने घर पहुंचा तो उसके पिताने उससे कारण पूछा। सिंहलने कहा यह राक्षसी है, आप इसकी बातपर विश्वास मत कीजिये और सारी कथा कह सुनायी। उसके पिताको जब सब बातें मालूम हुईं तो उसने राक्षसीको अपने घरसे निकाल दिया। राक्षसी वहांके राजाके पास गयी और कहा कि मैं रत्नद्वीपकी राजकुमारी हूं। सिंहल सेठने वहां जाकर मुझसे विवाह किया और यह पुत्र उत्पन्न हुआ। वह मुझे छोड़कर भाग आया, मैं उसे खोजती हुई यहां आई। अब वह मुझे आश्रय नहीं दे रहा है। राजाने सिंहलको बुलाया और उसे बहुत समझाया पर सिंहलने कहा कि यह राक्षसी है, इसकी बातोंमें आप न आइये। राजाने उसकी बात एक न सुनी और कहा कि यदि तुम इसे आश्रय नहीं देते तो मैं इसे आश्रय दूंगा। निदान राजाने उसे अपने राजप्रासादमें रख लिया।

रात बीतनेपर जब सब लोग सो गये तो उस राक्षसीने ५०० राक्षसियोंको बुलाया और सबने मिलकर प्रासादके भीतरके सारे प्राणियोंका संहार कर डाला और जहांतक खा सकीं

आया, दीपको उठाकर रत्नद्वीपकी राह ली। प्रातःकाल जब राजकर्मचारी और अमात्यवर्ग राजद्वारपर गये तो देखा कि द्वार बन्द पड़ा है। बहुत पुकारा पर किसीके शब्द न आये। निदान किवाड़ तोड़वाया गया पर वहां सिवा हड्डियोंके टुकड़ोंके कुछ न मिला। फिर सब लोग मिलकर सिंहलके पास गये और उसे अपना राजा बनाया। फिर सिंहलने सेना लेकर रत्नद्वीपपर चढ़ाई की और राक्षसियोंको वहांसे मार भगाया। बंदीगृहको तोड़ डाला और बंदियोंको मुक्त कर दिया। उसने जंबूद्वीपसे लोगोंको बुलाकर वहां बसाया और राज्य करने लगा। इसी कारण इस द्वीपका नाम सिंहल पड़ा।

सिंहल देशमें अशोक राजाके समयतक बौद्धधर्मका प्रचार नहीं था। महाराज अशोकका एक भाई महेन्द्र नामका था। उसने प्रव्रज्या ग्रहण की थी। वही चार भिक्षुओंके साथ सिंहलद्वीपमें आकाश-मार्ग से गया था और वहांके लोगोंको धर्मका उपदेश किया था। सिंहलद्वीपवासियोंने वहां उसके लिये एक संघाराम बनवाया था। इस समय वहां सौ संघाराम होंगे और दस हजारसे ऊपर भिक्षु रहते हैं। वहां महायानके स्थविर निकायका प्रचार है।

राजाके दुर्गके पास ही भगवानकेदांतका विहार है। विहार बहुमूल्य पत्थरोंका बना है। शिखरपर एक दण्ड है जिसके सिरेपर एक पद्मराग मणि जड़ा है। और भी अनेकों मणि लगे

हुए हैं। पद्मराग मणिकी ज्योति इतनी है कि स्वच्छ निर्मल रातको वह १०००० लोसे चमकता हुआ दिखायी पड़ता है।

इसके पास ही एक और विहार है। उसमें एक प्राचीनकाल-के राजाकी स्थापित की हुई भगवान बुद्धदेवकी सोनेकी एक प्रतिमा है। प्रतिमाके मुकुटमें एक बहुमूल्य रत्न है। इस विहारके चारों ओर पहरा रहता था और कोई जाने नहीं पाता था। एक चोरने उस मणिको चुरानेके लिये बहुत यत्न किये पर जब किसी प्रकार वह भीतर न पहुंच सका तो उसने विहार-के भीतरतक सुरङ्ग लगाया और सुरङ्गसे होकर रातको विहारमें घुसा। वह मुकुटसे मणिको निकालने लगा पर मूर्ति इतनी बढ़ गयी कि चोर उसके मुकुटतक न पहुंच सका। फिर चोरने स्तुति करनी आरंभ की और कहा कि तथागतने जब वह बोधिसत्व थे तो अपने शरीरको दान कर दिया, अपना राज्य दे दिया, फिर आज क्या बात है कि उनकी मूर्ति मणि देनेमें इतनी हिचक रही है। क्या वह बातें मिथ्या हैं? यह सुन मूर्ति झुक गयी और चोर मणिका मुकुटसे निकालकर चम्पत हुआ। जब वह उस मणिको लेकर नगरमें बेचने गया तो लोगोंने मणिको पहिचाना और उसे पकड़कर राजाके यहां ले गये। राजाने उससे पूछा कि यह मणि तूने कहां और कैसे पाया? चोरने कहा, यह मणि मुझे विहारमें मिला और भगवानने स्वयं मुझे दिया। इसपर राजाने विहारमें आकर देखा तो प्रतिमा आगेको झुकी थी। फिर उसने चोरको अनेक रत्न देकर उस मणिको ले लिया और

फिर उसे मुकुटमें लगवा दिया। वह मणि अबतक मुकुटमें लगा है।

द्वीपके दक्षिण-पूर्वके कोनेमें लंकागिरि है। वहां अनेक देव और दैत्य रहते हैं। यहां तथागतने लंकावतार सूत्रका उपदेश किया था।

सिंहलद्वीपके दक्षिण कई सहस्र लीपर समुद्रमें नारिकीट नामक द्वीप है। वहांके अधिवासी तीन फुट ऊंचे होते हैं। उनके सारे शरीर मनुष्योंके आकारके होते हैं पर सिर पक्षियोंके सदृश होता है। वहां सिवाय नारकेलके और कुछ नहीं होता है। यही खाकर सब लोग जीते हैं।

सुयेनच्वांगने जब सिंहलद्वीपके भिक्षुओंसे वहां दुर्भिक्ष पड़ने और राजविप्लव होनेकी बात सुनी तो सिंहल जानेके विचारको परित्याग कर दिया और सिंहलके ७० भिक्षुओंके संग द्राविड़से दक्षिण-पश्चिम दिशामें गया और वहां पवित्र स्थानोंका दर्शन करके कोकणपुरमें आया। कोकण नगरमें राजा-के प्रासादके पास एक वृहत् संघाराम था। उस संघारामके विहारमें सिद्धार्थकुमारका मुकुट था। वह मुकुट दो फुट ऊंचा और रत्नजटित था और एक जड़ाऊ सम्पुटमें रखा रहता था। पर्वके दिनोंमें उसे निकाला जाता था और एक ऊंचे सिंहासन-पर रखकर पूजा होती थी। उस दिन दूर दूरसे लोग उसके दर्शनके लिये आते थे। नगरके पास एक विहारमें वहां मैत्रेय बोधिसत्वकी एक मूर्ति थी। मूर्ति चन्दनकी थी और दस फुट

ऊंची थी। उसके विषयमें यह कथा प्रचलित थी कि उसे ५ कोटि अर्हतोंने मिलकर बनाया था। नगरसे थोड़ी दूरपर ताड़का एक वन था। उसकी पत्तियोंको लोग लिखनेके काममें लाते थे और वे बड़े दामोंपर बिकती थीं।

कोंकणसे उत्तर-पश्चिम दिशामें जाकर उसे एक घोर वन मिला जिसमें कहीं राह न थी, नितांत निर्जन, चारों ओर व्याघ्र सिंहादि हिंसक जन्तु फिरा करते थे। उस वनसे निकलकर वह महाराष्ट्र नगरमें पहुँचा। महाराष्ट्रके लोग बड़े वीर, बड़े सच्चे और सदाचारी होते थे। मृत्यु तो उनके लिये कुछ थी ही नहीं।

वहांका राजा पुलकेशी वर्णका क्षत्रिय और बड़ा ही योधा और पराक्रमी था। उसकी चतुरङ्गिणी सेना बड़ी ही सुसज्जित और युद्धके नियमोंकी जानकार थी। उस देशमें यह नियम था कि योधा संग्रामसे पैर पीछे नहीं हटाते थे। यदि दैवयोगसे कोई कायर पुरुष संग्रामसे पीठ दिखाकर लौटता था तो उसे स्त्रियोंका वस्त्र पहनाकर नगर-नगर ग्राम-ग्राम फिराया जाता था और फिर कभी वह पुरुषके वस्त्र नहीं पहनने पाता था। कितने तो संग्रामसे लौटकर लज्जाके मारे आत्मघात कर लेते थे। राजाकी सेनामें कई सहस्र योधा और सैकड़ों हाथी थे। संग्रामके समयमें योधाओं और हाथियोंको मद्य पिलाया जाता है। इन मदोन्मत्त योधाओं और हाथियोंके सामने कोई सेना ठहर नहीं सकती। यही कारण है कि महाराष्ट्रका नाम सुनकर आस-

पासके राजाओंका साहस छूट जाता है। औरोंकी तो बात ही क्या है स्वयं राजा शिलादित्य हर्षवर्द्धन जब सारे जंबूद्वीपको विजय करता महाराष्ट्रमें आया तो यहांके वीर योद्धाओंने उसके दांत खट्टे कर दिये और उसे भी यहांसे पराजित होकर उलटे मुंह फिरना पड़ा।

महाराष्ट्रमें राजधानीके पास अशोकके पांच स्तूप थे। उनके दर्शन करके हुयेनत्सांग नर्मदा नदीपर आया और उसे उतर-कर भरोचमें पहुंचा और भरोचसे मालवा गया। मालवा देशमें विद्याका बड़ा प्रचार था और सारे भारतमें मालवा और मगध विद्याके केन्द्र समझे जाते थे। कहते हैं कि साठ वर्ष हुए यहां शिलादित्य नामक एक राजा था। वह बड़ा बुद्धिमान और विद्वान् था। बौद्धधर्मपर उसकी बड़ी निष्ठा थी और सब प्राणियोंपर दया करता था। वह इतना विनीत था कि किसी-को कभी कटु शब्द नहीं कहता और सबसे प्रेमपूर्वक वर्ताव करता था। अहिंसक इतना कि हाथियों और घोड़ोंतकको छना हुआ पानी पिलाता था कि ऐसा न हो कि पानीके कीड़ोंकी धोखेसे हिंसा हो। उसने अपने राज्यमें हिंसाका नितांत निषेध कर दिया था और कोई किसी प्राणीको दुःख नहीं देता था। मनुष्योंकी तो बात ही क्या वन्यहिंसक जन्तु भी किसीका घात नहीं करते थे और मनुष्योंसे हिल-मिलकर रहते थे। उसने अपने राज्यमें यात्रियों और अतिथियोंके लिये विश्रामागार, पुण्य शालायें बनवाई थीं और बुद्ध भगवान्की सात मूर्तियां स्थापित की

थीं। प्रति वर्ष महापरित्याग नामक दान करता और देश-देशके ब्राह्मणों और श्रमणोंको आमंत्रित करता था। उसने पचास वर्ष तक धर्मपूर्वक अपने राज्यका शासन किया और इतना प्रजा वत्सल था कि प्रजा अबतक उसके नामका स्मरण करती है।

मालव नगरके उत्तर-पश्चिम ३० लीपर ब्राह्मणोंका एक गांव था। वहां एक गहरा गड्ढा था, जिसमें चारों ओरसे पानी आकर गिरा करता था, पर वह भरता नहीं था। उसके संबन्धमें यह कथा प्रचलित थी कि पूर्व कालमें यहां एक महा विद्वान् ब्राह्मण रहता था जो सभी सदसत शास्त्रोंका पारग था और सब लोग उसको विद्वताकी धाक मानते थे। राजासे प्रजातकमें उसका मान था। उसके पास एक सहस्र विद्यार्थी विद्याध्ययन करते थे। वह इतना घमण्डी था, कि अपने समान किसी आधुनिक या प्राचीन ऋषि महर्षिको नहीं समझता था। वह प्राचीन आचार्य्यों की सदा निन्दा किया करता था। उसने अपने बैठनेके लिये एक चौकी बनवा रखी थी, जिसमें महेश्वर, वासुदेव, नारायण और बुद्धदेवकी मूर्तियां पायेके स्थानमें लगी थीं। इस चौकीको लिये वह चारों ओर शास्त्रार्थ करता फिरता था और कहा करता था कि तुम लोग इनकी पूजा क्यों करते हो, इनके सिद्धान्तको क्यों मानते हो। यह तो मेरे सामने बात भी नहीं कर सकते थे। मैं इन सबसे श्रेष्ठ हूं, मेरा सिद्धांत सबसे अच्छा है। उसी समय पश्चिम भारतमें भद्ररुचि नामक भिक्षु था। वह हेतु विद्याका विशारद और तर्क-शास्त्रमें बड़ा ही

निपुण था। उसने जब उस ब्राह्मणकी बातें लोगोंसे सुनीं तब उससे नहीं रहा गया। वह अपना दण्ड लिये फटा पुराना कषाय वस्त्र धारण किये मालव नगरमें पहुंचा। राजाने पहले तो उसे साधारण भिक्षु समझा, पर जब उसने उस ब्राह्मण पण्डितसे शास्त्रार्थ करनेकी इच्छा प्रकट की तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ और शास्त्रार्थके लिये प्रबन्ध करनेकी आज्ञा दी। उसने ब्राह्मणको सूचना दी कि आप अमुक समयपर आकर एक भिक्षु-से शास्त्रार्थ कीजिये। ब्राह्मण राजाकी बात सुनकर हंसा और कहने लगा कि यह कौन भिक्षु है जो शास्त्रार्थ करने आया है। अस्तु, शास्त्रार्थके दिन वह अपनी शिष्य-मंडली सहित आया। वहां श्रोताओंकी भीड़ लगी थी, राजा भी अपने अमात्यों और राज-कर्मचारियों सहित उपस्थित था। ब्राह्मण उनके मध्य अपनी चौकीपर आके बैठा और शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। भिक्षु-ने अपने तर्क और युक्तिसे उसे इस प्रकार अवाक् कर दिया कि वह निग्रह-स्थानमें आ गया। पहले तो उसने बहुत छल किये, पर जब कुछ न चला तो अन्तमें उसे अपनी पराजय स्वीकार करनी पड़ी। राजाने उससे कहा कि बहुत दिनोंतक तूने वंचकता की अब तुझे दण्ड मिलना चाहिये। उसके लिये पहले तो एक लोहेकी चौकी बनवाकर तपाई गई और जब वह लाल हो गई तो उसे उसपर बैठनेकी आज्ञा दी गई। ब्राह्मण बहुत घबड़ाया और रोने-कल्पने लगा। भद्ररुचिको उसपर दया आई। उसने राजासे कहा कि महाराज इसे इतना कठिन दण्ड

न दें। फिर राजाने आज्ञा दी कि इसे गधेपर चढ़ाकर नगर २ और ग्राम २ फिराया जाय। राज-कर्मचारियोंने राजाकी आज्ञा पाकर वैसा ही किया। ब्राह्मणको अपने इस अपमानका इतना दुःख हुआ कि उसके मुंहसे रक्त वमन होने लगा और चिंताके रोगसे वह मरणासन्न हो गया। भद्ररुचि यह समाचार पा उसके घर आया और कहने लगा कि शास्त्रार्थमें जय-पराजय होती ही है। क्यों इतनी चिंतामें पड़े हो? एषणा त्यागो। धन, पुत्र, यश सब अनित्य हैं। पर ब्राह्मणने भिक्षुको गालियां दीं और महायानकी निन्दा करने लगा। इसपर भूमि फट गयी और वह सशरीर अवीचि नामक नरकमें चला गया।

मालवसे चलकर सुयेनच्वांग अटाली गया। वहां वगरके पेड़ बहुत थे जिससे सुगन्धित गोंद निकलता था। अटालीसे वह कच्छ गया और कच्छसे वल्लभी राजमें पहुंचा। वहांका राजा क्षत्रिय था। उसका नाम ध्रुवभट्ट था और राजा हर्षवर्द्धन शिलादित्यका जामाता था। वह बड़ा ही उद्दण्ड और तीक्ष्ण प्रकृतिका था, पर त्रिरत्नको मानता था और प्रति वर्ष सात दिनतक भिक्षुओंकी परिषद्‌को आमंत्रित करता था और उनको बहुत कुछ दान देता था।

वल्लभीसे सुयेनच्वांग आनन्दपुर होता हुआ सुराष्ट्र गया। सुराष्ट्रसे वह गुर्जरा गया। वहांसे उज्जयिनी, उज्जयिनीसे चिकितो और चिकितोसे माहेश्वरपुर गया। माहेश्वरपुरसे फिर वह सुराष्ट्रमें लौट आया। सुराष्ट्रसे वह पश्चिम दिशामें चलकर अलंबकेल

देशमें गया। यहाँ तथागतने कई बार पधारकर मनुष्योंको धर्मोपदेश किया था और अशोक राजाके बनवाये अनेक स्तूप उन स्थानोंपर थे। उनके दर्शन करके वह लांगल देशमें गया। यह देश पश्चिमीय स्त्रिराज्यके पास समुद्रके तटपर पड़ता था। लांगल देशके उत्तर पश्चिम दिशामें पोलसे (पारस) का देश पड़ता था। पारस देशमें मोती और अन्य मणि, रत्न बहुत होते हैं। कहते हैं कि भगवान तथागतका भिक्षापात्र पारसके राजाके प्रासादमें है। इस जनपदके पूर्वमें होमो (उर्मुज) और उत्तर पश्चिममें फोलिन (बोलन) पड़ता है। दक्षिण-पश्चिम दिशामें एक टापू है जिसे पश्चिमका स्त्रिराज्य कहते हैं। उस देशमें सब स्त्रियाँ ही स्त्रियां रहती हैं कोई पुरुष नहीं है। बोलनका राजा प्रति वर्ष अपने राज्यसे वहाँ पुरुषोंको भेजता है। वे उस देशमें जाकर वहांकी स्त्रियोंके साथ जा भोग-विलास करते हैं और उन्हींसे उनको गर्भ रहता है और संतान उत्पन्न होती है ; पर वे केवल कन्याओंहीको पालती हैं और बालकोंको फेंक देती हैं।

लांगल देशसे सुयेनच्वांग पूर्व दिशाको पलटा और पीत-शिला देशमें पहुंचा। वहांसे अशोक राजाके स्तूपादिके दर्शन करता अवण्ड देशमें आया। वहां राजधानीकी उत्तर पूर्व दिशामें एक घोर वन पड़ता था। उसमें एक गिरा पड़ा संघाराम था। यहाँपर भगवान बुद्धने विहार किया था और यहीं भिक्षुओंको जूते पहननेकी आज्ञा दी थी। विहारके पास अशोक

राजाका एक स्तूप था और उसके किनारे नीले पत्थरकी भगवानकी एक खड़ी मूर्ति थी।। उससे दक्षिण दिशामें एक घने वनमें एक और स्तूप था। वहांपर भगवान्ने शीतकालमें अपने तीनों वस्त्रोंको साटकर ओढ़ा था और भिक्षुओंको ओढ़नेकी आज्ञा दी थी। अचंडसे पूर्व दिशामें चलकर सुयेनच्वांग सिन्धु देशमें आया। सिन्धु देशसे दर्शन करता हुआ वह नदी पारकर मुलतान (मुलस्थान) देशमें आया। वहाँ आदित्यका एक विशाल मन्दिर था। उसमें सोनेकी एक दिव्य रत्नजटित प्रतिमा सूर्य्य भगवान्की थी। मन्दिरके पास एक सरोवर था, जिसमें सुन्दर घाट ईंटोंके बंधे हुए थे। दूर-दूरसे लोग सूर्य्य भगवान्के दर्शनोंके लिये आते थे और बड़ा मेला लगा रहता था। मुलतानसे वह पर्वत देशमें, आया। यहाँपर प्राचीन कालमें उपाध्याय जिनपुत्रने योगाचार, भूमिशास्त्रपरकारिका रची थी और भद्ररुचि और गुणप्रभाने यहींपर कषाय वस्त्र ग्रहण किया था। इस देशमें उसे दो तीन बड़े विद्वान् भिक्षु मिले। उनके पास वह दो वर्षतक रह गया और मूलाभिधर्म, सद्धर्मसंपरिग्रह, और सत्यप्रशिक्षा आदि शास्त्रोंका अध्ययन सम्मतीय निकायके अनुसार करता रहा। वहांसे सुयेनच्वांग दक्षिण-पूर्व दिशामें चलकर नालंद महाविहारमें पहुंचा और उपाध्याय शीलभद्रको जाकर प्रणिपात किया। वहां उसने सुना कि पर्वत देशका प्रज्ञाभद्र नामक एक महाविद्वान भिक्षु मगधमें आया है। और तिलाढ़कके विहारमें ठहरा है। वह सर्वास्तिवादनिकायका

अनुयायी है और त्रिपिटकका पाण और शब्दविद्या, हेतु-विद्या आदिका ज्ञाता है। सुयेनच्वांग यह सुन नालंदसे तिलाड़कमें गया और वहां दो वर्ष रहकर प्रज्ञाभद्रसे अपनी शंकाओंका समाधान करता रहा।

तिलाड़कसे सुयेनच्वांग राजगृहके पास यष्टि वन विहारमें गया। वहां उसे सुरथ जयसेन नामक एक क्षत्रिय गृहपति मिला। वह सुराष्ट्र देशका रहनेवाला था। बालपनमें उपाध्याय भद्ररुचिसे अध्ययन करता रहा और हेतुविद्याका अध्ययनकर वह बोधिसत्व स्थिर मतिके पास गया। उसके पास शब्द-विद्याका अध्ययन किया और महायान और हीनयानके अनेक शास्त्रोंका अध्ययनकर वह उपाध्याय शीलभद्रके पास आया और वहां योगशास्त्रका उसने अध्ययन किया। इसके अतिरिक्त उसने अनेक आचार्योंके ग्रन्थोंका अध्ययन किया और वेद-वेदांग, उपवेद, तंत्रमंत्र, आदि शास्त्रोंको आदिसे अंततक पढ़ा। समस्त शास्त्रोंका वह पारंगत और उनके तत्त्वका जाननेवाला था। वह बड़ा आचारवान था और सब लोग उसकी प्रतिष्ठा करते थे।

उस समय मगधमें पूर्णवर्मा राज्य करता था। वह बड़ा ही विद्यानुरागी और विद्वानोंका मान करनेवाला था। उसकी ख्याति सुनकर उसने उसे अपनी राज-सभामें बुलाया और उसे बीस गांवोंका बलिभोग करना चाहा पर उसने लेनेसे इनकार किया। तदनतर राजा श्री हर्षदेव शिलादित्यने उसे बुलवाया और उड़ीसामें बीस बड़े-बड़े गांवोंके बलिभोगको प्रदान करना चाहा;

पर उसने फिर लेनेसे इनकार किया और जब राजा उससे बारंबार ग्रहण करनेके लिये प्रार्थना करता रहा तो उसने यह उत्तर दिया कि जयसिंह यह भलीभांति जानता है कि दान लेनेसे मनुष्य रागमें फँस जाता है। मैं तो जन्म-मरणके बंधनको तोड़नेमें लगा हुआ हूं, भला मुझे आपके दान लेने और रागमें फंसनेसे क्या काम है ? मैं इन झंझटोंमें फंसना नहीं चाहता, मुझे विशेष अवकाश नहीं है। यह कहकर वह शिलादित्य राजाके पाससे चलता बना और अनेक प्रार्थनायें करनेपर भी वहां वह न रुका।

तबसे वह यष्टिवनविहारमें रहता और ब्रह्मचारियोंको अपने कुलमें लेता और उनकी रक्षा करता और शिक्षा देता था। गृहस्थ और यति सब उसके पास विद्याध्ययन करने जाते थे और सैकड़ों विद्यार्थियोंको वह नित्य विद्या-दान देता था।

सुयेनच्वांग उसके पास जाकर ठहरा और दो वर्षतक विद्यामात्र सिद्धि आदि शास्त्रोंकी शङ्काओंका समाधान करता रहा। फिर उसने योगशास्त्र और हेतु-विद्याके कठिन अंशोंकी व्याख्याका अध्ययन किया और उनपर अपनी शंकाओंको समाधान कराया।

दो वर्ष बीतनेपर एक दिन उसने रातको स्वप्न देखा कि नालंद महा विहार नितांत उजाड़ और निर्जन पड़ा है। वहाँ भसे बंधे हुए हैं और कोई भिक्षु दिखाई नहीं पड़ रहा है। सुयेनच्वांग बालादित्य राजाके संघारामके पश्चिम द्वारसे घुसा

और वहाँ उसे चौथे मंजिलकी छतपर एक हिरण्यवर्ण पुरुष दिखाई पड़ा। उसके शरीरसे प्रकाश निकलकर सारे विहारमें फैल रहा था। वह उसे देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ और उसके पास जाना चाहा, पर उसे ऊपर जानेका कोई मार्ग दिखाई न पड़ा। वह विवश हो उससे प्रार्थना करने लगा, कि कृपाकर आप नीचे आइये और मुझे भी अपने पास ले चलिये। उसने कहा, कि मैं मंजुश्री हूं। तुम्हारे कर्म अभी ऐसे नहीं हैं कि तुम मुझतक आ सको। फिर उसने उंगली उठाकर सुयेनच्वांगको कहा, देखो यह क्या हो रहा है। सुयेनच्वांगने दृष्टि उठाकर उस ओर देखा तो उसे देख पड़ा कि चारों ओर आग लग रही है और सारा विहार और उसके आसपासके गाँव भस्मीभूत होते जा रहे हैं। फिर उस हेमवर्ण पुरुषने उससे कहा, कि तुम अब अपने देशको लौट जाओ। शिलादित्य राजा अब बहुत दिन न रहेगा। उसके मरनेपर सारे देशोंमें उपद्रव और घोर विप्लव मचेगा। दुष्ट लोग परस्पर मार-काट करेंगे और सारा देश नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा। मेरी बातको स्मरण रखो।

सुयेनच्वांग सवेरे जब उठा तो जयसेनके पास गया और उससे अपने स्वप्नका सब समाचार कह सुनाया। जयसेनने कहा संसारमें शान्ति कहाँ, पर संभव है कि जैसा तुमने अपने स्वप्नमें देखा है वैसा ही हो। पर जब तुमको सूचना मिल गई है तो तुम्हें शीघ्रता करनी चाहिये।

उसी मासमें महा बोधि विहारका उत्सव पड़ा और वहां

दूर-दूरसे लोग भगवान् बुद्धदेवके शरीर-धातुके दर्शनके लिए एकत्रित हुए। सुयेनच्वांग भी जयसेनके साथ वहां दर्शनको गया। वहां शरीर-धातु भिन्न-भिन्न आकारके थे। बड़े धातु मोतीके बराबर थे और बड़े चमकीले गुलाबी रंगके थे। मांस धातुखण्ड सेमके दानोंके बराबर थे और चमकीले लालरंगके थे। बड़ा मेला लगा था। सब लोग फूल चढ़ाते, धूप जलाते और स्तुति प्रार्थना करते थे।

रातको पहरभर रात बीती थी और सुयेनच्वांग और जयसेन बैठे धातुके संबंधमें बातें कर रहे थे। जयसेनने कहा, मैंने आजतक जहां-जहां देखा है वहां-वहां धातु-खंड चावलसे बड़े देखनेमें नहीं आये पर बात क्या है? इतने बड़े-बड़े धातु खंड? यह सुनकर सुयेनच्वांगने कहा, कि हां मुझे भी इसमें सन्देह जान पड़ता है। थोड़ी देर नहीं हुई थी, कि संघारामके दीपक अचानक मन्द पड़ने लगे और भीतर बाहर अद्भुत प्रकाश हो गया। बाहर देखनेपर धातुके विहारका कंगूरा सूर्यकी भांति चमकता हुआ देख पड़ा। उससे पांचरंगकी ज्वाला निकलकर आकाशको स्पर्श कर रही थी। पृथ्वी और आकाश प्रकाशमें ओत-प्रोत हो रहे थे। चन्द्रमा और तारे दिखाई नहीं पड़ रहे थे। मन्द-मन्द गन्धसे सारी कक्षायें गमक रही थीं। बाहरसे इसी बीचमें सब लोग पुकारने लगे कि शरीरधातुकी महिमा देखो। सब लोग आकर चारों ओर खड़े हो गये और फूल चढ़ाने और धूप जलाने लगे। धीरे धीरे प्रकाश घटने लगा और

अन्तको वह विहारके कंगूरपर चक्राकार कई बार फिरता रहा और फिर उसीमें घुस गया। प्रकाशके गुप्त होते सारे संसारमें फिर अन्धकार छा गया और तारे फिर आकाशमें दिखायी पड़ने लगे।

वहां सुयेनच्वांग आठ दिनतक रहा और बोधिवृक्ष और अन्य पवित्र विहारोंके दर्शन और पूजा करके नालंद महाविहारको गया। शीलभद्रने उसे भेजा कि जाकर संघके सामने महायान सम्परिग्रह शास्त्रकी व्याख्या सुनावे और विद्यामात्र सिद्धिके कठिन वाक्योंका निर्वाचन करे। उस समय सिंहरश्मि नामक श्रमण सब लोगोंके सामने प्राण्यमूलशास्त्र और शत-शास्त्रकी नवीन व्याख्या जिसमें योगशास्त्रके सिद्धान्तोंका खंडन था सुना रहा था। सुयेनच्वांगने उसकी प्राण्यमूलशास्त्र और शतशास्त्रकी व्याख्याके सिद्धान्तोंका खंडन और योग-शास्त्रके सिद्धान्तोंका मंडन किया। उसने बड़े बड़े आचार्यों के वाक्योंको उद्धृत करके यह सिद्ध कर दिया कि ये परस्पर विरुद्ध नहीं हैं। उसने कहा कि उनके मत भले ही एक न हों पर वे एक दूसरेके बाधक नहीं हैं। यह दोष उनके अनुयायियोंका है कि वे परस्पर वादविवाद करते फिरते हैं। इससे धर्मको कोई हानि नहीं है। सुयेनच्वांगने सिंहरश्मिको सत्पक्ष स्वीकार करानेके लिये अनेक प्रश्न किये पर न तो उसने उनके उत्तर दिये और न अपने भ्रमहीको स्वीकार किया। यह देखकर उसके सब शिष्य उसे छोड़कर सुयेनच्वांगके पक्षमें चले आये। सुयेन-

च्वांगने कहा कि प्राण्यमूलशास्त्र और शतशास्त्र केवल सांख्यके सिद्धान्तके खण्डनके लिये बने हैं और उनमें इस संबन्धमें कुछ कहा ही नहीं गया है कि धर्मका स्वरूप क्या है। पर सिंहराशि उसे नहीं मानता था। वह कहता रहा कि जब सब बिना प्रयासके होता है तब योगका यह कहना कि धर्म प्रयाससे मिलता है अयुक्त है।

सुयेनच्वांगने इन दोनों प्रकारके परस्पर विरुद्ध शास्त्रोंके सिद्धान्तोंकी एकता दिखलानेके लिये ३००० श्लोकात्मक एक ग्रन्थकी रचना की और उसे ले जाकर शीलभद्रको और संघको सुनाया। सब लोगोंने उसे सुनकर उसकी विद्या-बुद्धि की प्रशंसा की और उसका अध्ययन-अध्यापन नालंदमें आरंभ हुआ। उस ग्रन्थकी रचनासे सुयेनच्वांगकी ख्याति भारतभरमें गूंज उठी।

सिंहराशि परास्त होकर नालंदसे महाबोधि विहारमें भाग गया। उसने वहां अपने एक सिपाहीको जिसका नाम चन्द्रसिंह था पूर्वीय भारतसे बुलवाया और कहा कि उन विरुद्ध शास्त्रोंके विषयमें मेरे साथ विचार करो। पर उसके तर्क और युक्तिके सामने उसे अपना मुंह बन्द कर लेना पड़ा और एक शब्द भी न बोल सका।

नालंदमें शिलादित्य राजाने जब सिंहराशि नालंदमें था तब एक विहार बनवाया था। उस विहारमें ऊपर नीचे सब पीतलके चद्दर जड़े हुए थे और वह सौ फुटसे अधिक ऊँचा था। जब

राजा शिलादित्य कोङ्योध (गंजाम) विजय करके उड़ीसामें पहुँचा तो वहाँके भिक्षु उसके पास आये और कहने लगे कि हमने सुना है कि श्रीमान्‌ने नालंदमें एक विहार बनवाया है। इससे तो अच्छा था कि आप कापालिकोंके लिये कोई मठ बनवा दिये होते। शिलादित्यने उन भिक्षुओंसे पूछा कि मैं तुम्हारी [illegible] पहेलीको नहीं समझता, स्पष्ट शब्दोंमें कहो। उन लोगोंने कहा कि नालंदके विहारमें 'आकाश कुसुम' की शिक्षा दी जाती है। कापालिकोंकी शिक्षा भी तो वैसी ही है। उनमें अन्तर ही क्या है? कारण यह था कि उड़ीसाके भिक्षु सब हीनयानानुयायी थे। उस समय दक्षिणके प्रज्ञागुप्त नामक एक ब्राह्मणने एक पुस्तक ७०० श्लोकोंकी लिखी थी जिसमें सम्मतीय निकायके सिद्धान्तानुसार उसने हीनयानका मण्डन और महायानका खण्डन किया था। समस्त हीनयानानुयायी भिक्षुओंको उस पुस्तकके पढ़नेसे इतना गर्व हो गया था कि वे हीनयानकी निन्दा करते और उसे 'आकाश कुसुम' कहा करते थे। उड़ीसाके भिक्षुओंने उस पुस्तकको महाराज शिलादित्यको दिखलाया और कहा कि हमारा यह सिद्धान्त है कि 'आकाश कुसुम' के माननेवालोंमें कोई इसके एक शब्दका भी खण्डन नहीं कर सकता है। शिलादित्यने उनको गर्वभरी बातोंको सुनकर कहा कि मैंने सुना है कि एक बार एक लोमड़ी खेतके चूहोंके साथ यह डींग मार रही थी कि मैं सिंहसे लड़ सकती हूं। पर जब सिंह उसके सामने आया तो न तो कहीं चूहोंका पता रह

गया और न लोमड़ी ही वहाँ ठहर सकी। आप लोगोंको अबतक महायानके विद्वानोंका सामना नहीं पड़ा है। जब सामना पड़ेगा तब आपकी उसी लोमड़ीकी दशा हो जायगी। इसपर उन भिक्षुओंने कहा कि यदि महाराजको इसमें सन्देह है तो श्रीमान् शास्त्रार्थ करायें, सत्यासत्यका निर्णय हो जाय। राजाने कहा एवमस्तु।

इसपर राजा शिलादित्यने नालंद महाविहारमें अपने दूतको उपाध्याय शीलभद्रके पास भेजा और लिखा कि यहां उड़ीसाके भिक्षुगण एक पुस्तकके आधारपर जिसमें महायानके सिद्धान्तों-का खण्डन किया गया है महायानानुयायियोंसे शास्त्रार्थ करनेके लिये उद्यत हैं। आपके महाविहारमें बड़े बड़े हीनयानके विद्वान भिक्षु हैं। आप उनमेंसे चार भिक्षुओंको चुनकर यहां भेजनेकी कृपा कीजिये कि वे यहाँ आकर हीनयानानुयायी भिक्षुओंसे शास्त्रार्थकर अपने पक्षका प्रतिपादन करें।

शीलभद्रने महाराज शिलादित्यका पत्र पाकर भिक्षु-संघको आमंत्रित किया और अपने विहारसे सागरमति, प्रज्ञारश्मि, सिंहरश्मि और सुयेनच्वांगको उड़ीसा भेजनेके लिये चुना, पर इसी बीचमें राजा शिलादित्यका दूसरा दूत यह समाचार लेकर पहुँचा कि अभी कोई जल्दी नहीं है, पीछेसे देखा जायगा। यह समाचार पाकर सब ठहर गये और उड़ीसाका जाना रह गया।

इसी बीचमें एक लोकायति ब्राह्मण नालंदमें शास्त्रार्थ करनेके लिये आया और उसने चालीस सूत्र लिखकर नालंदके

महाविहारके द्वारपर लटका दिये और कहा कि यदि कोई मेरी इन युक्तियोंका खण्डन कर दे तो मैं अपना सिर उसे समर्पण कर दूंगा। कई दिन बीत गये पर किसीने उसके आह्वानका उत्तर न दिया। सुयेनच्वांगने यह देख अपने उपासकको आज्ञा दी कि फाटकपर जाकर उस पत्रको उतारकर फाड़कर फेंक दो। वह वहां गया, उसे उतारकर फाड़ रहा था कि ब्राह्मण वहाँ आया और उससे पूछने लगा कि तुम कौन हो और किसकी आज्ञासे तुमने इसे उतारकर फाड़ा है? उपासकने कहा मैं चीनके श्रमण सुयेनच्वांगका उपासक हूं और उन्होंने मुझे इसे फाड़कर फेंकनेके लिये भेजा है। ब्राह्मण सुयेनच्वांगके नामको पहले ही सुन चुका था, वह मौन रह गया।

सुयेनच्वांगने दूसरे दिन उस ब्राह्मणको बुलाया और उपाध्याय शीलभद्र और अन्य भिक्षुओंके सामने शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। सुयेनच्वांगने उस शास्त्रार्थमें पाशुपत, कापालिक, निर्ग्रंथ, जटिल, सांख्य, वैशेषिकादि सभीके सिद्धांतोंका खण्डन करके बौद्ध सिद्धांतका मंडन किया और वह लोकायत ब्राह्मण जब परास्त हुआ तो उसने कहा कि मैं अपने वचनानुसार आपके सामने उपस्थित हूं, जो चाहिये कीजिये। सुयेनच्वांगने कहा कि हम शाक्यपुत्र हैं, मनुष्यका प्राण नहीं लेते। तुम्हारा इतना ही करना बस है कि तुम मेरे दास हो जाओ और मेरी आज्ञा मानो। सुयेनच्वांगकी यह बात सुन ब्राह्मण उसका दास हो गया और यह सुनकर सब उसकी प्रशंसा करने लगे।

सुयेनच्वांग उड़ीसामें जाकर उस पुस्तकको देखनेके विचार-में था जिसमें महायानका खण्डन किया गया था और जिसके बलपर वहांके हीनयानानुयायी भिक्षु महायानानुयायियोंको 'आकाश-कुसुम' के खोजनेवाले कहा करते थे। बड़ी खोजसे उस पुस्तकको उसने प्राप्त किया और देखा तो उसके मत प्रायः अनर्गल थे। उसने उस ब्राह्मणसे कहा कि आपने इस ग्रंथको कभी देखा है या नहीं। उसने उत्तर दिया कि मैं इसे पांच बार पढ़ चुका हूं। फिर सुयेनच्वांगने कहा, लो इसे समझाओ। ब्राह्मणने कहा, मैं आपका दास हो चुका हूं, मैं आपको इसे कैसे समझा सकता हूं? सुयेनच्वांगने कहा कि यह अन्य धर्माव-लम्बियोंका ग्रन्थ है, मैं उनके सिद्धान्तको नहीं जानता हूं। तुम इसे निःसङ्कोच मुझे समझाओ, इसमें मेरी किसी प्रकारकी हेठाई नहीं है। ब्राह्मणने कहा कि आप इसे आधी रातको समझिये, उस समय सब सोते रहेंगे और कोई जानेगा भी नहीं। आपका अपमान भी न होगा।

जब रात आयी और सब लोग अपने अपने स्थानपर जाकर विश्राम करने लगे तब ब्राह्मणने उस पुस्तकको पढ़ाना और समझाना आरम्भ किया। सुयेनच्वांगने उस ग्रन्थके सारे आक्षेपोंका खण्डन १६०० श्लोकोंमें किया और उस पुस्तकको लेकर उपाध्याय शीलभद्रको समर्पण किया। उस ग्रंथको देखकर सभी लोगोंके मुंहसे यही शब्द निकलता था कि बड़ी योग्यतासे ग्रंथकी आलोचना की गयी है।

फिर तो सुयेनच्वांगने उस ब्राह्मणसे कहा कि अब तुम्हारा दंड हो चुका, तुम स्वतन्त्रतापूर्वक जहां चाहो जाओ। मैंने तुमको क्षमा किया। ब्राह्मण यह सुन बड़ा प्रसन्न हुआ और पूर्व भारतमें चला गया।

निग्रन्थ ज्योतिषी

उस ब्राह्मणके चले जानेपर नालंदमें वज्र नामक एक निर्ग्रन्थ भिक्षु आया। सुयेनच्वांग यह पहलेहीसे सुन चुका था कि निर्ग्रन्थ भिक्षु कलित और प्रश्नके विचारनेमें बड़े दक्ष होते हैं। सुयेनच्वांगने उसे अपने पास बुलाया और आसन देकर कहने लगा कि मैं चीन देशसे यहां आया हूं। अब मेरा विचार अपने देश जानेका है। कृपाकर विचारकर बतलाइये कि मार्ग जाने-योग्य हो गया है या नहीं? मेरा अपने देश जाना अच्छा है या यहीं रह जाना? मेरी आयु अभी कितनी है? आप इन सबका विचारकर उत्तर दीजिये।

निर्ग्रन्थने खड़िया लेकर भूमिपर चक्र बनाया और कुंडली बनाकर भाखने लगा। उसने कहा कि आप इस देशमें रहें तो भी अच्छा है, सब लोग आपका मान करेंगे। अपने देशको जाइये तो अच्छा ही है कोई बाधा नहीं है। हां, आपके इष्टमित्रोंको यहां वियोग-कष्ट होगा। आपकी आयु अभी दस वर्ष शेष है। इस-पर सुयेनच्वांगने फिर प्रश्न किया कि मेरा विचार तो देश जानेका है पर मेरे पास मूर्तियां और पुस्तकें बहुत हैं, मैं नहीं

जानता कि मैं इनको कैसे ले जाऊं, कोई उपाय नहीं सूझता है। निर्ग्रन्थने कहा, इसकी चिन्ता आप व्यर्थ करते हैं, कुमारजीव और शिलादित्य राजा आपको बुलायेंगे और आपके लिये अपने देश जानेका सब प्रबन्ध हो जायगा। सुयेनच्वांगने फिर कहा,- मैंने तो इन दोनों राजाओंको देखातक नहीं है। भला वे मुझपर इतनी कृपा करनेवाले क्यों होंगे? निर्ग्रन्थने कहा कि कुमार राजाका तो दूत चल चुका है। वह दो तीन दिनमें पहुंचना ही चाहता है। पहले आप कुमार राजाके पास जायंगे फिर वहांसे आपको राजा शिलादित्य बुलायेगा।

यह कहकर निर्ग्रंथ तो चला गया और सुयेनच्वांग अपनी मूर्तियों और पुस्तकोंको सहेजने लगा और जानेकी तैयारीमें लगा। इसी बीचमें संघारामके अनेक भिक्षु वहां आ गये। उन लोगोंने सुयेनच्वांगसे कहा कि भारतवर्ष भगवान बुद्धदेवका जन्मस्थान है। यहां बड़े बड़े ऋषि और महात्मा हो गये हैं। यद्यपि अब वे नहीं हैं पर उनके लीलास्थान अब भी हैं। मनुष्य-जन्मकी सफलता उनके दर्शन और पूजामें है। उनको छोड़ आप कहां जानेका विचार कर रहे हैं, चीन देश तो म्लेच्छ देश है। वहांके लोग कर्मके हीन होते हैं, धर्मको समझ नहीं सकते, इसीसे तो भगवान बुद्धका वहां अवतार नहीं होता है। उन लोगोंके विचार मन्द और आचार हीन हैं, इसीसे ऋषि महर्षि इस देशके बाहर नहीं जाते हैं। इसके अतिरिक्त वहां शीतकी प्रधानता है, देश विषम है। इन सबपर ध्यान करो और यहीं रह जाओ।

यह सुन सुयेनच्वांगने उत्तर दिया कि धर्मराजने धर्मका उपदेश संसारके प्राणीमात्रके लिये किया था। भला आप उनके धर्मको ग्रहणकर कैसे औरोंको उससे वंचित करना चाहते हैं? चीन देशमें न्याय है, सब नियमका आदर करते हैं, राजाका मान है, अमात्य राजवत्सल, पिता-माता वात्सल्यभाव युक्त, पुत्र पितृभक्त होते हैं, धर्म और नीतिका सब लोग मान करते हैं, बड़े और सब लोगोंका आदर होता है। इसके अतिरिक्त वे लोग ज्योतिष, संगीत, मंत्र-तंत्रादि विद्याओंमें कुशल होते हैं। जबसे यहां बौद्ध-धर्मका प्रचार हुआ है वे महायानके अनुयायी हैं। वहां योग, नीति आदि शास्त्रोंका अध्ययन और अभ्यास होता है। वे धर्मके जिज्ञासु हैं और त्रिविधि शरीरसे मुक्त हो निर्वाणकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करते हैं। भगवानका जब अवतार हुआ तो उन्होंने मनुष्योंको धर्मकी शिक्षा दी। उसके पूर्व उनका कहां कहां जन्म हुआ इसे कौन कह सकता है, फिर आप यह कैसे कहते हैं कि उनका जन्म इस देशके बाहर नहीं होता है!

उन लोगोंने फिर कहा कि ग्रन्थोंमें लिखा है कि सभी धर्म अच्छे हैं, उनमें यदि उच्चता और नीचता है तो गुण अवगुणके विचारसे है। हमलोगोंका इतना ही कहना है कि आप कहीं और न जाइये और जम्बू द्वीपहीमें जहां भगवान बुद्धका जन्म हुआ, रह जाइये। यह देश परम पवित्र है, इतर देश म्लेच्छ देश हैं, यहां धर्मकी न्यूनता है, इसीलिये हमारा यह आपसे आग्रह है।

सुयेनच्वांगने कहा कि विमल कीर्ति ने अपने एक शिष्यको उपदेश देते हुए कहा था कि तुम जानते हो कि सूर्य जंबूद्वीपकी परिक्रमा क्यों करता है, अंधकारको नाश करनेके हेतु! यही कारण है कि मैं क्यों अपने देशमें जाना चाहता हूं।

भिक्षुओंने जब देखा कि सुयेनच्वांग मनानेसे नहीं मानता तो उससे कहा कि उपाध्याय शीलभद्रके पास चलकर उनकी भी तो सम्मति आप ले लीजिये, फिर जैसा आपके मनमें भावे कीजियगा।

फिर सब उठकर शीलभद्रके पास गये और वहां जाक कहा कि सुयेनच्वांग चीन जानेकी तैयारी कर रहा है। शील भद्रने यह सुन सुयेनच्वांगसे कहा कि आपके जानेका विचा करनेका कारण क्या है?

सुयेनच्वांगने कहा कि इसमें सन्देह नहीं कि यह देश भग वान बुद्धकी जन्मभूमि है। इसका मान मैं जितना करूं थोड़ा है, पर यहां मैं यह संकल्प करके आया हूं कि यहांसे धर्मग्रंथोंका अध्ययन कर अपने देशमें जाकर वहांवालोंको लाभ पहुंचाऊंगा। आपने मेरे आनेके कारण योगशास्त्र, भूमिशास्त्रकी व्याख्या सुनानेकी कृपा की; मेरे अनेकों भ्रमोंका छेदन किया, मैं इससे आपका बड़ा कृतज्ञ हूं। आपकी कृपासे मैंने यहांके विविध तीर्थस्थानोंके दर्शन और पूजा की और भिन्न भिन्न कार्योंकी व्याख्याओंको श्रवण किया। मैं कृतकृत्य हो गया और मेरी यहांकी यात्रा सफल हुई। अब मेरी कामना यही है कि अपने

देशमें जाऊं और जो कुछ मैंने पढ़ा और सुना है वह सब बैठकर यथाबुद्धि अपने देशकी भाषामें लिख डालूं। यही कारण है कि मैं अपने देश जानेके लिये उतावली कर रहा हूं।

शीलभद्रने कहा कि तुम्हारा यह विचार बोधिसत्वके विचारोंके तुल्य है। मैं आशीर्वाद देता हूं कि तुम्हारी कामना पूरी हो। मैं तुम्हारे वाहनादिका प्रबंध करनेके लिये आज्ञा दिये देता हूं।

कुमार राजा

ब्राह्मण सुयेनच्वांगसे विदा होकर पूर्वदेशमें गया और वहां कामरूप पहुंचकर कुमार राजासे उसकी बड़ी प्रशंसा की। कुमार राजाका वास्तविक नाम भास्कर वर्म्मा था। उसके पूर्वजका नाम नारायणदेव था। वह जातिका ब्रह्मक्षत्रिय था और बड़ा विद्वान्, धर्मनिष्ठ और विद्वानोंके गुणका ग्राहक था। यद्यपि वह बौद्धधर्मावलंबी नहीं था, पर विद्वान् श्रमणोंकी वह बड़ी प्रतिष्ठा करता था। जब उसने यह सुना कि सुयेन-च्वांग चीन देशसे यहां विद्या और धर्मके अर्थ आया है और नालंदके विद्यापीठमें ठहरा हुआ है। उसने अपने दूतको नालंद महाविहारमें उपाध्याय शीलभद्रके पास भेजा और पत्रमें लिखा कि मैंने सुना है कि चीनदेशका कोई श्रमण आपके विहारमें आया है और वहां ठहरा हुआ है। मैं उसके दर्शनका आकांक्षी हूं। आपसे प्रार्थना है कि आप उसे मेरे यहां भेजकर मुझे अनुग्रहीत कीजिये।

दूत यह पत्र लेकर नालंदकी ओर चला और ठीक उसी दिन जिस दिन कि निर्ग्रन्थ भिक्षु ने सुयेनच्वांगसे उसके आनेकी बात कही थी पहुंचा। शीलभद्रने पत्र पढ़कर सुयेनच्वांगको संघमें बुलवाया और कहा कि यह कुमार राजाका पत्र है, उसने सुयेनच्वांगको अपने यहां मिलनेके लिये बुलाया है पर उधर शिलादित्य राजाने भी उड़ीसासे चार श्रमणोंको शास्त्रार्थके लिये बुलाया है और हमलोग उसे शास्त्रार्थके लिये चुन चुके हैं। न जाने कब शिलादित्यका पत्र बुलानेके लिये आवे। अब यदि सुयेनच्वांगको कुमार राजाके यहां भेज दिया जाय तो शिलादित्यके पत्र आनेपर क्या किया जायेगा। संघकी यह सम्मति ठहरी कि उसे कुमारराजके यहां भेजना उपयुक्त नहीं है और दूतको यह लिखकर बिदा कर दिया गया कि श्रमण सुयेनच्वांग अपने देश जाना चाहता है अतः वह श्रीमान्‌की प्रार्थना स्वीकार करनेमें असमर्थ है।

दूत पत्र लेकर वापस गया। राजा भास्कर वर्म्मा कुमारराजने फिर अपने दूतको यह लिखकर नालंद भेजा कि यद्यपि श्रमण अपने देश जानेके लिये उत्सुक है पर कृपाकर उनको थोड़े ही दिनके लिये यहां भेज दीजिये कि मुझे अपने दर्शन दे जायें। उनको शीघ्र लौटा दिया जायेगा, किसी प्रकारकी कठिनाई नहीं होगी। आप कृपाकर मेरी प्रार्थना को स्वीकार करें और उन्हें आने दें।

शीलभद्रने फिर भी दूतको दुबारा यह कहकर लौटा दिया

कि सुयेनच्वांग अपने देशमें जा रहा है यह जा नहीं सकता है। कुमार राजा जब दूत दूसरी बार लौट गया तो बहुत क्रुद्ध हुआ, उसने दूतको तीसरी बार फिर शीलभद्रके पास भेजा और लिखा कि मैं अबतक सांसारिक सुख-भोगमें पड़ा हुआ था और बौद्धधर्मके गुणोंका मुझे बोध नहीं था। मुझे यह सुनकर कि चीनसे एक भिक्षु यहां धर्मकी जिज्ञासामें आया है उसके दर्शन करनेकी अचानक कामना मेरे हृदयमें उत्पन्न हुई है। संभव है कि यह पूर्वजन्मके किसी संस्कारका फल हो, पर आप उसे यहां आने नहीं देते। जान पड़ता है कि आपकी यह कामना है कि संसार अंधकारमें पड़ा रहे। क्या यही आपके धर्मका प्रचार करना है? इसी प्रकार आप लोगोंको मोक्षमार्गका उपदेश करेंगे? मैं आपकी सेवामें पुनः निवेदन करता हूं कि आप उसे इसी दूतके साथ भेज दें। मैं उसके देखनेको अत्यंत उत्सुक हो रहा हूं। यदि इस बार वह न आवेगा तो संभव है कि मुझमें क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो उठे। उस समय मैं क्या कर बैठूं इसे मैं नहीं कह सकता। अभी बहुत दिन नहीं हुए राजा शशांकने बौद्धधर्मके साथ क्या व्यवहार किया था और बोधिद्रुमको खोदकर फेंक दिया था। उसे आप भूले नहीं होंगे। क्या आप यह समझते हैं कि मेरे पास वह बल-पराक्रम नहीं है? आवश्यकता पड़नेपर मैं भी अपनी चतुरंगिनी सेना सजा सकता हूं और नालंदके विहारको धूलमें मिला सकता हूं। इस बातको आप सच समझें, अच्छा

होगा कि आप इसके परिणामको भलीभांति सोच लें।

दूत शीलभद्रके पास पहुंचा और कुमार राजाका पत्र उसे दिया। उसने पत्रको पढ़कर सुयेनच्वांगको बुलाया और कहा कि कुमार राजा इस समय तुम्हारे देखनेके लिये व्याकुल हो रहा है, अबतक उसके देशमें बौद्धधर्मका प्रचार नहीं हो पाया है। संभव है कि आपके द्वारा वहां धर्मका प्रचार हो। आप वहां जानेको तैयार हो जाइये। आपने कषाय केवल संसारका उपकार करनेके लिये धारण किया है। पेड़को नाश करनेके लिये उसकी जड़ काटनेकी आवश्यकता है। फिर तो पत्तियां आपसे आप सूख जायेंगी। वहां जाकर आप पहले राजाके हृदयके कपाटको खोलनेका प्रयत्न करें। जब वह धर्मको स्वीकार कर लेगा फिर सारे राज्यमें धर्मका प्रचार सुगमतासे हो जायगा। पर यदि आप वहां न आयेंगे तो यहांकी कुशल नहीं है। आप इस थोड़ेसे कष्टको उठानेसे हिचकें मत और आज ही वहां चल दीजिये।

सुयेनच्वांगने यह आज्ञा पाकर उपाध्यायकी वंदना की और दूतके साथ कामरूपको रवाना हुआ। कई दिनोंमें वह वहां पहुंचा। कुमार राजाने उसके आगमनका समाचार पाकर अपने प्रधान कर्मचारियोंको साथ लेकर उसकी अगवानी की और बड़े आदर और सत्कारसे उसे अपने राजप्रासादमें ले आया। वहां उसकी पूजाके लिये नित्य फूल,चंदन,धूप इत्यादि भेजनेका प्रबंध करदिया और उपोपथके दिनके लिये विशेष प्रबंध कर दिया।

सुयेनच्वांगको यहां पहुंचे एक महीनेसे कुछ ऊपर दिन बीते थे कि शिलादित्यको यह समाचार मिला कि सुयेनच्वांग कुमार राजाके यहां ठहरा है। उसने अपने दूतको कुमार राजाके पास भेजा और लिखा कि आप चीनके श्रमणको जो आपके यहां ठहरा है इसी दूतके साथ भेज दीजिये। दूत राजा शिलादित्यका पत्र लेकर कुमार राजाके दरबारमें पहुंचा और कहा कि शिलादित्यने चीनके श्रमणको बुलाया है। कुमार राजाने दूतको कोरा वापस कर दिया और लिखा कि आप मेरा शिर ले लें तब आप चीनके श्रमणको पा सकते हैं। मेरे जीते तो वह नहीं जायगा। दूत वापस आया और राजा शिलादित्यको कुमार राजाका पत्र दिया। शिलादित्य उस पत्रको पढ़कर बड़ा क्रुद्ध हुआ। उसने कहा कि कुमार राजाको क्या हो गया है कि उसने इस प्रकार मेरी अवज्ञा की? उसने फिर दूतको उलटे पैर कुमारराजाके पास भेजा और लिखा कि अच्छा तो इस दूतके हाथ अपना शिर ही भेज दीजिये। कुमार राजा उसका पत्र पाकर डरा और स्वयं शिलादित्यके पास चलनेकी तैयारी करने लगा।

उसने अपनी सेनाको सजनेकी आज्ञा दी और २०००० हाथी अपने साथ लेकर चला, और गंगामें ३०००० नौकाका प्रबंध किया। वह गंगा नदीके मार्गसे होकर चला और सुयेन-च्वांगको साथ लिये कजुरगिरि देशमें पहुंचा। शिलादित्य उस समय उड़ीसासे कजूरगिरिमें आ गया था। कुमार राजाने

गंगा नदीके उत्तर तटपर जहां शिलादित्यका पड़ाव था अपना पड़ाव बनाये जानेकी आज्ञा दी। फिर वह आप शुभ दिन शोधकर गंगा पार उतरा और राजा शिलादित्यसे जाकर दक्षिण तटपर जहां उसका पड़ाव पड़ा था मिला।

शिलादित्य कुमार राजासे मिलकर बहुत प्रसन्न हुआ और उससे कुशल-प्रश्न पूछनेके अनन्तर कहा कि आप चीनके श्रमणको कहां छोड़ आये हैं। कुमार राजाने कहा कि वह मेरे पड़ावमें है। शिलादित्यने कहा कि फिर उसे अपने साथ लाना था? कुमार राजाने उत्तर दिया कि जब महाराज श्रमणों का इतना आदर करते हैं और धर्मपर आपको इतनी निष्ठा है तो श्रीमान्‌को उसे आमंत्रण करना चाहिये। शीलादित्यने कुमार राजासे कहा कि आप जाकर अपने पड़ावमें विश्राम करें, कल मैं स्वयं श्रमणको लेने आऊंगा।

कुमार राजा शिलादित्यसे विदा होकर अपने पड़ावमें आया और सुयेनच्वांगसे कहने लगा कि शिलादित्यने यद्यपि यह कहा है कि मैं कल आऊंगा पर मेरा मन कहता है कि उसे चैन न पड़ेगा और संभवतः आज रातहीको आ पहुंचेगा। हमें उसके स्वागत करनेके लिये तैयार रहना चाहिये पर आपका अपने स्थानसे उठना उचित न होगा। आप अपने ही स्थानपर बैठे रहियेगा। सुयेनच्वांगने कहा कि मैं विनयके अनुसार रहूंगा, उसके विरुद्ध कुछ कर नहीं सकता।

एक पहर रात न बीती थी कि दूतने आकर समाचार दिया

कि नदीमें सहस्रों मशाल जलते दिखाई पड़ रहे हैं और दुंदुभीके शब्द सुनाई पड़ते हैं। ज्ञात पड़ता है कि शिलादित्य राजा आ रहा है। कुमार राजाने आज्ञा दी कि मशालची तैयार हों और अमात्य-गणको बुलवाया। सबको साथ लेकर वह नदीके किनारे शिलादित्य राजाकी अगवानीके लिये पहुंचा। वहांसे राजा शिलादित्यको साथ लिये जहांपर सुयेनच्वांग था आया। शिलादित्यने पहले सुयेनच्वांगके चरणोंकी वंदना की, फिर पुष्प चढ़ाये और अनेक श्लोकोंसे उसकी स्तुति की। फिर उसने कहा कि इसका कारण क्या है कि मैंने कई बार आपसे दर्शन देनेकी प्रार्थना की पर आपने कृपा नहीं की?

सुयेनच्वांगने कहा, मैं यहां बुद्ध-वचनोंकी खोज करने और योगाचार भूमि-शास्त्रका अध्ययन करने आया हूं। आपने जब मुझे बुलानेके लिये पत्र भेजा था, तो उस समय मैं योगाचार भूमि शास्त्रका अध्ययन कर रहा था। इसी कारण आपके दरबारमें आ न सका।

शिलादित्यने पूछा कि मैंने सुना है कि आपके देशमें एक ऐसा राजा है जिसके यशोंका गान लोग नृत्य और वाद्यसे करते हैं। वह कौन ऐसा राजा है? कृपाकर उसका कुछ वर्णन तो सुनाइये।

सुयेनच्वांगने कहा कि हमारे देशकी यह प्रथा है कि जब वहां कोई ऐसा पुरुष प्रगट होता है जो सज्जनोंकी रक्षा और दुष्टोंका दमन करता है तथा प्रजाका पालन करता है तो लोग उसके

यशका गीत बनाकर पहले मंदिरमें वाद्यके साथ उसे गान करते हैं फिर उनका प्रचार गाँवोंमें हो जाता है और सर्व-साधारण उसे गाते फिरते हैं। जिसके संबंधमें आपने ऐसा सुना है वह चीनका वर्त्तमान सम्राट् है। उसके पूर्व सारे देशमें विप्लव मचा था। कोई देशमें राजा न था। चारों ओर मारकाट मच रहा था, खेतोंमें और नदियोंके किनारे पड़ी लाशें सड़ रही थीं, भूमि रक्तसे कीचड़ हो गई थी। ऐसे समयमें कुमार ताइसु'गने अपने हथियार संभाले और दुष्टोंका दमन करके देशमें शांति स्थापित की, सारी प्रजाको सुख प्रदान किया। उसीके यशका गान है जिसके संबंधमें आपने सुना है।

शिलादित्यने कहा कि ईश्वर जब बहुत प्रसन्न होता है तब वह किसी देशमें ऐसा प्रजापालक राजा उत्पन्न करता है। धन्य है वह देश और धन्य हैं ऐसे महिपाल। यह कहकर शिलादित्यने कहा कि अब मुझे आप आज्ञा दें। आज मैं जाता हूं कल मैं आपको अपने यहां आनेके लिये आमंत्रित करता हूं। कल मेरा दूत आपको बुलानेके लिये आवेगा कृपाकर मेरे यहां पधारकर मुझे पवित्र कीजियेगा। फिर शिलादित्यने प्रणाम किया और अपने साथियोंसहित गंगा उतरकर अपने शिविरको लौट गया।

दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही राजा शिलादित्यका दूत कुमार राजाके शिविरमें पहुंचा और कुमार राजा सुयेनच्वांगको लेकर अपने अमात्योंसहित शिलादित्यके शिविरको रवाना हुआ। पहुंचते ही राजा शिलादित्य अपने बीस सहचरोंके साथ

अपने डेरेसे बाहर आया और स्वागत कर उनको ले जाकर आसन-पर बैठाया। फिर भोजन तैयार हुआ और नाना भांतिके व्यंजन सबके आगे रखे गये। नाना प्रकारके बाजे बजते थे। भोजन कर लेनेके अनंतर जब राजा बैठा तो उसने सुयेनच्वांगसे कहा कि मैंने सुना है कि आपने कोई पुस्तक लिखी है जिसमें सब असत्सिद्धांतोंका खंडन किया है। सुयेनच्वांगने उस पुस्तकको निकालकर राजाके हाथमें दे दिया और कहा कि यह है आप इसे देखें।

पुस्तकको राजाने हाथमें लेकर उसे इधर-उधर उलट-पुलटकर देखा और अपने सहचरोंसे कहने लगा, कि सूर्य्यके उदय होते ही खद्योतके प्रकाश मंद हो जाते हैं, बादलकी गरजके आगे हथौड़ीको खटखट सुनाई नहीं पड़ती। भला उस सिद्धांतके आगे जिसका आप मंडन करें दूसरे कहां ठहर सकते हैं? आपके तर्कके आगे दूसरे मतवाले क्या मुंह खोल सकेंगे? फिर राजाने कहा, कि महास्थविर देवसेन कहा करता था कि मैं शास्त्रोंकी व्याख्या सारे विद्वानोंसे अच्छी कर सकता हूं और मैंने समस्त विद्याओंका अध्ययन किया है पर यह सब होते हुए मैं महायानके विरुद्ध हूं। पर वह भी आपके आगमनका समाचार पाकर आपके दर्शनके लिये वैशाली गया। इसीसे समझ-लेना चाहिये कि ये भिक्षु आपके सामने कब ठहर सकेंगे?

उस समय राजा शिलादित्यकी बहन,जो विधवा थी और सम्मतीय निकायकी अनुयायी उपासिका थी वहां पर्देकी

ओटमें बैठी सब बातें सुन रही थी। वह यह सुन अपने मनमें बड़ी आनंदित हुई कि सुयेनच्वांगने अपनी पुस्तकमें हीनयानका खंडन और महायानका मंडन किया है।

फिर राजा शिलादित्यने सुयेनच्वांगसे कहा कि इसमें संदेह नहीं कि आपने इस पुस्तकमें यथावत् महायानका मंडन किया है और मेरा इससे तोष हो जायगा पर फिर भी हीनयानके और अन्य संप्रदायके कितने ही विद्वान् इसे नहीं मानेंगे। मेरी सम्मति है कि कान्यकुब्जमें चलकर एक परिषद् की जाय और उसमें भारतवर्षके पांचों खंडोंके विद्वान् श्रमणों और ब्राह्मणोंको आमंत्रित किया जाय। वहां चलकर आप महायानके सिद्धांतोंका मंडन और अन्य सिद्धांतोंका खंडन करें और अपनी विद्याका वैभव दिखलावें।

सुयेनच्वांगकी सम्मति लेकर समस्त भारतवर्षके देशोंमें दूतको आमंत्रणपत्र देकर राजाओंके यहां भेजा कि अमुक तिथिको कान्यकुब्ज नगरमें परिषद् होगी। आप लोग समस्त श्रमणों और ब्राह्मणोंको आमंत्रित करें और उक्त समयपर सबके साथ पधारनेकी कृपा करें। उसने श्रमणों और ब्राह्मणोंको लिखा कि उस दिन चीनके एक परिव्राजकके ग्रंथपर जो उसने महायानके मंडनमें लिखा है विचार होगा। आप लोग आकर परिषद्में अपने अपने सिद्धांतका मंडन कीजिये और उक्त परिव्राजक श्रमणसे शास्त्रार्थ कीजिये।

कान्यकुब्जकी परिषद्

शिलादित्य राजाने पहलेहीसे दूत कान्यकुब्ज भेज दिया था

कि दो छप्परोंके मंडप बनवाये जायँ—एक श्रमणों और ब्राह्मणों की परिषद्के लिये दूसरा भगवान्की मूर्तिके लिये। इनमें कमसे कम १००० मनुष्योंके लिये स्थान रहे। उसके और अन्य राजाओं और आमंत्रित अतिथियोंके ठहरनेके लिये नगरके बाहर छप्परके पड़ाव और झोपड़ियां तैयार की जायं।

राजा शिलादित्य कजुगिरिसे कुमार राजाके साथ सुयेन-च्वांगको साथ लिये कान्यकुब्जको रवाना हुआ। शीतकालका आरंभ था, शिलादित्यकी वाहिनी गंगाके दक्षिण तटसे और कुमार राजाकी उत्तर तटसे होकर जाती थी। बीचमें नदीसे होकर नावोंका बेड़ा चलता था। दुन्दुभी, तूरी आदि बाजे बजते थे। तीनमासमें सब वसंत ऋतुके आरंभमें आकर कान्यकुब्ज नगरमें पहुँचे और गंगाके दक्षिण तटपर पड़ावमें आकर डेरा डाला।

इस परिषद्के लिये वहां देश-देशके अठारह बीस राजे पहलेसे आकर एकत्रित थे। महायान और हीनयानके अनुयायी ३००० श्रमण आये थे। बौद्ध भिक्षुओंके अतिरिक्त ३००० ब्राह्मण और निर्ग्रन्थपति और १००० नालंदके श्रमण पधारे थे। यह सब बड़े धुरन्धर विद्वान् और अनेक शास्त्रोंके पारंगत थे और सुयेन-च्वांगके ग्रंथपर विचार करनेके उद्देशसे आमंत्रण पाकर परिषद्में आये थे। उनके साथ हाथी, रथ, पालकी आदि वाहन थे और झुंडके झुंड शिष्योंकी मंडलियां थीं। उनको देखकर जान पड़ता था कि मनुष्योंका समुद्र लहरें मार रहा है।

मंडप भी बनकर तैयार हो गये थे। वह बड़े विशाल और

ऊंचे थे। राजा शिलादित्यका पड़ाव उन मंडपोंके पश्चिम ओर पाचालीसे ऊपर था। वहां राजाने कारीगरोंको बुलवाकर मनुष्यके आकारकी सोनेकी एक मूर्ति भगवान् बुद्धदेवकी ढलवाई। जब मूर्ति बनकर तैयार होगई तब उसके उत्सव निकलनेका प्रबंध किया गया। सोने चांदीके हौदे पड़े अनेक हाथी मंगवाये गये और एक हाथीकी पीठपर जो सबसे अधिक सुसज्जित था भगवान् बुद्धदेवकी प्रतिमा उठाकर रखी गयी। फिर शिलादित्य और कुमार राजा वस्त्राभूषण पहने सिरपर मुकुट धारणकर अपने २ हाथियोंपर सवार हुए। राजा शिलादित्यके हाथमें श्वेत चंवर और कुमार राजाके हाथमें रत्न-जटित छत्र था। फिर दो हाथियोंके ऊपर फूल और रत्न मणि इत्यादि लादे गये। तदनन्तर सुयेनच्वांगको एक हाथीपर महामात्यके साथ बैठाया गया। फिर अन्य राजकर्मचारी, आमंत्रित राजमंडल और प्रधान श्रमणों और ब्राह्मणोंको यथायोग्य हाथियोंपर बैठाया गया। जब सब लोग सवार हो गये तो उत्सवकी यात्रा मंडपकी ओर चली।

आगे आगे भगवान् बुद्धदेवका हाथी था। उसके दायीं ओर शिलादित्यका और बायीं ओर कुमार राजाका हाथी था। उनके किनारे फूलसे लदे हुए एक एक हाथी थे। पीछे सुयेनच्वांग और अन्य बड़े बड़े अमात्योंके हाथी थे। इन सबके दायें-बायें तीन तीन सौ हाथियोंकी पंक्तियां थीं जिनपर बड़े बड़े राजे महाराजे, राजकर्मचारी, श्रमण, ब्राह्मण आदि थे। उत्सवकी

यात्रा प्रातः कालके समय निकाली गयी थी। बाजे बजते जा रहे थे, पताके उड़ रहे थे और मार्गमें राजा शिलादित्य और कुमार राजा फूलों और मणि-रत्नोंको बरसाते चलते थे।

जब उत्सवकी यात्रा परिषद्‌के बाहरी द्वारपर पहुंची तो सब लोग अपनी अपनी सवारियोंसे उतर पड़े और मूर्तिको उठाकर मंडपमें ले गये। वहां राजा शिलादित्यने उसको पहले सुगन्धित जलसे स्नान कराया फिर ले जाकर रत्न-जटित सिंहासनपर बैठाकर उसकी पूजा की। राजाके पूजा कर लेनेपर सुयेनच्वांगने उसकी पूजा की। फिर शिलादित्यने भिन्न-भिन्न जनपदोंके राजाओंको, एक सहस्र चुने हुए श्रमणों, ५०० ब्राह्मणों और निर्ग्रंथादि संप्रदायके पतियोंको तथा दो सौ भिन्न भिन्न जनपदोंके अमात्यों और राजकर्मचारियोंको भीतर आनेको आज्ञा दी। शेष लोगोंके लिये आज्ञा हुई कि सब लोग बाहर बैठ जायँ। जब सब लोग भीतर बाहर बैठ गये तब शिलादित्य राजाने सबके आगे विविध भांतिके व्यंजन परसवाये और सब लोगोंसे जीमनेके लिये कहा। जब सब लोग भोजन कर चुके तब उसने भगवान्‌के सामने सोनेकी एक थाली, एक कटोरा, सात झऋर, एक सोनेका दण्ड, तीन सहस्र स्वर्णमुद्रा और तीन सहस्र थान कार्पासवस्त्र समर्पण किये। राजाके चढ़ावा करनेके अनन्तर सुयेनच्वांग और अन्य गण्यमान श्रमणोंने यथासामर्थ्य चढ़ावे चढ़ाये।

जब सब लोग अपने २ चढ़ावे चढ़ा चुके तो राजा शिला·

दित्यने आज्ञा दी कि परिषद्में एक ऊंचा सिंहासन रखा जाय और वहां सब विद्वान् लोग विचारके लिये एकत्रित हों। महाराज शिलादित्य फिर सुयेनच्वांगको लेकर सबके साथ परिषद्में गये और उसे उच्च सिंहासनपर आसन देकर कहा कि आप शास्त्रार्थ आरम्भ कीजिये। सुयेनच्वांगने नालंदके एक श्रमणसे कहा कि आप मेरे पक्षकी घोषणा समस्त परिषद्में कर दें, उसे लिखकर परिषद्के द्वारपर लटका दें कि यदि कोई इसमें एक शब्द भी तर्क और युक्तिसे अन्यथा अथवा विरुद्ध सिद्ध कर देगा तो उसे अधिक तो नहीं मैं अपना सिर समर्पण कर दूंगा। फिर उसने अपना व्याख्यान आरम्भ किया। रात होनेको आ गयी पर परिषद्में एकने भी उसके विरुद्ध एक शब्द भी कहनेका साहस न किया। राजा शिलादित्य यह देख बड़ा ही प्रसन्न हुआ और परिषद्को विसर्जितकर सबको साथ लिये जिस प्रकारसे वहां गया था उस प्रकार अपने पड़ावपर वापस आया। फिर सब लोग जब अपने २ स्थानपर विश्राम करनेको सिधारे तब कुमार राजा और सुयेनच्वांग वहांसे अपने स्थानपर आये और पढ़कर सो रहे।

प्रातःकालमें फिर सब लोग एकत्रित हुए। पूर्वकी भांति प्रतिमाको हाथीपर चढ़ाकर यात्रा निकाली गयी और मंडपमें ले जाकर उसकी पूजा हुई। सबको भोज दिया गया फिर सब परिषद्में आये। वहांसे रात होनेपर सब लोग पड़ावपर वापस आये। इस प्रकार पांच दिनतक नित्य यात्रा निकालते

और परिषद् होते बीत गये और किसीमें सुयेनच्वांगके पक्षके विरुद्ध बोलनेका साहस न हुआ। पर पांचवें दिन राजा शिलादित्यके कानमें यह बात पहुंची कि हीनयानके कुछ दुष्ट अनुयायी सुयेनच्वांगके प्राण लेनेके लिये षट्चक्र रच रहे हैं। उसने सुनते ही यह आज्ञा घोषित करायी कि यह प्राचीन कालसे होते चला आया है कि अज्ञान सदा ज्ञानको ग्रसनेकी चेष्टा करता है और पाखंडी जन सदा यही चाहते रहे हैं कि लोग हमारे मोह जालमें फँसे रहें। यदि संसारमें महात्मा लोग अवतार न धारण करते तो अज्ञानके महा तमसे लोगोंको कौन बचाता? उपाध्याय सुयेनच्वांग यहां इसलिये पधारा है कि वह लोगोंके भ्रमका नाश करे और उनके सच्चे धर्मके स्वरूपको दिखलावे कि लोगोंको फिर धोखा न हो। पाखण्डी जन न तो अपने भ्रमका संशोधन करना चाहते हैं और न सामने आकर विचारमें प्रवृत्त होनेका साहस करते हैं। यह भी सुना जाता है कि उसके प्राणोंको लेनेके लिये षट्चक्र रचे जा रहे हैं। यह सुनकर सब लोगोंको दुःख होता है। इसलिये यह घोषणा की जाती है कि जो कोई उसके शरीरको स्पर्श करनेका साहस करेगा उसको प्राण-दण्ड दिया जायेगा। जो उसकी निन्दा करेगा उसकी जीभ काट ली जायगी। पर इससे सज्जनोंको कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिये। वे लोग सहर्ष उसके पास आकर अपनी शङ्काओंका समाधान करा सकते हैं और विचार और प्रश्नोत्तर कर सकते हैं।

इस घोषणाके होते सब पाखण्डी वहांसे भाग गये और इस प्रकार अठारह दिन बीत गये पर कोई विद्वान् शास्त्रार्थके लिये सामने न आया। अठारह दिनतक नित्य पूर्ववत् भगवान्का उत्सव निकलता और मंदिरमें आकर मूर्तिकी पूजा होती और श्रमण और ब्राह्मणोंको भोजन कराके परिषद् बैठती रही। उन्नीसवें दिन फिर सुयेनच्वांगने महायानके सिद्धान्तका प्रतिपादन किया और अंतमें भगवान् बुद्धदेवकी स्तुति पाठ करके अपने व्याख्यानको समाप्त किया। उसे सुनकर बहुतेरे मनुष्योंने हीनयानका परित्यागकर महायानके सिद्धान्तको ग्रहण किया।

शिलादित्य राजाने सुयेनच्वांगके आगे दस सहस्र स्वर्ण-मुद्रायें, तीस सहस्र रुपये और सौ सूक्ष्मांशुककार्पासके चीवर वा कषाय रखे तथा सब देशोंके नृपतियोंने भी बहुतसे मणि-रत्न उसे समर्पण किये। सुयेनच्वांगने उन्हें ग्रहण करनेसे इनकार किया। पर राजा शिलादित्यने उससे आग्रह किया कि हमारे देशकी यह चाल है कि जब कोई विद्वान् सभामें विजय प्राप्त करता है तब उसको लोग यथाशक्ति उपहार देते हैं और हाथीपर चढ़ाकर बड़े बाजे-गाजेसे उसकी सवारी निकालते हैं। यह प्रथा सनातनसे चली आ रही है। यदि आप उपहारको स्वीकार नहीं करते, तो सवारी तो निकालनेके लिये अपनी सम्मति प्रदान कीजिये। सुयेनच्वांगने पहले तो कहा कि मैं इस ख्यातिका भूखा नहीं हूं पर राजा शिलादित्यने नहीं माना और हाथी मंगाकर उसे उसके कषाय वस्त्रको पकड़कर हठपूर्वक हाथीके

हौदेमें बैठा दिया। आगे २ दुंदुभी बजानेवाला यह पुकारता जाता था कि इस उपाध्यायने परिषद्में अठारह दिनतक महायानके सिद्धांतका मण्डन और विरुद्ध सिद्धान्तोंका खण्डन किया और किसी विपक्षीको उसके साथ वाद-प्रतिवाद करनेका साहस नहीं हुआ।

इस प्रकार उसकी सवारी सारे नगरमें होकर निकाली गयी और सब लोग उसके दर्शन करके आनन्दके मारे फूले नहीं समाते थे। समस्त विद्वन्मण्डलीने उसे पृथक् पृथक् उपाधियोंसे विभूषित किया। फिर सब लोग उसकी पूजा पुष्प और धूपसे कर वहांसे विदा हुए और अपने २ वास-स्थानको सिधारे।

पड़ावके पश्चिममें एक संघाराम था। उसमें भगवान् बुद्ध देवका एक दांत था। वह डेढ़ इञ्च लंबा और पीलापन लिये सफेद रंगका था। पूर्वकालमें यह दांत कश्मीरमें था। जब कश्मीरमें कृत्या लोगोंने बौद्धधर्मका नाश कर दिया और संघारामोंको ध्वंस करने लगे तब भिक्षु अपने प्राण लेकर इधर-उधर भाग गये। यह सुनकर तुषारके हिमतलके राजाने कश्मीरपर चढ़ाई की और ३००० योद्धाओंको साथ लिये व्यापारीका भेष धरकर वहाँ पहुँचा। राजाने उनको अपने दरबारमें बुलवाया। हिमतलका राजा अपने मणिरत्नादि विक्रीके पदार्थोंको लेकर आया और अपनी तलवार निकालकर कृत्योंके राजाको मारकर वहाँ फिर संघारामोंकी मरम्मत करवायी और श्रमणोंको फिरसे वहां बुलवाकर रखा। भिक्षुओंको

जब यह मालूम हुआ कि अब कश्मीरमें फिर शांतिका राज्य है तो वह लोग वहां वापस आने लगे। उस समय एक भिक्षु कश्मीरसे भागकर भारतवर्षमें तीर्थ-यात्रा करता फिरता था। वह भी कश्मीरको लौटा जा रहा था कि राहमें एक घना जंगल पड़ा। वहां उसे जंगली हाथियोंका एक झुंड मिला। उसे देख कर वह डरके मारे पेड़पर चढ़ गया। हाथियोंने पहले अपनी सूंड़में पानी भर भरकर पेड़की जड़में डाला और फिर अपने दांतोंसे उसकी जड़को खोदकर गिरा दिया। फिर श्रमणको सूंड़से उठाकर एक हाथीकी पीठपर बैठाया और उसे जंगलके मध्यमें ले गये। वहां उसने आकर देखा तो एक हाथीके शरीर-में घाव हो गया था और वह पीड़ासे व्याकुल भूमिपर पड़ा था। हाथीने भिक्षुका हाथ पकड़कर अपने घावको बतलाया। श्रमण-ने देखा कि वहां बांसकी खपची गड़ी हुई थी। उसने उस खपचीको निकाल लिया और घावको धोकर अपने कषाय वस्त्र-को फाड़ फाड़कर पट्टी बांध दी। हाथीको इससे कुछ आराम मिला। दूसरे दिन हाथियोंका झुंड जंगलमें गया और थोड़ेसे फल लाकर भिक्षुको खानेको दिये। फिर एक हाथीने उस रोगी हाथीको सोनेकी एक मंजूषा लाकर दी और उसने उसे भिक्षुको अर्पण किया। भिक्षुने उसको ले लिया। फिर हाथियोंका झुंड जिस प्रकार उसे वहां ले आया था उसे जंगलके बाहर पहुंचा आया।

श्रमणने उस मंजूषाको खोलकर देखा तो उसमें भगवान

बुद्धदेवका दांत था। वह उसे लेकर भारतके पश्चिमी सीमा-प्रांतमें पहुंचा और एक नदीको पार कर रहा था कि नदीमें ऊंची लहरें उठने लगीं और घोर आंधी आयी। नाव डूबनेको हो गयी, सब लोग घबड़ा गये। सब लोग कहने लगे कि यह आपत्ति इस श्रमणके कारण आयी है। इसके पास भगवानका कुछ न कुछ धातु अवश्य है। फिर नावके अध्यक्षने श्रमणकी गठरीमें देखा तो उसमें बुद्धदेवका दांत निकला। श्रमणने उसे अपने हाथमें ले लिया और प्रणामकर नागोंका आह्वानकर यह कहने लगा कि मैं इसे तुम्हारे पास थाती रखता हूं, मैं फिर आकर इसे लूंगा। उसे नदीमें फेंक दिया। फिर सब शांत हो गया और भिक्षु उस पार न जाकर जहांसे सवार हुआ था उसी पार लौट आया। वह वहांसे भारतवर्षमें आया और तीन वर्षतक वह मंत्रशास्त्रका अभ्यास करता रहा। मंत्रशास्त्रमें कुशलता प्राप्तकर वह फिर उसी नदीके किनारे पहुंचा और वहां वेदी बनाकर मंत्रप्रयोग करने लगा। नाग नदीसे निकला और उस मंजूषाको जिसे उसने नदीमें फेंक दिया ज्योंकी त्यों लाकर लौटा दिया। भिक्षु उसे लेकर कश्मीर गया और वहां ले जाकर उसे संघाराममें विहारमें प्रतिष्ठित कर दिया।

राजा शिलादित्यके कानमें यह बात पहुंची कि कश्मीरमें भगवान् बुद्धदेवका दांत है। वह स्वयं कश्मीरमें गया और वहांके शासकसे उसके दर्शन और पूजा करनेकी आज्ञा मांगी। पर भिक्षुसंघने उसे छिपा दिया और कहा कि यहां है ही नहीं।

शासक डरा कि ऐसा न हो कि शिलादित्य उससे बिगड़ जाय और चढ़ाई कर दे। यह सोचकर उसने संघारामकी भूमिको खुदवाना आरंभ किया और वहां उसे भगवान्‌का दांत भूमिमें गड़ा हुआ मिला। उसने उसे राजा शिलादित्यको समर्पण कर दिया। शीलादित्य उसे पाकर बड़ा प्रसन्न हुआ और उसे वहांसे यहां ले आया और इस संघाराममें उसकी प्रतिष्ठा कर दी।

प्रयागका महा परित्याग

परिषद्‌के समाप्त हो जानेपर सुयेनच्वांग शिलादित्यसे विदा मांगने गया। उसपर शिलादित्यने कहा कि इस वर्ष प्रयागका महा परित्याग पर्व पड़नेवाला है। यह पर्व पांच पांच वर्षका अंतर देकर पड़ता है, मुझे ३० वर्षसे ऊपर राज करते हो गये और पांच पर्व मेरे शासन-कालमें पड़ चुके हैं। यह छठा पर्व इस साल पड़ रहा है। बहुत बहुत दूरके ब्राह्मण श्रमण और नाना संप्रदायके यती गृही सब इकट्ठे होते हैं, ७५ दिनतक मेला रहता है। गंगा यमुनाके संगमपर सब लोग इकट्ठे होते हैं। मैं भी शीघ्र ही वहाँ रवाना होनेवाला हूं, मेरी तो यह प्रार्थना है कि आप इस धर्म-मेलेको देख लें फिर अपने देशको जायें।

सुयेनच्वांगने राजाकी बात मान ली। इससे राजा बड़ा प्रसन्न हुआ और कान्यकुब्ज नगरसे अपने दलबल सहित प्रयागको रवाना हुआ। राजाने प्रयागमें पहले ही अपने कर्मचारियोंको पड़ाव आदि बनानेके लिये नियत कर रखा था। उन लोगोंने वहाँ

गंगाके उत्तर किनारे महाराज शिलादित्यके लिये और यमुनाके दक्षिण तटपर कुमार राजाके लिये पड़ाव बनवाये थे। गंगा-यमुनाके संगमपर राजा ध्रुवभट्टके लिये पड़ाव बना था। उसके आगे संगमपर रेतेमें १००० फुट लम्बा और इतना ही चौड़ा बांसका बाड़ा बना था जिसके भीतर बीसों छप्परके घर बने थे जिनमें महाराज शिलादित्यका कोश था। बाड़ेके बाहर सैकड़ों घर छप्परके बनाये गये थे जिनमें रेशम और कपासके वस्त्र सोने चांदी इत्यादिकी मुद्रा इत्यादि पदार्थ दानके लिये लाकर इकट्ठे किये गये थे। बाड़ेके किनारे किनारे लोगोंको बैठकर खिलानेके लिये छप्पर डाले गये थे। उनके आगे अनेक भंडागार थे। उनके किनारे दूकानोंकी भांति चारों ओरसे छप्पर डालकर लोगोंके विश्राम करनेके लिये पड़ाव बनाये गये थे। यह सब मेलेके पहले महीनोंसे बनकर तैयार थे।

सब लोग मेलेमें पहलेहीसे आकर पहुंच गये थे। राजा शिलादित्य सुयेनच्वांगको साथ लिये अन्य राजाओंके साथ कान्यकुब्जसे रवाना हुआ और गंगाके किनारे किनारे होता प्रयागमें पहुंचा और गंगाके किनारे उत्तर-तटपर अपने पड़ावमें ठहरा। कुमार राजा और ध्रुवभट्ट भी अपने पड़ावमें जाकर उतरे। उस समय मेलेमें पांच लाखसे ऊपर लोग पहुंच चुके थे।

जब सब लोग वहां पहुंच गये और मेलेका पर्व आया तो प्रातःकालके समय राजा शिलादित्यके सैनिक सहचर नावोंमें चढ़चढ़कर गंगासे होकर बड़े सजधजसे संगमकी ओर चले।

उधरसे कुमार राजा भी अपने सैनिकोंको साथ लिये नावोंपर यमुनासे होकर संगमपर पहुंचा। ध्रुवभट्ट अपने वीर सैनिक योद्धाओंको लिये हाथियोंपर सवार हो मेलेके स्थानमें पहुंचा। यहां अन्य देशोंके राजा लोग भी अपने अपने सहचरों और अमात्योंको लिये वहां पहुंचे और राजा शिलादित्यसे मिले।

पहले दिन भगवान् बुद्धदेवकी मूर्तिका शृंगार किया गया। मूर्तिको एक छप्परके मंडपमें ले आकर प्रतिष्ठित किया गया और विविधि भांति उसकी पूजा की गयी। फिर सर्वोत्तम मणि रत्न, वस्त्राभूषण और व्यंजन श्रमणों, ब्राह्मणों, अन्य मतावलम्बी विद्वानों और दीन-दरिद्रोंको बांटा गया। बाजे बजते रहे और फूल बरसाये जाते थे। इस प्रकार सारा दिन इस उत्सवमें बीत गया और सायंकाल हो जानेपर सब लोग अपने अपने वासस्थानको पधारे।

दूसरे दिन सूर्य्य भगवान्‌की प्रतिमाका शृंगार किया गया और पहले दिनके आधे मणि-रत्न और वस्त्रादि बांटे गये। तीसरे दिन ईश्वर-देवकी प्रतिमाका शृंगार हुआ और दूसरे दिनके बराबर मणि-रत्न और वस्त्र इत्यादि बांटे गये।

चौथे दिन १०००० श्रमणोंको सौ-सौकी पंक्तिमें बैठाकर एक-एक श्रमणको विविध भांतिके अन्न और पानके अतिरिक्त सौ-सौ स्वर्ण मुद्रायें, एक एक मोती और एक एक कार्पास वस्त्रका कषाय प्रदान किया गया।

पांचवें दिनसे बीस दिनतक लगातार ब्राह्मणोंको दान दिया

जाता रहा फिर दस दिनतक निर्ग्रंथादि तीर्थ-यात्रियोंको दिया गया, तदनन्तर दस दिनतक उन लोगोंको दान दिया गया जो दूर-दूरसे मेलेमें दान पानेके लिये यहां आये थे और अंतमें एक मासतक निर्धनों और अनाथोंको भोजन वस्त्र और धन रत्न बांटे गये।

इस प्रकार लोगोंको भोजन वस्त्र धन रत्नादि प्रदान करनेमें राजा शिलादित्यने अपने पांच वर्षके संचित कोशको खाली कर दिया। उसके पास सिवा हाथी घोड़ों और उन हार कुंडलादि के जिन्हें वह धारण किये हुए था कुछ शेष न रह गया। उसने उनको भी अंतिम दिनमें दान कर दिया और अंतमें अपना मुकुट उतारकर एक भिक्षुको दे दिया और लंगोटी पहने दान-क्षेत्रसे यह कहता हुआ अपनी बहनके पास आया कि "धन-संग्रहमें अनेक दोष हैं, सदा चोरों, दुष्ट राजाओं इत्यादिका भय लगा रहता है। मैंने आज उसे दान करके स्वर्गके कोशमें रख दिया। अब किसी प्रकारकी चिंता नहीं रह गयी। वहां वह दिन दूने रात चौगुने बढ़ता जायगा। भगवान् करें मैं जन्म जन्ममें इसी प्रकार दान करता हुआ दशबलत्वको प्राप्त होऊं। वहां उसने अपनी बहनसे एक वस्त्र मांगकर पहन लिया और भगवानको पूजा करके उनसे यही प्रार्थना की कि मैं इसी प्रकार जन्म-जन्ममें दान-शीलताका पालन करता हुआ दशबलत्वको प्राप्त होऊं।

मेला पचहत्तरवें दिन समाप्त हुआ और सब लोग अपने २

घरको जहांसे आये थे सिधारे और राजाओंने फिर राजा शिलादित्यको मुकुट हार कुंडलादि अलंकारोंसे विभूषित कर वाहनादि प्रदान किये और इतनी भेंट और कर प्रदान किये कि उसका कोश और बल फिर ज्योंका त्यों हो गया। फिर सब लोग उसके चरणपर शीश रखकर अपने-अपने देशको सिधारे और केवल शिलादित्य, कुमार राजा और ध्रुवभट्ट प्रयागमें रह गये।

सुयेनच्वांगका विदा होना

महा परित्यागका मेला समाप्त हो गया और सब लोग अपने-अपने देशको चले गये। सुयेनच्वांग चीनको लौटनेके लिये व्याकुल हो रहा था और शिलादित्यके बहुत कहने-सुनने-पर वह इतने दिनतक ठहर गया था। अब मेला भी समाप्त हो गया। उसने राजा शिलादित्यसे कहा कि अब तो मुझे अपने देश जानेकी आज्ञा दी जाय। राजा शिलादित्यने कहा कि आप देखते हैं मेरा भी उद्देश वही है जो आपका। आप भी धर्मका प्रचार करना चाहते हैं, मैं भी वही चाहता हूं और करता हूं। फिर आपको अपने देश जानेकी कौनसी उतावली पड़ी है। यदि अधिक नहीं ठहर सकते तो कमसे कम दस दिन तो ठहर जाइये। सुयेनच्वांग राजाकी आज्ञा टालना उचित न समझ दस दिन और ठहर गया।

कुमार राजाको सुयेनच्वांगसे बड़ा प्रेम हो गया था। उसने कहा कि यदि आप हमारे देशमें रहकर हमारा दान लेना

स्वीकार करें तो हम इस बातकी प्रतिज्ञा करते हैं कि आपकी ओरसे यहां सौ संघाराम बनवा दिये जायेंगे और आपको धर्मके प्रचारार्थ जिस प्रकारकी सहायताकी आवश्यकता पड़ेगी दी जायगी।

सुयेनच्वांगने यह सुनकर कहा कि महाराज चीनका देश यहांसे बहुत दूर है। वहां बौद्धधर्मका प्रचार बहुत थोड़े दिनसे हुआ है। यद्यपि वहां बौद्धधर्मका प्रचार हो गया है पर अभीतक उनको उसका सम्यक् ज्ञान नहीं हुआ है। इसीसे वहां बड़ा मत-भेद है। मैं इसी लिये इतनी दूर आया हूं कि यहांसे मैं ग्रंथोंका अध्ययनकर उनको लेकर अपने देशमें जाकर उनको शिक्षा दूं और उनके विवादको मिटाऊं। मैं यहां आकर अपना अध्ययन समाप्त कर चुका। अब आप ही बतलाइये कि मेरे देशके लोग कैसी उत्सुकतासे मेरी राह ताक रहे होंगे। इस लिये मैं तो एक क्षण भी विलम्ब नहीं करना चाहता। मैं और अधिक नहीं कह सकता केवल एक सूत्रका वाक्य कहूंगा कि लिखा है कि जो विद्याके अध्ययनाध्यापनमें बाधा डालता है वह जन्म-जन्म अंधा होता है। अब आप ही विचारें कि मुझको रोकनेसे आपको क्या मिलेगा।

यह सुन कुमार राजा चुप हो गया और कहने लगा कि मैं दूसरोंको लाभ पहुंचानेसे कदापि वंचित नहीं करना चाहता। मैं इसे आपकी इच्छापर छोड़ता हूं चाहे यहां रहें वा अपने देश लौटें। मैं कदापि आपके मार्गको नहीं रोक सकता। केवल

इतना जाननेकी मुझे इच्छा है कि आप किस मार्गसे होकर जाना चाहते हैं ? मैं तो यही कहूंगा कि आप समुद्रके मार्गसे होकर जावें और यदि आप इसे स्वीकार करें तो मैं अपने राज-कर्मचारियोंको आपकी सेवाके लिये नियत कर दूंगा कि वे राज्यकी नौकापर ले जाकर आपको आपके देशमें पहुंचा आवें।

सुयेनच्यांगने उत्तर दिया कि इसमें संदेह नहीं कि समुद्रका मार्ग जानेके लिये सुगम है पर मैं जब चीनसे चलकर 'काउ-चांग' पहुंचा था तो वहांके राजाको मैं यह वचन दे आया था कि मैं लौटते समय अवश्य आपसे मिलूंगा। काउचांगके उस राजाने मेरे साथ बड़ा उपकार किया है। उसने मेरी यात्राका सारा प्रबन्ध किया और मार्गमें सारे राजाओंके पास अपने दूत उनको पत्र लिखकर साथ भेजे और उसीकी सहायतासे मैं अपने इस कामको पूरा कर सका हूं। ऐसी दशामें यह मैं अपना कर्तव्य समझता हूं कि चाहे जो हो मैं बिना उससे मिले अपने देशके भीतर पैर न रखूं। यही कारण है कि मैं उत्तरहीके मार्गसे जिससे होकर आया हूं जाना चाहता हूं।

यह सुनकर कुमार राजा चुप हो रहा पर राजा शिला-दित्यने कहा कि अच्छा जब आप जाना ही चाहते हैं तो कृपाकर बतलाइये कि आपकी यात्राके लिये क्या प्रबन्ध किया जावे। सुयेनच्यांगने कहा मुझे केवल आपकी आज्ञा चाहिये और किसी पदार्थकी आवश्यकता नहीं है। इसपर राजा शिलादित्यने कहा कि इस प्रकार आप खाली तो जाने न पाइयेगा और अपने को-

शाध्यक्षको आज्ञा दी कि सुयेनच्वांगको स्वर्ण-मुद्रायें और अन्य पदार्थ दिये जायँ। इसी प्रकार कुमार राजाने भी नाना भांतिके बहुमूल्य पदार्थ उसे देनेके लिये मंगवाये पर सुयेनच्वांगने सिवा एक टोपीके जो चमड़ेकी थी और जिसे कुमार राजाने मंगवाया एक भी पदार्थको ग्रहण न किया और अपना सामान बांधकर चलनेको तैयार हो गया।

सुयेनच्वांग अपनी पुस्तकों और मूर्तियोंको उत्तरके एक राजाके साथ जिसका नाम उदित था पहले ही भेज चुका था पर राजा शिलादित्य जब सुयेनच्वांगके साथ उसे पहुंचानेके लिये चला तो एक हाथीपर ३००० स्वर्ण-मुद्रा और १०००० रुपये लदाकर साथ ले लिया और अपने सहचरों और कुछ सेनाको लिये कई मंजिलतक पहुंचाने आया। उसने उस द्रव्यसे लदे हुए हाथीको उदित राजाके साथ कर दिया, आप सुयेनच्वांगसे विदा होकर अपने पड़ावपर लौट आया। लौटते समय शिलादित्यकी आंखोंसे आंसू टपक पड़े। प्रयाग पहुंचकर उससे रहा न गया और कुमार राजा और ध्रुवभट्टको साथ ले कई सौ अश्वारोही योद्धाओंको लिये सुयेनच्वांगके पुनः दर्शन करनेके लिये रवाना हुआ। कई दिन दौड़कर वह उसके पास पहुंचा और चार अमात्योंको मार्गके अनेक जनपदोंके नरपतियोंके नाम पत्र देकर नियुक्त कर दिया कि वे उसे चीनकी सीमातक साथ जाकर पहुंचा आयें। यह पत्र बारीक सूती कपड़ेपर लिखे गये थे और उनपर लाल लाखकी मुद्रा लगी थी। उनमें राजा शिलादित्यने

राजाओंको लिखा था कि आप लोग कृपाकर अपने राज्यमें महा श्रमण सुयेनच्वांगके यान और वाहनका प्रबन्ध कर दीजिये। इस प्रकार सुयेनच्वांगके साथ अमात्योंको नियुक्तकर राजा शिलादित्य, कुमार राजा और ध्रुवभट्टके साथ उसे विदाकर आंखोंमें आंसूभर उसके चरणोंपर अपना शीश रख प्रयागके पड़ावपर लौट आया।

सुयेनच्वांग प्रयागसे चला और उदित राजाके साथ कौशांबी होता हुआ एक महीनेसे ऊपर दिन बीतनेपर संकाश्य नगरमें पहुंचा और वहांसे दर्शन और पूजा करके वह वीरवान नगरमें गया। वहाँ उसे सिंहप्रभ और सिंहचंद्रनामक उसके दो सहपाठी मिले। उनके साथ वह दो मासतक वीरवानमें ठहर गया और कोशसंपरिग्रह, विद्यामात्र सिद्धि इत्यादि ग्रंथोंपर विचार करता रहा। वहांसे वह चलकर डेढ़ मासमें जालंधर पहुंचा। जालंधरमें एक मास विश्रामकर वह उदित राजाके साथ २० दिनमें सिंहपुर गया। सिंहपुरसे उसने १०० वसरके भिक्षुओंको जो उसके साथ पुस्तकों और प्रतिमाओंको लिये आये थे यह कहा कि आगेका मार्ग विषम है, राहमें चोर डाकू प्रायः मिला करते हैं। अच्छा होगा कि आपमेंसे एक श्रमण सबसे आगे जावे और मार्गमें यदि डाकू मिलें तो उनसे यह कह दे कि हमलोग भारतमें तीर्थयात्राके लिये गये थे और हमारे पास सिवा पुस्तकों और मूर्तियोंके कुछ नहीं है और शेष लोग पीछे पीछे चलें। इस प्रकार वह २० दिनमें वीरवानसे तक्षशिला पहुंचा। उसके तक्षशिला

पहुंचनेका समाचार पा यहाँ कश्मीरके राजाने अपना दूत उसे बुलानेके लिये भेजा पर सुयेनच्वांग इस कारण जा न सका कि उसके साथ पुस्तकादिका बोझ बहुत अधिक था और हाथी थक गये थे। निदान यह तक्षशिलासे उत्तर-पश्चिम दिशामें ढाई महीने चलकर सिंधुनदके किनारे पहुंचा।

यहां उसने पुस्तकों और मूर्तियोंको अपने और साथियोंके साथ नावपर नदी पार करनेके लिये चढ़ाया और वह स्वयं हाथीपर पार उतरा। नाव जब नदीके मध्यमें पहुंची तो अचानक आँधी उठी और नदीमें ऊंची २ लहरें उठने लगीं। नाव डगमगाने लगी और डूबनेको हो गयी। नाव उलट गयी और बड़ी कठिनाईसे जो लोग सवार थे उनके प्राण बचे और पुस्तकें और मूर्तियां बचायी गयीं। फिर भी ५० सूत्रोंकी पुस्तकें और फूलोंके बीज डूब ही गये।

नदीपार उतरते ही कपिशाका राजा उसे मिला। वह उसके आगमनका समाचार पाकर पहलेहीसे सिंधुके किनारेपर पहुंच गया था। वह सुयेनच्वांगसे मिलकर बड़ा प्रसन्न हुआ और पुस्तकोंके डूब जानेपर बड़ा शोक प्रगट करता हुआ पूछने लगा कि आप फूलों और फलोंके बीज तो नहीं साथ ले जा रहे थे? सुयेनच्वांगने कहा, हाँ बीज तो थे और वह सब डूब गये। इसपर राजाने कहा कि बस यही तो कारण है कि यह आँधी आयी और नाव उलट गयी। यह प्राचीन कालसे चला आता है कि जब कोई बीजोंको लेकर सिंधुके उस पारसे इस पार

लाता है आँधी अवश्य आती है और नाव उलट जाती है और वह लेकर इस पार नहीं आ सकता।

वह सुयेनच्वांगको बड़े आदरसे कपिशा ले आया और वहां एक संघाराममें ठहराया। यहाँ वह दो मासतक ठहर गया और अनेक लेखकोंको उद्यानमें भेजा और काश्यपीय निकायके त्रिपिटककी प्रतिलिपि करायी। यहांपर कश्मीरका राजा उससे मिलनेके लिये आया और कई दिन रहकर कश्मीरको लौट गया। यहाँसे काश्यपीय निकायके त्रिपिटककी नकल लेकर वह कपिशाके राजाके साथ एक महीनेमें लमघानकी सीमापर पहुँचा।

लमघानके राजाने उसके आनेका समाचार पाकर अपने युवराजको उसकी अगवानीके लिये भेजा। वह भिक्षु-संघको साथ लिये उससे मिला और उसे अपने साथ लमघान नगरमें ले आया। नगरमें आते ही राजा भिक्षु-संघ और राजकर्मचारियोंको साथ लेकर ध्वजा उड़ाते हुए उसके स्वागतार्थ निकला और उसको उसने बड़े आदरसे एक विहारमें ठहराया। राजाने वहाँ उसे ढाई महीनेतक रोक रखा और बड़ी धूम-धामसे महा परित्यागका उत्सव किया।

महा परित्यागके समाप्त हो जानेपर वह पंद्रह दिनमें लमघानसे वरणदेशमें जो वहांसे दक्षिण दिशामें था गया और वहांसे दर्शन और पूजा करके उत्तर-[illegible] रवकन देशमें गया और वहांसे च[illegible]

सौकुट देशमें बौद्धोंके अतिरिक्त इतर जन क्षुणदेवकी पूजा करते हैं। उनका कहना है कि क्षुणदेव अरुण पर्वतपरसे कपिशा-में आया और सूनगिर पर्वतपर वास करता है। जो लोग उसकी पूजा करते हैं उनका वह सब प्रकारसे कल्याण करता है और जो उसकी निन्दा करते हैं उनको वह दुःख और विपत्तिमें डालता है। वहां वर्षमें एक बार बड़ा मेला लगता है और राजा महा राजा, धनीमानी, छोटे बड़े सब दूर दूरसे आते हैं और क्षुणदेवकी पूजा करते हैं और रुपया पैसा, घोड़े, भेड़ आदि चढ़ाते हैं। साधु लोग अनुष्ठान करके देवताओंके मंत्रको सिद्ध करते हैं।

सौकुटसे उत्तर दिशामें जाकर वह वर्दस्थानमें गया और वहां पूर्व दिशामें मुड़कर कपिशाकी सीमापर पहुंचा। वहां कपिशाके राजाने परिषद् की और सात दिन भिक्षुओंको भोज वस्त्रादिसे पूजाकर सुयेनच्वांगकी आज्ञा लेकर अपने नगरको सिधारा।

कपिशाके राजाने चलते समय अपने एक कर्मचारीको सौ आदमियोंके साथ आज्ञा दी कि तुम सुयेनच्वांगके साथ जाकर पर्वत पार पहुंचा आओ और ईंधन इत्यादि जिस वस्तुकी आवश्यकता हो लेते जाओ। सात दिन चलनेपर आगे एक पर्वत मिला। यह पर्वत बड़ा ही दुर्गम था। उसके तुङ्गशिखर खड़े सीधे थे जिनपर चढ़ना अत्यंत कठिन था। चढ़ाई सीधी ऊपरको थी, राह कहीं चौड़ी थी और कहीं इतनी संकरी थी कि कठिनाईसे कोई चढ़ सकता था। इस पर्वतसे होकर बड़ी कठिनाईसे सात दिनके बाद वह एक पहाड़ी दर्रेमें पहुंचा। वहां

लाता है आँधी अवश्य आती है और नाव उलट जाती है और वह लेकर इस पार नहीं आ सकता।

वह सुयेनच्वांगको बड़े आदरसे कपिशा ले आया और वहां एक संघाराममें ठहराया। यहाँ वह दो मासतक ठहर गया और अनेक लेखकोंको उद्यानमें भेजा और काश्यपीय निकायके त्रिपिटककी प्रतिलिपि करायी। यहांपर कश्मीरका राजा उससे मिलनेके लिये आया और कई दिन रहकर कश्मीरको लौट गया। यहांसे काश्यपीय निकायके त्रिपिटककी नकल लेकर वह कपिशाके राजाके साथ एक महीनेमें लमघानकी सीमापर पहुंचा।

लमघानके राजाने उसके आनेका समाचार पाकर अपने युवराजको उसकी अगवानीके लिये भेजा। वह भिक्षु-संघको साथ लिये उससे मिला और उसे अपने साथ लमघान नगरमें ले आया। नगरमें आते ही राजा भिक्षु-संघ और राजकर्मचारियोंको साथ लेकर ध्वजा उड़ाते हुए उसके स्वागतार्थ निकला और उसको उसने बड़े आदरसे एक विहारमें ठहराया। राजाने वहाँ उसे ढाई महीनेतक रोक रखा और बड़ी धूम-धामसे महा परित्यागका उत्सव किया।

महा परित्यागके समाप्त हो जानेपर वह पंद्रह दिनमें लमघानसे वरणदेशमें जो वहांसे दक्षिण दिशामें था गया और वहांसे दर्शन और पूजा करके उत्तर-पश्चिम दिशामें चलकर अवकन देशमें गया और वहांसे चौकूट वा सौकूट देशमें पहुंचा।

सौकूट देशमें बौद्धोंके अतिरिक्त इतर जन क्षुणदेवकी पूजा करते हैं। उनका कहना है कि क्षुणदेव अरुण पर्वतपरसे कपिशामें आया और सूनगिर पर्वतपर वास करता है। जो लोग उसकी पूजा करते हैं उनका वह सब प्रकारसे कल्याण करता है और जो उसकी निन्दा करते हैं उनको वह दुःख और विपत्तिमें डालता है। वहां वर्षमें एक बार बड़ा मेला लगता है और राजा महाराजा, धनीमानी, छोटे बड़े सब दूर दूरसे आते हैं और क्षुणदेवकी पूजा करते हैं और रुपया पैसा, घोड़े, भेड़ आदि चढ़ाते हैं। साधु लोग अनुष्ठान करके देवताओंके मंत्रको सिद्ध करते हैं।

सौकूटसे उत्तर दिशामें जाकर वह वर्द्दस्थानमें गया और वहां पूर्व दिशामें मुड़कर कपिशाकी सीमापर पहुंचा। वहां कपिशाके राजाने परिषद् की और सात दिन भिक्षुओंको भोज वस्त्रादिसे पूजाकर सुयेनच्वांगकी आज्ञा लेकर अपने नगरको सिधारा।

कपिशाके राजाने चलते समय अपने एक कर्मचारीको सौ आदमियोंके साथ आज्ञा दी कि तुम सुयेनच्वांगको साथ जाकर पर्वत पार पहुंचा आओ और ईंधन इत्यादि जिस वस्तुकी आवश्यकता हो लेते आओ। सात दिन चलनेपर आगे एक पर्वत मिला। यह पर्वत बड़ा ही दुर्गम था। उसके तुङ्गशिखर खड़े सीधे थे जिनपर चढ़ना अत्यंत कठिन था। चढ़ाई सीधी ऊपरको थी, राह कहीं चौड़ी थी और कहीं इतनी संकरी थी कि कठिनाईसे कोई चढ़ सकता था। इस पर्वतसे होकर बड़ी कठिनाईसे सात दिनके बाद वह एक पहाड़ी दर्रेमें पहुंचा। वहां

नीचे उतरनेपर उसे एक छोटासा गांव मिला। इस गांवमें गड़ेरियोंका घर था जो अपनी भेड़ोंको, जो गधेके बराबर होती थीं, पर्वतके दर्रेमें चराते थे। यहाँ ही सबके सब रातको रह गये और उन्होंने एक मनुष्यको ठीक किया कि वह ऊंटपर सवार होकर आगे २ राह दिखलाता हुआ पर्वतके पार पहुंचा आवे।

आगेकी राह जो इस पर्वतसे होकर गयी थी बड़ी ही भयानक थी। जगह जगह गहरे खड्ड थे जिनमें बर्फ जमे हुए थे। अगुआके पैरके चिह्नपर पैर रखकर जाना पड़ता था। तनिक भी चूकनेसे खड्डमें गिरकर चकनाचूर हो जानेकी आशंका थी। यहांपर सुयेनच्वांगको घोड़ेसे उतरकर लाठीके सहारे चलना पड़ा। प्रातःकालसे सायंकालतक चलनेपर वे लोग बर्फसे ढकी पर्वतकी एक चोटीपर पहुंचे। दूसरे दिन प्रातःकालके समय दर्रेके नीचे पहुंचे। उसके आगे फिर एक चढ़ाव पड़ा। सूर्य्य डूबते डूबते पहाड़की चोटीपर पहुंचे। वहाँकी वायु इतनी ठंढी थी कि किसीको वहाँ ठहरनेका साहस नहीं पड़ा। बड़ी कठिनाईसे कुछ दूर नीचे उतरनेपर थोड़ी सी समतल भूमि मिली। वहाँ डेरा लगाया गया और सबने किसी न किसी प्रकार रात काटी। दूसरे दिन फिर आगे बढ़े और पाँच छ दिनमें पर्वतकी चोटीसे उतरकर अन्तराय या अन्दराव नामक स्थानपर पहुंचे। अन्तराय प्राचीन तुषार जनपदका एक अंश था। यहाँ पाँच दिन विश्रामकर खोस्तमें आये फिर वहांसे आगे चलकर कुंदुजमें पहुंचे। कुंदुज नगर आक्षसनदके

किनारे है और तुषार देशकी पूर्वीय सीमापर है। यहाँ शीदो खाँका भतीजा जो तुषारका उस समय शासक था सुयेनच्वांग-के आगमनका समाचार पाकर आया और वह उसे साथियों सहित अपने पड़ावपर ले आया। यहाँपर सब लोग एक मासतक ठहर गये और उन्होंने विश्राम किया।

शीदो खाँने अपने सैनिकोंका एक मुख्य सैनिक सुयेनच्वांगके साथ कर दिया और वह अनेक व्यापारियोंके साथ दो दिनमें मुंजन नामक स्थानपर जो कुंदुजके पूर्वमें था पहुंचा। मुंजनकी पूर्व दिशामें फिर पर्वत मिला और उसमेंसे होकर वह हिमतल देशमें पहुंचा। हिमतल देश भी प्राचीन तुषार देशके अन्तर्गत था। यहांके लोग तुर्कों जैसे होते थे। अंतर केवल इतना ही था कि यहाँकी स्त्रियां अपने सिरपर तीन फुट ऊंची एक लकड़ीकी सींग बाँधती थीं। यह सींग स्त्रियां तबतक धारण करती हैं जब-तक उनके सास-ससुर जीते रहते हैं। जब सास-ससुरका देहांत हो जाता है तब वह उसे उतार डालती हैं।

हिमतलसे वह बदखशाँ गया। बदखशाँमें इतनी बर्फ पड़ी कि वह आगे न बढ़ सका। निदान उसे वहाँ एक माससे अधिक अपने साथियोंसहित पड़े रहना पड़ा। कारण यह था कि आगे पर्वतसे होकर जाना था और बर्फ पड़नेसे आगेका मार्ग जानेयोग्य नहीं था। बर्फ गिरना बंद हो जानेपर वह बद-खशांसे चलकर यमगान और कुरणा होता हुआ तमस्थिति नामक जनपदमें पहुंचा।

तमस्थितिका जनपद आक्सस नदीके किनारे दो पर्वतोंके मध्यमें है। यहाँ एक संघाराममें भगवान बुद्धदेवकी एक मूर्ति लाल पत्थरकी है जिसके सिरपर तांबेका एक छत्र अधरमें स्थिर है जिसमें अनेक रत्न जड़े हैं। जब लोग उसकी पूजा करने जाते हैं,तो वह घूमने लगता है और उनके चले आनेपर उसका घूमना बंद हो जाता है।

तमस्थितिसे पर्वत पारकर वह शिंवीके जनपदमें आया। शिंवीसे पूर्व दिशामें पर्वतोंसे होकर वह पामीरकी दूनमें पहुंचा। यह दून पर्वतके मध्यमें पड़ती है और सदा बर्फसे ढकी रहती है, यहाँ न कोई वृक्ष देख पड़ता है और न वनस्पति। सारी दून निर्जन है कोई कोई प्राणी दिखाई पड़ते हैं। इनके मध्यमें एक झील है। यह पूर्वसे पश्चिमतक २०० ली लंबी और उत्तरसे दक्षिण तक ५० ली चौड़ी है। झीलमें नाना वर्णके पक्षी रहते हैं और उनके तुमुल कूंजसे दिन-रात निनादित रहता है। झीलके पश्चिमसे एक नदी निकली है और पश्चिम दिशामें बहती हुई तमस्थितिकी पूर्वीयसीमापर पहुंच आक्सस नदीमें गिरती है। पूर्व दिशामें उसी झीलसे एक दूसरी नदी निकली है जो काशगर जनपदकी ओर बहती हुई सीता नदीमें मिली है। इस दूनमें एक प्रकारके पक्षी देखनेमें आते हैं जो दस फुट ऊंचे होते हैं। उनके अंडे घड़ेके बराबर होते हैं, जिन्हें ताजीक भाषामें कुर्कोः कहते हैं। यह पक्षी दलदलोंमें अंडे देते हैं। दक्षिणके पर्वतके उसपार बोलोर जनपद पड़ता है जहाँ अग्नि-वर्णका सोना निकलता है।

शिंग्रीकी दूनके पर्वतसे पहाड़ी मार्गद्वारा जहां बड़े बड़े बर्फसे ढके खड्ड थे, कयंघ देशमें पहुंचे। कयंघकी राजधानी सीता नदीके दक्षिण तटपर एक ऊंचे पर्वतके मूलमें है। यहांका राजा चीनदेव गोत्रका है। कहते हैं कि प्राचीन कालमें पारसके एक राजाने चीन-देशकी एक राजकुमारीसे ब्याह करना चाहा। चीन देशके राजाने अपनी राज-कन्याको सेनापति और सेनाके साथ पारस देशको भेजा। वह यहांतक पहुंची थी कि पूर्व और पश्चिम दोनों दिशाओंमें राजाओंके मध्य युद्ध आरंभ हो गया और वह न तो पारसको जा सकी न चीन हीको लौट सकी। निदान लोगोंने चीनकी राज-कन्याको पर्वतके शिखरपर निर्जन स्थानमें लेजाकर छिपाया जहां न कोई आ सकता था न जा सकता था। कुछ काल बीतनेपर पूर्व दिशामें युद्धका अन्त हो गया और मार्ग आने जाने योग्य हो गया। फिर सेनापति चीन देशमें लौटनेका विचार करने लगा। पर इसी बीचमें उसे यह पता चला कि राज कन्या गर्भवती है। अब तो वह बड़ी चिंतामें पड़ा कि क्या करें और कहां जायं। उसने राज-कन्याकी सहेलियोंसे पूछा कि मैंने तो राजकन्याको ऐसे स्थानपर रखा था कि जहां कोई आ जा नहीं सकता था फिर यहां कौन पुरुष पहुंचा जिससे राज-कन्याका गर्भ रह गया। सहेलियोंने कहा कि नित्य सूर्यके-बिंबसे निकलकर एक घुड़सवार राज-कन्याके पास आता था और उसीसे यह गर्भ रह गया है। निदान वह लोग यहीं रह गये और कुछ दिन बीतनेपर राज-कन्याके गर्भसे कुमार उत्पन्न

हुआ। यह बड़ा तेजस्वी था और आकाशमार्गसे गमना-गमन कर सकता था। आंधी पानी हिम आदि सब उसके आज्ञानुवर्ती थे। यह बड़े होनेपर इस देशका शासक हुआ और उसने चारों ओर अपने साम्राज्यको फैलाया। बहुत कालतक राज्य कर यह पञ्चत्वको प्राप्त हो गया। लोगोंने उसके शवको लेजाकर नगरके दक्षिण-पूर्व दिशामें १०० लीपर पर्वतकी एक गुहामें पत्थरका एक घर बनाकर रखा। उसका शरीर सूख गया है और बिगड़ता नहीं है। देखनेमें ज्ञान पड़ता है मानो सो रहा है। समय समयपर उसके वस्त्र बदल दिये जाते हैं और लोग वहांपर धूप देते और फूल चढ़ाते हैं। अबतक यहांका राज्य उसीके वंशमें चला आता है। राजा अपनेको सूर्य्यवंशी कहता और चीनको अपनी ननिहाल बतलाता है।

यहांपर राजाके प्राचीन गढ़के पास एक संघाराम है। इसे यहांके राजाने आर्य-कुमारलब्धके लिये बनवाया था। कुमारलब्ध तक्षशिलाका रहनेवाला था। उसकी धारणा और बुद्धि इतनी तीव्र थी कि प्रति दिन ३२००० श्लोकोंकी रचना करता था। उसने अनेक शास्त्रोंकी रचना की थी और वह सौत्रांतिक संप्रदायका अनुयायी था। उस समय बौद्ध विद्वानोंमें चार दिग्गज आचार्य्य माने जाते थे। पूर्व दिशामें अश्वघोष, दक्षिणमें देव, पश्चिममें नागार्जुन और उत्तरमें कुमारलब्ध। यहांके राजाने कुमारलब्धकी ख्याति सुनकर तक्षशिलापर आक्रमण किया था और वहांसे कुमारलब्धको अपने साथ यहां ले आया था।

नगरके दक्षिण पूर्वमें पर्वतके किनारे दो पर्वतकी गुहायें थीं। दोनों गुहाओंमें एक एक अर्हत समाधिस्थ अचल बैठे थे। उनकी आंखें बंद थीं और शरीर ज्योंका त्यों आसन मारे स्थित था। उनको समाधि धारण किये सात सौ वर्षसे अधिक बीत चुके थे। तबसे उनकी समाधि भंग नहीं हुई थी।

सुयेनच्वांग कवंधदेशमें बीस दिनसे अधिक रहा और यह यहांके विशेष विशेष स्थानोंके दर्शनकर आगे बढ़ा। पांच दिन चलनेपर उसे मार्गमें डाकुओंका एक झुंड मिला। उनको देखते ही व्यापारी लोग जो उसके साथ कुटुमसे जा रहे थे पर्वतकी ओर भागे। उस समय सुयेनच्वांगके साथ सात भिक्षु, २० अन्य सहचर, एक हाथी, चार घोड़े और दस गधे थे। हाथी तो इस भागनेमें दलदलमें फंस गया और निकल न सका। लोग डाकुओंके निकल जानेपर धीरे धीरे पर्वतके ऊपर चढ़े और करारोंपरसे होकर बड़ी कठिनाईसे खड्डों और दर्रोंसे होकर उतरे और शीतको सहते हुए ८०० ली पहाड़ी भूमिमें चलकर ओच नामक जनपदमें पहुंचे।

ओचके दक्षिण सौ लीपर एक पर्वतके शिखरपर एक स्तूप था। उस स्तूपके संबंधमें यहां यह कथा चली आती थी कि कई सौ वर्ष हुए वज्रपातसे यह पर्वत फट गया और उसके भीतरसे एक दिगंबर विशालकाय भिक्षु निकला। यह भिक्षु आंख मूंदे ध्यानावस्थित समाधिमें मग्न था। उसकी जटायें बढ़कर उसके कन्धों और मुखड़ेको आच्छादित कर रही थीं। लकड़ी काटनेवालों

ने पर्वतमें उस साधुको देखा और नगरमें आकर लोगोंसे कहा। चारों ओर यह समाचार फैल गया और दूर दूरसे लोग उसके दर्शन के लिये आने लगे। नित्य यात्री यहां जाते और फूल धूपसे उस समाधिस्थ भिक्षुकी पूजा करते। जब राजाको इसका समाचार मिला तो राजाने अपने साथियोंसे पूछा कि यह कैसा साधु है? एक भिक्षुने उत्तर दिया कि यह अर्हत है और संसारको त्याग यहां आकर समाधि लगायी है। बहुत काल समाधिमें बीत जानेसे उसके बाल बढ़कर चारों ओर लटक रहे हैं। राजाने कहा क्यों कोई ऐसा भी उपाय है कि जिससे उसकी समाधि छूट जावे? उसने उत्तर दिया कि जब कोई बहुत कालतक निराहार रहकर समाधि धारण किये बैठा रहता है तो उसका शरीर अकड़ जाता है, नाड़ियां तन जाती हैं और वह अपने अंगोंको फैला और सिकोड़ नहीं सकता है। इसलिये यदि उसके शरीरपर मक्खन कई दिनतक मला जाय तो उसमें कोमलता आ जायगी और फिर उसको अपने अंगोंके फैलाने और सिकोड़नेमें कठिनाई नहीं पड़ेगी। जब उसके शरीरकी नाड़ियोंमें ढीलापन आ जाय तो घंटा बजवाना चाहिये। उस घंटेके शब्दसे संभव है कि ऐसे मनुष्यकी समाधि छूट जाय। राजाने उसकी बात मान ली और पहले कई दिनोंतक उस साधुके शरीरमें भिक्षुओंसे मक्खन मलवाया, फिर घंटे बजाये गये। अस्तु किसी न किसी प्रकार साधुकी समाधि भंग हुई। उसने अपनी आंखें खोल दीं और पूछा कि तुम कषाय वस्त्रधारी कौन हो? भिक्षुओंने कहा; हम

भिक्षु हैं। साधुने पूछा, हमारे गुरु कश्यप तथागत कहां हैं? भिक्षुओंने कहा, कश्यप तथागत निर्वाणको प्राप्त हो गये। इसपर वह रोने लगा। फिर उसने अपने आंसू रोकके पूछा कि शाक्य मुनि बुद्धत्वको प्राप्त हुए? भिक्षुओंने फिर उत्तर दिया कि वह भी बोधिज्ञान प्राप्तकर निर्वाण प्राप्त हो गये। यह सुनकर उसने अपनी आंखें बंद कर लीं और थोड़े समयतक ध्यानावस्थित रहकर अपनी जटा संभाली और फिर आकाशमें उड़ा और अंतरिक्षमें पहुँच योगाग्निसे अपने शरीरको भस्मकर निर्वाणको प्राप्त हो गया। उसकी जली अस्थियां यहांपर गिर पड़ीं और राजा और भिक्षुसंघने उनको संचय कर उनके ऊपर इस स्तूपको बना दिया।

कर्यघदेशसे उत्तर जाकर सुयेनच्वांगने सीता नामक नदी पार की और वह एक पर्वतको लांघकर यारकंदमें पहुंचा। यारकंदके दक्षिणमें एक विशाल पर्वत पड़ा। इस पर्वतको पारकर वह यारकंद पहुंचा। यारकंदके दक्षिणमें एक पर्वत था। उसमें अनेक गुफायें थीं जिनमें भारतवर्षके अर्हत आकर तप करते थे, जो बहुत दिनोंसे समाधि लगाये बैठे थे। उनके शिर और दाढ़ी-मूंछके बाल जब बहुत बढ़ जाते थे तब भिक्षु उसें आकर काट जाते थे। यारकंदसे पूर्वदिशामें चलकर वह कई दिनोंमें खुतन पहुंचा।

खुतन

खुतन देशकी सीमाके भीतर पहुंचकर सुयेनच्वांग

भोगय नामक नगरमें पहुंचा और वह वहां एक संघाराममें ठहरा। उस संघाराममें भगवान् बुद्धदेवकी एक मूर्त्ति थी, जो बैठी हुई मुद्रामें थी। उसके सिरपर एक जड़ाऊ मुकुट था। यहांका राजवंश अशोक राजाके पुत्रका वंशधर है। कहते हैं कि अशोक राजाका एक पुत्र तक्षशिलाका शासक था। उस अशोकने उसे देश निकालाका दंड दिया था। वह उत्तरके पर्वतोंमें मारा-मारा फिरता था और अपने पशुओंको चराता फिरता था। वह इस देशमें पहुंचा और यहांका शासक हो गया। उसके कोई पुत्र नहीं था; इस कारण उसने वैश्रवणका तप किया। वैश्रवणके मंदिरमें बहुत दिन घोर तप करनेपर एक दिन वैश्रवणकी मूर्त्तिका ललाट फट गया और उससे एक बालक निकला। उस बालकको राजाने गोदमें उठा लिया और दूधकी खोजमें मंदिरसे बाहर निकला। बाहर निकलते ही उसको भूमिसे दूधकी धारा बहती देख पड़ी और वही दूध पिलाकर उस बालकको उसने पाला। कुछ दिनोंके बाद वही बालक इस देशका राजा हुआ। इस देशका इसी कारण कुस्तन नाम पड़ा, जिसका वास्तविक अर्थ होता है, पृथ्वीका स्तन। उससे पहले उसी राजाके वंशमें एक और राजा उत्पन्न हुआ था जिसने वह मूर्त्ति यहां लाकर स्थापित की थी। कहते हैं कि पूर्वकालमें कश्मीर देशमें एक अर्हत रहता था। उसके पास एक श्रमणेर था। वह कुष्ठरोगसे पीड़ित था। जब वह मरणासन्न हुआ, तो उसे 'चोमई'की रोटी खानेकी इच्छा

हुई। 'चोमई' खुतनमें उत्पन्न होता था। अर्हत उसके लिये अपने ऋद्धिबलसे आकाशमार्ग होकर खुतन आया और यहांसे 'चोमई'की रोटी ले जाकर इसने श्रमणेरको खानेको दी। इसे खाकर वह खुतनमें उत्पन्न होनेकी इच्छा करता हुआ मर गया और मेरे खुतनके राजकुलमें उत्पन्न हुआ। राजाका शरीर पाकर उसने आस-पासके राजाओंको संग्राममें पराजित किया और सेना लिये पर्वतोंको लांघता कश्मीरमें पहुंचा। कश्मीरका राजा उसके पूर्वजन्मके वृत्तान्तको जानता था। वह श्रमणेरके चीवरको रखे हुए था। उसे लेकर उसके पास पहुंचा और कहा 'मूर्खजी' क्यों व्यर्थ सेनाका संघार करता है, अपने चीवरको देख और पूर्वजन्मकी बातोंको स्मरण कर। चीवर देखते ही उसे अपने पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण हो आया और वह उस मूर्त्तिको जिसे वह पूजा करता था, साथ लिये खुतनको लौट आया। मूर्त्ति यहां तो आई, पर यहांसे आगे न बढ़ी। उसने उसे ले जानेके लिये अनेक प्रयत्न किये, पर वह न टली। निदान उसने यहां उसके लिये एक विहार बनवा दिया और भिक्षुओंको उसकी पूजा करनेके लिये नियुक्त कर दिया।

खुतनके राजाको जब यह समाचार मिला, कि सुयेनच्वांग 'मोगय' नगरमें पहुंचा है, तो वह नगरके प्रबन्धका भार अपने युवराजको सौंप उसके स्वागतके लिये चला और अपने (वकबान) महत्तरको उसको साथ लानेके लिये भेजा। महत्तर सुयेनच्वांगके पास आया और उसे साथ लिये खुतनकी

ओर चला। मार्गमें राजाने उसका स्वागत किया और वह ध्वजा उड़ाता तथा उस पर फूल बरसाता हुआ खुतनमें ले आया। राजाने उसे एक संघाराममें ठहराया।

नगरके दक्षिण १० लीपर एक संघाराम था। कहते हैं कि इस संघारामको यहांके किसी अति प्राचीन राजाने वैरोचन अर्हतके लिये बनवाया था और यह संघाराम इस देशमें सबसे प्राचीन और पहला संघाराम था। वैरोचन कश्मीरसे यहाँ बौद्ध-धर्मके प्रचारार्थ आया और यह आकर एक बागमें ध्यान लगाकर बैठ गया। लोग उसे देखकर डरे और जाकर राजाको इसकी सूचना दी। राजा उसके पास आया और उसे वहां बैठा देखकर उसने पूछा कि आप कौन हैं और यहाँ क्यों निर्जन स्थानमें आकर बैठे हैं? अर्हतने कहा कि हम तथागतके साधक हैं। राजाने पूछा तथागत कौन? अर्हतने उत्तर दिया तथागत तो बुद्धको कहते हैं। वह कपिलवस्तुके राजा शुद्धोदनके पुत्र थे और समस्त प्राणियोंके कल्याणार्थ अपने राजपाटको त्यागकर बोधिज्ञान लाभ किया। उन्होंने उस ज्ञानका उपदेश मृगदावमें किया और गृध्रकूट आदि स्थानोंमें धर्मोपदेश करते अस्सी वर्षकी अवस्थामें परिनिर्वाणको प्राप्त किया। यह बड़े दुःखकी बात है कि आजतक आपको उनके पवित्र नाम और उपदेश श्रवणगोचर नहीं हुए। राजाने कहा यह मेरा दुर्भाग्य है कि अबतक मुझे उनके उपदेश सुननेका सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ। अब आपके दर्शनसे मेरे भाग्य जगे हैं। मैं उनकी शरणमें प्राप्त होता हूं। अर्हतने राजासे कहा कि फिर

तो आप एक संघाराम बनवाइये। राजाने कहा कि संघारामका बनवाना तो कुछ कठिन नहीं है, पर मूर्ति कहाँसे आयेगी? अर्हतने कहा पहले आप संघाराम बनवायें फिर तो मूर्ति आ जायगी। राजाने उसके कहनेके अनुसार इस संघारामको बनवाया और जब संघाराम बन गया तब वह अर्हतके पास जाकर बोला कि लीजिये संघाराम तो बन गया अब मूर्ति मंगवाइये। अर्हतने कहा कि आप अपने मन्त्रियों और प्रजागणके साथ खड़े होकर श्रद्धा-पूर्वक भगवानकी स्तुतिकर धूप जलाइये और फूल चढ़ाइये। देखिये मूर्ति अभी आये जाती है। राजाने वैसा ही किया और मूर्ति आकाशमार्गसे वहां आकर उतरी। राजा बहुत प्रसन्न हुआ। उसने मूर्ति संघाराममें स्थापित कर दी और अर्हतसे प्रार्थना की कि आप हमें और हमारी प्रजाको धर्मका उपदेश कीजिये। उसी समयसे खुतनमें बौद्धधर्मका प्रचार हुआ और यह संघाराम इस देशमें आदि संघाराम कहलाया।

सुयेनच्वांग वहाँ ठहर गया और वहांसे उसने कूचे और काशगरके राजदूतोंको भेजवाया कि वह जाकर पुस्तकोंकी प्रतियोंकी खोज करें। इसी बीचमें उसे काउचांगका एक नवयुवक मिल गया जो खुतन गया था और वहाँसे अपने देशको व्यापारियोंके दलके साथ लौटकर जानेवाला था। सुयेनच्वांगने उसके द्वारा काउचांगके राजाके नाम एक आवेदनपत्र भेजा और उससे यह कह दिया कि इसे ले जाकर सम्राट्के दरबारमें पहुंचा देना। उस आवेदनपत्रमें उसने चीनके सम्राट्को

सेवामें लिख भेजा कि मैंने यह अपने देशवालोंसे सुना है कि पूर्व-कालमें हमारे देशके अनेक विद्वान् सत्य और धर्मकी खोजमें दूर-दूर देशोंमें गये हैं और वहाँसे लौटकर उन्होंने अपने देशवालोंको लाभ पहुंचाया है। उनके नामको अबतक लोग बड़े आदरसे स्मरण करते हैं। मैंने अपने देशमें बौद्धधर्मके ग्रन्थोंका अध्ययन किया तो मुझे जान पड़ा कि हमारे देशमें बौद्धधर्मका जिस रूपमें प्रचार है वह सर्वाङ्गपूर्ण नहीं है। यह विचारकर मैं चेगक्वान संवत्के (६३०) के तीसरे वर्ष चौथे मासमें चुपकेसे, अपने देशसे निकला और भारतवर्षकी ओर चला। पहाड़ों और, मरुभूमियोंसे होता अनेक नदियोंको पार करता मार्गके शीतोष्ण-को सहता मैं चांगानसे राजगृहतक गया। सहस्रों आपत्तियोंको झेला, अनगिनत कष्टोंको उठाया, नाना देशोंके भिन्न भिन्न आचारों और व्यवहारोंको देखता, मैं कुशलपूर्वक भारतकी यात्रासे लौटकर खुतनमें आकर पहुंचा हूं। हाथी जिसपर मेरी पुस्तकें इत्यादि लदकर आ रही थीं, मार्गमें दल दलमें फंसकर मर गया है। मेरी पुस्तकें अभी यहाँ नहीं पहुंच पायी हैं। इस कारण मुझे यहाँ उनके आनेतक ठहर जाना पड़ा है। जबतक उनके आनेका, समुचित प्रबन्ध न हो जाय मुझे यहां ठहरना पड़ेगा। न होगा तो मैं सबको खुतनमें छोड़कर अकेले आपकी सेवामें उपस्थित, हूंगा। इसी कारण मैं अपना यह पत्र माहानची नामक एक उपासकके हाथ जो काउचांगका है और व्यापारियोंके दलके साथ जा रहा है आपकी सेवामें भेज रहा हूं।

महानचीको काउचांगकी ओर भेज सुयेनच्वांग उसका उत्तर आनेकी प्रतीक्षा करता रहा। उस समय वह रात दिन खुतनके भिक्षुओंके संघमें योग, अभिधर्म, कोष्ठया और महायान सम्परिग्रह नामक शास्त्रोंकी व्याख्या करनेमें बिताता रहा। व्याख्यानके समय छोटे बड़े यती-गृही, राजा-रंककी भीड़ लग जाती थी। आठवें महीनेमें राजाका पत्र मिला कि मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप इतनी दूरकी यात्रा करके सकुशल लौट आये। कृपाकर शीघ्र आकर मुझे अपने दर्शनसे कृतार्थ कीजिये। मैंने इस देशके भिक्षुओंको आपसे मिलनेके लिये आज्ञा दे दी है। मैंने खुतनकी राज-सभाको भी पत्र लिख दिया है कि वह आपके लिये वाहनादिका प्रबन्ध कर दे और आपके साथ कोई ऐसा मनुष्य कर दे जो मार्गका जानकार हो। इसके अतिरिक्त मैंने तुनसांगके राजकर्मचारियोंको भी लिख दिया है कि वह आपको अपने साथ मरुभूमिको पार करा दें और शेन शेनके राजाको भी जिसे लिउलान कहते हैं, लिख दिया है कि वह अपने कर्मचारियोंको आपसे चीनोंमें मिलनेके लिये भेज दे।

यह पत्र पाकर सुयेनच्वांग खुतनमें अपनी पुस्तक इत्यादि सामानोंको छोड़कर पीमो नगरमें गया। वहाँ बुद्धदेवकी चंदनकी एक प्रतिमा थी। यह प्रतिमा ३० फुट ऊँची और खड़ी मुद्रामें थी। कहते हैं कि इस प्रतिमाको भगवान् बुद्धदेवके जीवनकालमें कौशांबीके राजा उदयनने बनवाया था। बुद्धदेवके निर्वाण हो जानेपर यह आकाशमार्गसे होकर यहाँ आयी थी।

उसी समयसे यह जिस स्थानपर आकर खड़ी हुई थी खड़ी है। कहते हैं कि यह मूर्ति जबतक संसारमें बुद्धभगवानका उपदिष्ट धर्म बना रहेगा रहेगी। जब धर्मका लोप हो जायगा तब यह पातालमें चली जायगी।

पीमो नगरसे पूर्व दिशामें एक मरुभूमिसे निकलकर कई दिनोंमें नीहांगमें पहुँचा। उससे पूर्व दिशामें जाकर उसे एक मरुभूमि मिली, जिसमें न कहीं पानी था न वृक्ष-वनस्पति कहीं देख पड़ते थे। दिनको गर्म आंधी चलती थी और रातको चारों ओरसे प्रेतोंके लूक दिखायी पड़ते थे। न कहीं राह थी न पैंड़ा। केवल जानेवाले मनुष्यों और पशुओंकी हड्डियोंके सहारे जो उस मार्गमें जाते हुए मरे थे रास्तेका कुछ पता चलता था। यह उस मरुभूमिको पारकर तुषार-देशसे होते हुए चीमोंके जनपदमें पहुंचा। फिर चीमो देशसे चलकर नवपदेशमें पहुंचा जिसे शेन शेन या लिउलान कहते थे।

शाचाउ पहुंचकर उसने चीन सम्राटके पास एक निवेदनपत्र भेजा। उस समय सम्राट् लोयांग नगरमें जो पूर्वकी राजधानी था निवास करता था। प्रार्थनापत्रको पढ़कर सम्राट्ने यह जाना कि सुयेनच्वांग आ रहा है, लोयांगके राजकुमार फोंग-हुअन-लिंगको और शिगानफूके शासक चो वो-शे को आज्ञा दी कि राज-कर्मचारियोंको भेजो कि सुयेनच्वांगको जाकर स्वागत-पूर्वक ले आवें।

जब सुयेनच्वांगको यह मालूम हुआ कि सम्राट् उसी

इस कारण अपने सामने बुलाना चाहता है कि उससे इस बातका उत्तर मांगे कि क्यों तुम मेरी आज्ञाके बिना चीनके बाहर गये थे। फिर तो सब कामको छोड़कर वह जल्दीसे शि-गान-फूकी ओर चला और नहरसे होकर शि-गान-फूमें पहुँचा। वहांके कर्मचारियोंको यह ज्ञान न था कि किस प्रकार उसका स्वागत करना चाहिये और वे उसके स्वागतके लिये कोई प्रबन्ध न कर सके। पर जब नगरवासियोंको यह मालूम हुआ कि सुये-नच्वांग आ गया तो वे सब मिलकर नगरके बाहर आये और उसको प्रणाम करनेके लिये घाटपर आकर इकट्ठे हो गये। घाट-पर इतना जमघट लगा हुआ था कि जब उसकी नौका शि-गान-फूमें पहुंची तो उतरनेके लिये उसे भूमिपर पैर रखनेका स्थान न मिला और विवश होकर उसे नौकाहीपर रात बितानी पड़ी।

दूसरे दिन प्रातःकाल वह सन् ६४६ ई०की वसन्त ऋतुमें नाव उतरा। सब नर-नारियोंने उसका बड़े आदरसे स्वागत किया और दूसरे दिन अनेक संघारामोंके भिक्षु मिलकर ध्वजा उड़ाते आये और बड़े धूम-धामसे उसे होंगफू (परमानन्द) संघा-राममें ले गये। वहां वह ठहरा और उसने उस संघाराममें अपनी लिखित-लिखित पुस्तकों और मूर्तियोंको जिनको वह भारतसे लेकर आया था संस्थापित कर दिया।

(क) मूर्तियां:—

१—तथागतके धातुके खण्ड—१५०

२—प्राग्बोधिगिरिके नागगुफाकी बुद्ध भगवानकी छायाकी

सोनेकी मूर्ति धर्मचक्र प्रवर्तनकी मुद्रामें, सोनेके सिंहासन सहित, ३ फुट ३ इञ्च ऊंचा......१

३—कौशांबीके राजा उदयनकी बनवाई हुई चन्दनकी मूर्तिके अनुरूप भगवान बुद्धदेवकी चन्दनकी एक मूर्ति, एक चमकीले आसन सहित ३ फुट ५ इञ्च ऊंची......१

४—भगवान बुद्धकी एक मूर्ति संकाश्य नगरकी अवतरण मुद्रावाली मूर्तिके अनुरूप, एक सिंहासन सहित, २ फुट ६ इञ्च ऊंची। १

५—मगधके गृध्रकूट गिरिपर सद्धर्म पुण्डरीक सूत्रको उपदेश करनेकी मुद्रावाली भगवान बुद्धकी चांदीकी मूर्ति अत्यंत चमकीले सिंहासन सहित ४ फुट ऊंची......१

६—भगवानकी एक मूर्ति चमकीले सिंहासन सहित नगरहरकी गुफाकी छायाके अनुरूप ३ फुट ५ इञ्च ऊंची......१

७—चन्दनकी एक मूर्ति चमकीले सिंहासन सहित वैशाली नगरकी उपदेशार्थ प्रस्थान मुद्रामें १ फुट ३ इञ्च ऊंची......१

(ख) पुस्तकें :—

१—सूत्र,	२२४
२—शास्त्र	१९२
३—स्थविर निकायके सूत्र, विनय और शास्त्र	१५
४—सम्मतीय निकायके „ „ „	१५
५—महीशासक निकायके „ „ „	२२
६—सर्वास्तिवाद निकायके „ „ „	६७

७—काश्यपीय निकायके „ „ „	१७
८—धर्मगुप्त निकायके „ „ „	४२
९—हेतु विद्याके ग्रंथ	३६
१०—शब्दविद्याके ग्रंथ	१३

शिगानफूके प्रधान राजपुरुषसे मिलकर सुयेनच्वांग लोयांग नगरको जहां सम्राट् था, गया। वहां सम्राट्ने उसे अपने ईत्याम नामक प्रासादमें बुलवाया और बैठनेपर पूछने लगा कि आप यह तो बतलाइये कि आप बिना मेरी आज्ञा लिये क्यों चले गये थे? सुयेनच्वांगने कहा कि मैंने तीन तीन बार आज्ञा प्राप्त करनेके लिये निवेदनपत्र आपकी सेवामें भेजा, पर एकका भी उत्तर श्रीमान्ने नहीं दिया। जब बहुत दिन प्रतीक्षा करनेपर भी कुछ उत्तर न आया तो मुझे विवश होकर बिना आज्ञा प्राप्त किये ही वहांसे भाग जाना पड़ा। कारण यह था कि मेरी उत्कंठा इतनी बलवती थी कि रोकेसे रुक नहीं सकती थी।

फिर सम्राट्ने उससे कहा कि आप मेरे दरबारमें रहिये और आपके लिये दरबारसे अच्छा वेतन प्रदान किया जायगा पर सुयेनच्वांगने उसे स्वीकार न किया और लोयांगसे शिगानफू चला आया। होंगफू संघाराममें जहां वह अपनी पुस्तकों और मूर्तियोंको छोड़ गया था, बैठकर वह संस्कृत ग्रन्थोंका अनुवाद चीनकी भाषामें करने लगा। सन् ६४७ के अन्ततक उसने बोधिसत्व पिटक सूत्र, बुद्धभूमि सूत्र और षट्मुखी धारिणी आदि ग्रन्थोंके अनुवादको समाप्त किया और ६४८ के अन्त होते

होते उसने ५८ पुस्तकोंका अनुवाद कर डाला। उसी वर्ष सम्राट्के आदेशानुसार सी-यू-की नामक ग्रन्थका लिखना उसने आरम्भ किया। सन् ६५६ में सम्राट्ने सुयेनच्वांगको 'सेयेन'-के संघाराममें रहकर अनुवादका काम करनेको आज्ञा दी और वह 'होंगफू' के संघारामसे 'सेयेन'के संघाराममें चला गया और यहां ही वह आजीवन अनुवाद करता रहा।

सन् ६५० में सम्राट् ताइसुंगका देहान्त हो गया और उसके स्थानपर कावसुंग चीनका सम्राट् हुआ। उस समयसे सुयेनच्वांगको उस संघारामके भिक्षुओंको धर्मग्रंथोंकी शिक्षा देनेका कार्य्य अपने सिर लेना पड़ा। वह प्रातःकाल उठता और कुछ जलपानकर चार घण्टे भिक्षु-संघको शिक्षा देता था। उसके उपदेशके समय १०० भिक्षु और अनगिनत उपासक तथा गण्यमान्य राज-पुरुष उपस्थित होते थे। सन् ६५२ में उसने होंगफू संघारामके दक्षिण द्वारपर एक विहार बनवाया और उसमें अपनी पुस्तकों और मूर्तियोंको संस्थापित कर दिया। उसने उस विहारको भारतवर्षके स्तूपके आकारका बनवाया था। वह १८० फुट ऊंचा था और उसमें पांच तले थे।

सन् ६५४ में भारतके मध्यदेशसे महाबोधि मन्दिरके प्रतिनिधि चीनमें पहुंचे और वहां सुयेनच्वांगसे मिले और कहा कि भारतवर्षमें अबतक लोगोंके अंतःकरणोंमें आपकी प्रतिष्ठा बनी है। सुयेनच्वांगने उनसे कृतज्ञता प्रगट करते हुए याचना की कि आपकी बड़ी कृपा होगी, यदि आप उन पुस्तकोंकी प्रतियां

जो मार्गमें नष्ट हो गयी हैं, चीन देशमें भेज दें जिससे वह यहाँ संस्थापित कर दी जायँ।

सन् ६५६में वह रोगग्रस्त हुआ पर राजकीय वैद्योंकी औषधिसे रोग कुछ शांत हो गया। सन् ६५८ में सम्राट् उसे अपने साथ लोयांग ले गये और यहाँ उसे सिमिंग नामक संघाराममें ठहराया। दूसरे साल यहाँ जब उसने देखा कि उसके अनुवादके काममें विघ्न पड़ता है तो सम्राट्से आज्ञा लेकर 'युःफ' नामक राजप्रासादमें चला गया और वहाँ प्रज्ञा पारमिताका अनुवाद करने लगा। सन् ६६० में उसने महाप्रज्ञा पारमिताके अनुवाद करनेका विचार किया और इस विचारसे कि ग्रंथ बहुत बड़ा है और दो लाख श्लोक हैं उसने उसको संक्षेप करनेका संकल्प किया। रातको उसे स्वप्नमें जब इस बातको मना किया गया कि संक्षेप न करो तो उसने तीन प्रतियोंको जिन्हें वह भारतसे ले आया था मिलाकर पाठ शोधना आरम्भ किया और पाठ ठीककर वह अनुवाद करनेमें लग गया। सन् ६६१में उसने महाप्रज्ञापारमिताका अनुवाद समाप्त किया। बुढ़ापेने उसे आ घेरा और इसी कारण वह रत्नकूट सूत्रके अनुवादमें हाथ न लगा सका। उसने अपने अनुवादोंके पाठको सुनना आरंभ किया और उनके पारायणको श्रवण करके यथास्थान संशोधन कराया। इस प्रकार सुयेनच्वांग सन् ६६४ के अन्ततक अपने देशके साहित्यके भाण्डारको धर्मग्रंथोंके अनुवादोंसे भरता हुआ अगहन सुदी १३ को मैत्रेय भगवान्का ध्यान करता परलोकको

सिधारा। लोपांग नगरमें उसे समाधि दी गयी। पर सम्राट्ने उसके स्मरणार्थ फानचुयेनकी घाटीके उत्तरमें एक सुन्दर विहार बनवाया और सन् ६६६ में उसकी हड्डियोंको निकलवाकर उसमें ले जाकर प्रतिष्ठित किया।

